विद्वत परिषद द्वारा समीक्षित पत्रिका

ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 9 अंक 39 जुलाई-सितम्बर, 2024

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

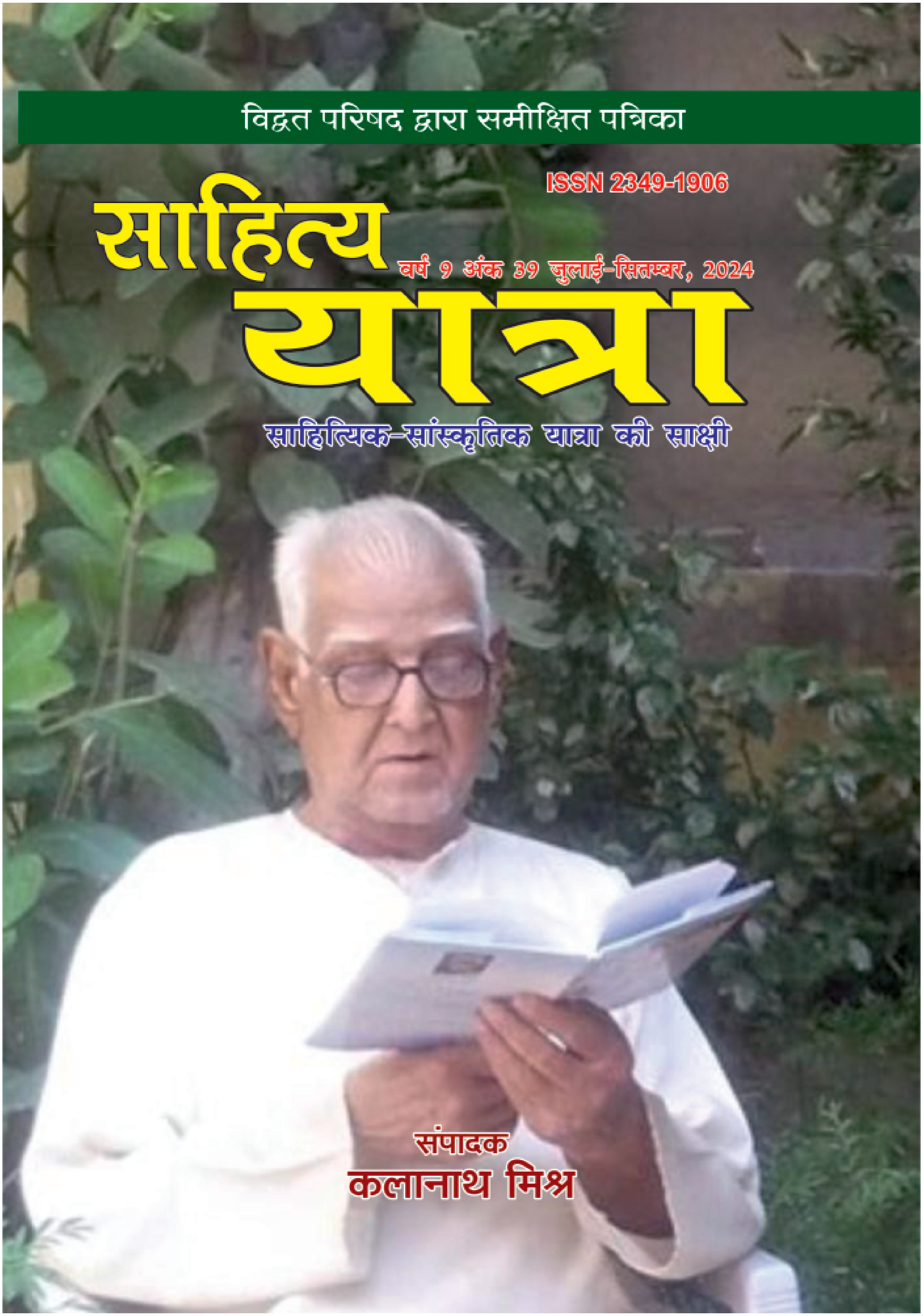

संपादक
कलानाथ मिश्र

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर स्मृति विकास समिति सिमरिया की ओर से आयोजित 'दिनकर जयंती' के अवसर पर बरौनी जीरोमाइल स्थित दिनकर जी की विराट प्रतिमा पर माल्यार्पण करते हुए प्रो. मिथिलेश सिंह, साहित्य यात्रा के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र, कवि मदन कश्यप, प्रो. सत्यकाम, साहित्य यात्रा के सहयोगी संपादक डॉ. अमित कुमार मिश्रा आदि।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर स्मृति विकास समिति, सिमरिया की ओर से आयोजित राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की जयंती के अवसर पर साहित्य यात्रा के यशस्वी संपादक वरिष्ठ साहित्यकार प्रो. कलानाथ मिश्र को सम्मानित करते हुए प्रलेश, बेगूसराय जिला इकाई के सचिव, साहित्यकार श्री राजकिशोर सिंह।

विद्वत परिषद् द्वारा समीक्षित पत्रिका

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

संपादक

कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

सदस्यता फार्म

'साहित्य यात्रा' विशिष्ट सदस्यता	:	1100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	500/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	1500/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1500/-
आजीवन सदस्यता	:	15000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)

उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्रट संलग्न कर रहा हूँ। ऑन लाईन खाते में डाल दिया हूँ (रेपफरेन्स नं.) कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन नं. :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय :	

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम : रु. .... द्वारा............................

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :..

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :................................... दिनांक :...................

दिनांक :		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्रा, पंजाब नेशनल बैंक, एस.के. पुरी शाखा, पटना-1

खाता क्रमांक- 6236000100016263, IFSC- PUNB0623600

वेबसाईट - www.sahityayatra.com

यहाँ से काटिए

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

वर्ष-9	अंक-39	जुलाई-सितम्बर, 2024

परामर्शी

डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ. प्रेम जनमेजय

डॉ. हरीश नवल

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

समीक्षक मंडल

प्रो. शैलेन्द्र कुमार चौधरी

संकायाध्यक्ष, मानविकी संकाय

(पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कॉलेज ऑफ कॉमर्स)

प्रो. प्रतिभा सहाय

(पूर्व आचार्य, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग)

डॉ. सुजीत दूबे

(अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, ए.एन. कॉलेज, पटना)

उप-संपादक

डॉ. करुणा पीटर 'कमल'

सहायक संपादक

डॉ. अमित कुमार मिश्रा

कार्यालय सहयोग

प्रिया कुमारी

साज-सज्जा

निशिकान्त / मनोज कुमार

संपादक

कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी आलेख का पुनार्प्रकाशन के पूर्व संपादक की अनुमति अनिवार्य है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग (UGC) द्वारा पूर्व अनुमोदित

विद्वत परिषद् द्वारा समीक्षित पत्रिका

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)

मोबाइल : 8434880332/09304302308/09835063713/9546138889

ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com

वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹100/- (एक सौ रुपये मात्र)

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, शालीमार स्टूडियो के पास,
सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट, दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क '**साहित्य यात्रा**' के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : प्रो. कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07

संस्मरण

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : गँवई धज में खिला-खिला सा व्यक्तित्व 11
प्रकाश मनु

आलेख

अजीत कुमार वर्मा की कविताई 25
डॉ. कमलानंद झा

नेपाल में हिन्दी पत्रकारिता : स्वरूप और विकास 32
डॉ. श्वेता दीप्ति

समकालीन हिंदी कविता : यथार्थ और संवेदन में द्वंद्व 44
गणेश चन्द्र राही

राष्ट्रीय चेतना के कवि : बालकृष्ण शर्मा नवीन 60
राजेन्द्र परदेसी

क्या वर्तमान साहित्य जगत ने भारतेंन्दु हरिश्चंद्र को भुला दिया है? 65
राजेन्द्र सिंह गहलोत

कहानी

पाँच मुठ्टी मिट्टी 70
डॉ. निरूपमा राय

प्यार की धार 77
डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा 'मृदुल'

आलेख

बाल मनोविज्ञान के कुशल चितेरे-प्रेमचंद 87
पद्मा मिश्रा

हिंदी साहित्य लेखन में आधुनिक प्रवृत्तियाँ 92
डॉ. कविता विकास

बदल रहा है प्रेमचंद का लमही गाँव 98
सुशील स्वतंत्र

संस्मरण

मन की बात 102
सुधा गोयल

पुस्तक समीक्षा

ब्रेड एण्ड बुक (संस्मरण) श्री रामकिशोर उपाध्याय 105

डॉ. जमुना कृष्णराज

आलेख

डॉ. यायावर की सजलों में नवगीत के तत्व 114

कृष्ण कुमार 'कनक'

मुंशी प्रेमचंद जी की कुर्सी 126

डॉ. मुकेश 'असीमित'

हरियाणवी साहित्यकार : बाबू बालमुकुंद गुप्त - परिचयात्मक विश्लेषण 130

डॉ. (श्रीमती) धनेश्वरी दुबे

विभूति नारायण राय के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना 135

ज्योति कुमारी

साहित्यिक रिपोर्ट

यशस्वी साहित्यकार रामदरश मिश्र के स्वर्णिम सौ वर्ष पर आयोजन 140

वेद मित्र शुक्ला / प्रियांशु तथा अनन्या

कविता

कौन था वह? 145

श्री पारस कुंज

चीखें 150

आभास कुमार

इठलाती नदियाँ 151

करुणा पीटर 'कमल'

ग़ज़ल

ग़ज़ल 152

अजीत कुमार वर्मा

सम्पादकीय

स्वतंत्र चेतना के सजग साहित्यकार : रामदरश मिश्र

साहित्यकार का सबसे बड़ा गुण उसका स्वतंत्र चिंतन और सजग लेखन होता है। साहित्यकार जितना स्वतंत्र होगा, उसकी लेखनी में सामाजिक यथार्थ का उतना ही सजीव चित्रण होगा। किसी भी साहित्यकार का आधारभूत गुण समाज के वंचितों के प्रति उसकी संवेदना होती है। संवेदना ही वह तत्व है, जो किसी रचनाकार के भीतर प्रतिरोध चेतना को जन्म देती है। प्रगतिशीलता भी साहित्यकार का मौलिक धर्म है, उसे किसी से उधार लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आदि कवि वाल्मीकि के भीतर वह संवेदना ही थी, जिसके कारण उन्होंने निषाद को शापित किया। निषाद ने जब क्रौंच पक्षी के एक जोड़े में से एक को मार गिराया तो वाल्मीकि के हृदय में इतनी संवेदना जागृत हुई कि उन्होंने निषाद के इस दुष्कृत्य का प्रतिरोध करते हुए शाप दे डाला -

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्।।

डॉ. रामदरश मिश्र स्वतंत्र चेतना के साहित्यकार हैं और साहित्यकार के दायित्वों के प्रति अत्यंत सजग हैं।

15 अगस्त को देश आजाद हुआ और 15 अगस्त को ही रामदरश मिश्र जी का जन्म दिवस भी है। यह एक सुसंजोग है। शायद यही कारण है कि मिश्र जी की लेखनी इतनी स्वतंत्र है। न कोई वाद, न कोई खेमा, बस केवल लिखना और लिखते रहना। उन्होंने विपुल साहित्य की रचना की है। मूल रूप से कवि हृदय किन्तु साहित्य के सभी विधाओं में महत्वपूर्ण लेखन किया है। उन्होंने कई कविता संग्रह, अनेक उपन्यास, कई कहानी संग्रह, कई समीक्षा ग्रंथ, निबंध संग्रह, यात्रा वृत्तांत, संस्मरण, आत्मकथा, डायरी सभी विधाओं में समान अधिकार के साथ अपनी सर्जनात्मकता को आकार दिया है। उनकी रचनाओं में भाव और भाषा का सहज प्रवाह, और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था का भाव मिलता है।

समाज के प्रति उनकी सजगता वंचितों के हक के लिए संघर्ष करती दिखती है। चाहे वह शहरी जीवन का चित्रण हो अथवा ग्रामीण जीवन का चित्रण हो। यह सच है कि आज साहित्य में गाँव का दखल कम हुआ है, किंतु गाँव और गवई संस्कृत में आज भी अपार रस है।

अपनी रचनाओं में गाँव के इसी सच को बसाए रखने वाले प्रखर साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र कहते हैं-

गाँव में सबको पता होता है कि किसके घर में चूल्हा जला, किसके घर में आज चूल्हा नहीं जल सका, किसकी आँखों में आँसू है; इसका पता रहता है। यही तो साहित्यकार की दृष्टि है, यही तो यथार्थवादिता है, यही तो प्रगतिशीलता है, यही तो प्रतिरोध चेतन है। इसके लिए किसी राजनीतिक विचारधारा से जुड़ना आवश्यक नहीं होता। राजनीतिक विचारधारा तो रचनाकार की वैचारिकता को एकांगी बना देता है, उसे पंगु बना देता है।

रामदरश मिश्र जी के अपने जीवन का संघर्ष भी कमतर नहीं है। साहित्य की सेवा करते हुए शुरुआती दौड़ में बहुत सारे स्त्रियों से उन्हें वंचित रहना पड़ा। कारण एक ही था कि वह किसी वाद से जुड़े नहीं थे। किसी बात के प्रभाव में वह कभी नहीं आए। यह जानते हुए कि जो दौड़ चल रहा था, उसमें वाद से पृथक रहकर मान्यता मिलना, उस युग में कठिन था।

मेरे साथ हुए साक्षात्कार में वह स्वयं कहते हैं कि लिखता लेखक है वाद नहीं लिखता।

मिश्र जी कहते हैं - गाँव में पैदा होना मेरे लिए एक सौभाग्य की बात है। उस समय का जो गाँव था वह काफी अच्छा था, एक भाईचारा था। गाँव की चर्चा करते हुए वे एक शेर कहते हैं -

'कितने अच्छे लोग थे जिनको अपने गम से फुर्सत थी

पूछते थे अहवाल जो कोई गम के मारे गुजरे थे'

वे कहते हैं कि गाँव में बुराइयाँ भी थी, कमजोरियाँ भी थी लेकिन कुल मिलाकर उनमें एक सामूहिकता थी, सामूहिक भाव था और जीवन में एक सादगी थी।

मिश्रा जी कहते हैं कि लोग मुझसे पूछते हैं कि आपको सादगी कहाँ से मिली? आपको इतनी सहजता कहाँ से मिली? तो वे कहते हैं - मैं भी उसी तरह से सादा जीवन जीना चाहता हूँ, सादा खाना चाहता हूँ, सादा पहनना चाहता हूँ और जीवन में सादगी देखना चाहता हूँ। इस प्रकार वे स्वीकार करते हैं कि गाँव से मैंने बहुत कुछ लिया। रामदरश जी 'पंत' जी की एक पंक्ति याद करते हैं -

'देख रहा हूँ आज विश्व को मैं ग्रामीण नयन से...........'

वे कहते हैं गाँव एक नयन है, एक दृष्टि है, इसीलिए शहर में आकर भी गाँव का नयन मुझसे नहीं छूटा। इस प्रकार मिश्र जी के साहित्य में ग्रामीण यथार्थ अपने वास्तविक और स्वाभाविक रूप में दृष्टिगोचर होता है।

उनका मानना है कि समाज का जो दुख-दर्द है, चाहे वह गरीबों का हो, चाहे वह नारियों के प्रति पुरुषों का अत्याचार हो, चाहे दलितों के प्रति अत्याचार हो और चाहे विभिन्न प्रकार का अत्याचार हो, वह मुझे सालता था। लगता था कि उस दर्द ने मुझमें एक मानव मूल्य पैदा किया। जहाँ भी मैं दर्द देखता हूँ। भीतर से रो पड़ता हूँ।

रामदरश जी ने अपने एक निबंध में लिखा है - अब जब भी गाँव जाता हूँ तो प्रकृति उस पुरानी सहचारी की तरह लगती है - अक्षय गाँधी, अक्षय रूपवती, अक्षय रसमयी लेकिन गाँव के लोग वैसे नहीं लगते। उनके संबंध, उनके मूल्य टूट गए हैं। फक्कड़पन, बनियागिरी में बदल गया है। त्यौहार पर्व का उल्लास पैसे और राजनीति की हलचल में खो गया है, अब उसमें जीवन देने की ताकत नहीं रह गई है।

केवल गाँव का ही नहीं मिश्र जी ने अपनी रचनाओं में नगरों के राजनैतिक पैंतरों का भी बहुत ही सटीक चित्रण किया है। एक पात्र शिवराज चौधरी का परिचय देते हुए कहते हैं- वे बहुत लचीले व्यक्ति हैं, सबकी पीड़ा से पिघल जाते हैं, वे वियतनाम के भी दर्द से पिघलते हैं और कांग्रेस के दर्द से भी। वे एक साथ आधुनिकता का चश्मा लगाकर दिल्ली और पेरिस को भी देख सकते हैं और अपने अफसर के घर के किचन को भी। वे एक ही साथ मार्क्स, गाँधी, लोहिया और इंदिरा सब के गीत गा सकते हैं। राम प्रसाद बिस्मिल के तस्वीरों को भी देखकर उनकी आँखें नम हो जाती है।

मिश्र जी के स्त्री पात्र भी मात्र मार खाने वाली या पुरुष के प्यार के चंगुल में पिघलने वाली नहीं है, वह तर्क करने वाली है, उचित और अनुचित का बात करने वाली है और उसके लिए संघर्ष करने वाली है। मिश्र जी का योगदान आलोचना के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण रहा है। आलोचना में सर्जनात्मकता है। उनकी आलोचना हिंदी साहित्य की प्रायः सभी प्रमुख विधाओं की प्रकृतियों, प्रवृत्तियों की पहचान करती है। हिंदी आलोचना पर तो मिश्र जी का शोध प्रबंध ही है, जो 'आलोचना के इतिहास' के नाम से पहले छपा और बाद में भी इसका परिवर्धित संस्करण 'हिंदी समीक्षा : स्वरूप और सौंदर्य' नाम से प्रकाशित हुआ।

'साहित्य संदर्भ और मूल्य' मिश्र जी के प्रसिद्ध समीक्षात्मक निबंधों का संकलन है। 'हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा' और 'हिंदी कहानी अंतरंग' पहचान। इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। कविता की बात करें, तो 'छायावाद रचना लोक' और 'हिंदी कविता : तीन दशक', 'आधुनिक हिंदी कविता', 'आधुनिक हिंदी आयाम' आदि काव्य लोचन के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान है।

कथेत्तर गद्य के विधाओं जैसे आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा वृतांत को भी रामदरश मिश्र जी की रचना विधान समृद्ध किया है। संस्मरण साहित्य की दृष्टि से 'स्मृतियों के चाँद', 'अपने-अपने रास्ते', 'एक दुनिया अपनी' आदि महत्वपूर्ण है। 'साधना ही बड़ा सत्य है' नामक संस्मरण में मिश्र जी ने अपने गुरु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी को स्मरण करते हैं। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व, उनके पांडित्य और साहित्य का भी विवेचन करते हुए मनीषी साहित्यकार बने हैं। शमशेर बहादुर को रामदरश जी 'मुक्त मन का कवि' मानते हैं। उन पर संस्मरण लिखते हुए मिश्र जी कविताओं की संवेदना और रचना कौशल काव्य मूल्यांकन करते हैं। मिश्र जी जीवन पर्यंत मूल्य के लिए संघर्षरत है।

वे अपनी रचनाओं में समय के साथ संवाद करते रहे हैं एवं रंगमंच के संघर्ष को भी अपनी रचनाओं में रेखांकित करते रहे हैं। उनके दृश्य सामाजिक यथार्थ के टकराव को महसूस करती हैं और सफागोई अपनी रचनाओं में उकेरती है। उनकी कविताओं की भाषा अत्यंत समर्थ है। उसमें अभिव्यंजना सामर्थ्य है, जिसके कारण कविता में गंभीर अर्थवत्ता का बोध होता है। 'समय का देवता' शीर्षक कविता में समकालीन यथार्थ का चित्रण इस तरह अंकित है -

'तुम्हारा न्याय बड़ा निर्मम है देवता, तुम्हारे कांपते हाथों ने तराजू का पलड़ा झुका दिया है/ उस ओर जिस ओर गेहुँअन साँपों का समूह कुंडली मारे बैठा है गड़े रत्नों पर/ आराम से चूहों को पान की तरह चुभलाता हुआ।'

मिश्र जी की रचना में पूँजीपतियों का स्वार्थ भोगवादी संस्कृति के प्रति बढ़ता रुझान, मानवता का वंश आदि का चित्र सहज ही देखने को मिलता है। मिश्र जी की कहानियों में एक ओर गाँव का परिवेश उसके मिट्टी का सोंधी महक है तो दूसरी ओर शहरी परिवेश का आधुनिक स्वरूप। शहरी परिवेश को चित्रित करते हुए उन्होंने मानवीय संबंधों में अनेक प्रकार के विकृतियों का भी चित्रण किया है। उनकी कहानियों में नई समस्याओं के लिए गहरी चिंता दिखती है। उनके यात्रा वृत्तांत में घटनाओं, दृश्यों, व्यक्तियों और स्थितियों का संश्लिष्ट, बिंब विधान का सुंदर चित्रण मिलता है।

मिश्र जी की डायरी बिल्कुल स्वाभाविक है। उसमें बनावटी पन नहीं है। इन्होंने हिंदी साहित्य में डायरी लेखन की परंपरा को आगे बढ़ाया है। 'आते-जाते दिन' 2008 में छपकर आई, जो मिश्र जी की और उनके परिवेश, घटनाओं को जीवंत बनाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिश्र जी कभी अपने सामाजिक जिम्मेवारी से डिगते हुए नहीं दिखे। समाज उनके जीवन का अनिवार्य अंग है। 'सहचर है समय' मिश्र जी की आत्मकथा है। इसकी प्रथम खंड में एक पंक्ति है-

'यह एक वर्तुल जिंदगी थी,
जिसमें तमाम चीजें एक-दूसरे में समाई हुई थी,
जिंदगी खानों में बटी हुई नहीं थी'

हिन्दी जगत के लिए यह अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है कि हिंदी के शताब्दी शिखर पुरुष शतायु हैं, अपने भीतर सौ वर्षों के जीवन और समाज का अनुभव, सुख-दुखात्मक अनुभूतियाँ, संघर्ष और सृजन का इतिहास समेटे हुए हमारे बीच हैं। अपने आशीष और शुभेच्छाओं से हमें ऊर्जा प्रदान कर रहे हैं। समस्त हिन्दी जगत के लिए प्रेरणा पुँज हैं। वे स्वस्थ रहें, सृजन कर्म में रत रहें।

इसी आशा के साथ युगद्रष्टा साहित्यकार को मेरा प्रणाम!

कलानाथ मिश्र

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी गँवई धज में खिला-खिला सा व्यक्तित्व

प्रकाश मनु

लेकिन सच तो यह है कि उसे फिर से देखने या रिवाइज करने का मेरा मन कतई नहीं था और न मुझमें इतना सामर्थ्य ही बच रहा था। हाँ, थोड़ा दुख और अवसाद उपजा कि जिस लेख के लिए मुझसे इतनी बार आग्रह किया गया था और जिसे लिखने के लिए मैंने इतना समय लगाया और इतनी अधिक तैयारी की- कोई सौ-डेढ़ सौ कहानी-संग्रहों को पढ़ने के बाद सिलसिलेवार मैंने कहानी के मौजूदा हालात और परिदृश्य के बारे में लिखा था- उसकी अंततः यह गति हुई। लेख खासी बेबाकी से लिखा गया था और कोई आश्चर्य नहीं कि बहुत से कहानीकारों के बारे में मेरी राय या टिप्पणियों से ज्ञान जी सहमत न हों। पर ऐसा तो होता ही है। होना चाहिए भी। मेरा मानना है कि लेखक को तो अपने ही विचार लिखने चाहिए, संपादक के नहीं। फिर संपादक चाहे ज्ञानरंजन जैसा बड़ा, सम्माननीय और आदमकद संपादक क्यों न हो!

हिंदी के अपने ढंग के निराले कवि - आलोचक और चिंतक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जी से आप जब भी मिलें, उनके खिले-खिले से व्यक्तित्व की आब सबसे पहले असर डालती है। गँवई धज में भी कितनी बारीक प्रतिभा, कौशल और खुद्दारी छिपी होती है, यह तिवारी जी से मिले बगैर शायद नहीं जाना जा सकता। शायद इसलिए कि वे अपनी तरह के व्यक्ति हैं- अपनी तरह के कवि, लेखक, आलोचक और उनसे मिलना एक भरपूर शख्सियत से मिलने सरीखा है जो एक प्रसिद्ध कवि तो है ही, पर साथ ही एक बड़े कद का आदमी और एक संवेदनशील पारिवारिक सदस्य सरीखा भी है। एक ऐसा सहृदय साहित्यकार, जो आपके घर-परिवार तक की चिंताओं में शरीक है और भीतर - बाहर से आपके साथ है।

याद पड़ता है, तिवारी जी से मेरी पहली मुलाकात त्रिवेणी सभागार के किसी साहित्यिक कार्यक्रम में हुई थी। वहाँ मुझसे परिचय होने पर अचानक खिलखिलाते हुए साथ खड़े सज्जन से उन्होंने कहा, "देखो भाई, दिल्ली में प्रकाश मनु जैसे लोग भी हैं। क्या लगते हैं कहीं से ये दिल्ली वाले? एकदम सीधे-सादे आदमी। इन्हें देखकर कौन कहेगा कि ये भी दिल्ली के ही हैं।"

फिर कुछ और बातें हुईं और यह भी कि वे आगे जब भी आएँगे, मिलेंगे। उसके बाद वे जब-जब दिल्ली आए, फोन पर बातें हुईं

और मुलाकातें भी। कभी मिलना नहीं हो पाया, तो फोन पर तो जरूर बतिया लिये। इसमें उन्हें भी अच्छा लगता था, मुझे भी। हर बार उन्होंने 'दस्तावेज' के लिए कोई रचना या लेख भेजने के लिए आग्रह किया। पर किसी संपादकीय दबदबे के साथ नहीं। बल्कि एक अजब सी अविश्वनीय विनम्रता के साथ कि, "जो कुछ आप लिख रहे हैं, उसी में जो उचित समझें, आप हमें दें। हम उसे छापेंगे।" साथ ही 'दस्तावेज' पत्रिका के अंक भी लगातार मिलते रहे।

उन्हीं दिनों बीसवीं शताब्दी के अंत की कहानियों पर एक लंबा लेख मैंने उन्हें भिजवाया, जिसे उन्होंने बड़े सम्मान से छापा। लगातार दो किस्तों में और वे दोनों किस्तें कुल मिलाकर पत्रिका के लगभग पैंतीस पृष्ठों तक चली गई थीं।

यों कहानी वाले इस लेख की भी बड़ी अजब कहानी है। उसे कहना मेरे लिए कोई सुखकर नहीं है, इसीलिए कि उसके साथ ज्ञान जी का नाम भी जुड़ा है, जिनकी मैं बड़ी इज्जत करता हूँ।

कहानी पर यह लेख मुझसे भाई ज्ञान जी ने लिखवाया था और बार-बार आग्रह करके लिखवाया था। उन्होंने 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में छपा मेरा लेख पढ़ा था 'लेकिन कहानी अब भी संभावना है'। यह लेख याद पड़ता है, मैंने नब्बे के दशक के प्रारंभ में लिखा था। मैंने वर्ष भर में छपे सभी महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रहों को पढ़ने के बाद, जो संभवतः साठ-सत्तर से कुछ अधिक ही रहे होंगे, उनपर एक विस्तृत लेख लिखा था। लगातार कई दिनों की अथक मेहनत से यह लेख लिखा गया था और इसमें उन कहानियों को रेखांकित किया था, जिनसे मेरे ख्याल से कहानी का आगे का रास्ता निकलता है।

इस लेख की एक खासियत यह थी कि यह किसी बनी-बनाई आलोचनात्मक शैली या शब्दावली में नहीं लिखा गया था और इतनी सारी कहानियाँ पढ़ने के बाद मेरे भीतर जो प्रतिक्रियाएँ या रिफलेक्शस पैदा हुए, उन्हीं को मैंने सिलसिलेवार सामने रखा था। जिन कहानियों ने एक संवेदनशील पाठक के रूप में मुझे गहराई से छुआ और जिनमें आज का समय, संवेदना और आज के आदमी की मुश्किलें थीं, उन्हें मैंने खास तौर से रेखांकित करने की कोशिश की, फिर भले ही वे एकदम नए लेखकों की क्यों न हों!

भाई ज्ञान जी ने 'पहल' के लिए भी ऐसा ही एक लेख लिखने का आग्रह किया। वर्ष भर की कहानियों के बजाय, पिछले आठ-दस वर्षों में जो भी महत्त्वपूर्ण संग्रह आए हैं, सबको समेटते हुए। पर मैं उन दिनों अपने उपन्यास 'कथा सर्कस' में डूबा था, इसलिए यह काम टलता रहा। लेकिन उसके बाद मैं लेख लिखने में जुटा तो फिर लगभग नशे की सी हालत पैदा हो गई। शताब्दी के आखिरी दशक के जितने भी महत्त्वपूर्ण संग्रह थे, वे सब मैंने पढ़े और उन पर बहुत लंबा लेख लिखा, जो लगभग सवा सौ पन्नों का था। फिर इसे संक्षिप्त करके कोई सत्तर-अस्सी पन्ने निकाले और दोबारा सारा लेख हाथ से लिखा गया। यह पूरा लेख ज्ञान जी को भिजवाया गया।

इस लेख में भी लिखने का तरीका वही था, जिसमें कहानी के एक पाठक के रूप में कहानियों की यात्रा करते हुए मेरे इंप्रेशंस या प्रतिक्रियाएँ मुख्य रूप से उभरीं। वे आलोचना की रूढ़ भाषा में नहीं थीं। बल्कि उनका मुझ पर जो असर पड़ा, उसे सीधे-सहज अल्फाज में कहने की कोशिश रही। इस लेख को लिखने के लिए काफी लंबी तैयारी करनी पड़ी और कई महीने लगे। यह लेख ज्ञान जी को भेजा गया, तो तत्काल उनका पत्र आया कि आपने बड़ी मेहनत की है, लेख पढ़कर मैं फिर पत्र लिखूँगा। पर फिर चुप्पी।

यह चुप्पी बढ़ती ही गई तो मैं समझ गया कि उसे छापने में उन्हें कुछ दिक्कत है। यह समझने में देर नहीं लगी कि संभवतः कुछ कहानीकारों की कहानियों या उनकी कथा-शैली पर मेरी प्रतिक्रियाएँ उन्हें अच्छी नहीं लगीं। शायद वे लेख खुद ही लौटा दें- मैंने सोचा। लेकिन काफी समय गुजर गया, और उसपर कोई पत्र नहीं आया, तो मैंने ज्ञान जी को लिखा कि मैं उस लेख को फिर से एक बार देख जाना और थोड़ा रिवाइज करना चाहता हूँ। कृपया उसे मेरे पास भिजवा दें।

यह पत्र भेजने के कुछ ही दिन बाद वह लेख मेरे पास आ गया और साथ ही ज्ञान जी का पत्र भी कि प्रिय भाई, यह एक संयोग ही है कि जब आपका पत्र मिला, तभी यह लेख मैं डिस्पैच करने ही वाला था। इसे, आपके पास भिजवा रहा हूँ, ताकि आप इसे फिर से देख लें।

लेकिन सच तो यह है कि उसे फिर से देखने या रिवाइज करने का मेरा मन कतई नहीं था और न मुझमें इतना सामर्थ्य ही बच रहा था। हाँ, थोड़ा दुख और अवसाद उपजा कि जिस लेख के लिए मुझसे इतनी बार आग्रह किया गया था और जिसे लिखने के लिए मैंने इतना समय लगाया और इतनी अधिक तैयारी की- कोई सौ-डेढ़ सौ कहानी-संग्रहों को पढ़ने के बाद सिलसिलेवार मैंने कहानी के मौजूदा हालात और परिदृश्य के बारे में लिखा था- उसकी अंततः यह गति हुई। लेख खासी बेबाकी से लिखा गया था और कोई आश्चर्य नहीं कि बहुत से कहानीकारों के बारे में मेरी राय या टिप्पणियों से ज्ञान जी सहमत न हों। पर ऐसा तो होता ही है। होना चाहिए भी। मेरा मानना है कि लेखक को तो अपने ही विचार लिखने चाहिए, संपादक के नहीं। फिर संपादक चाहे ज्ञानरंजन जैसा बड़ा, सम्माननीय और आदमकद संपादक क्यों न हो!

इस गहरे दुख और अवसाद के समय मुझे तिवारी जी और उनके 'दस्तावेज' की याद आई। मैंने तिवारी जी को पत्र लिखा कि "मेरे पास शताब्दी के अंत में लिखी गई कहानियों पर एक लंबा, बहुत लंबा और थोड़ा अनौपचारिक किस्म का लेख है जो 'पहल' के लिए लिखा गया था, लेकिन अब वहाँ नहीं छप पा रहा। लेख बहुत मेहनत से लिखा गया है। आप कहें तो वह लेख मैं आपको भेज दूँ। अगर आप उसे छापना चाहे तो मुझे खुशी होगी। बस, मेरी एक ही शर्त है कि उस लेख में से न कुछ काटा जाए और न कुछ जोड़ा जाए।"

कोई हफ्ते भर के भीतर ही मेरे पास तिवारी जी का जवाब आ गया कि मनु जी, वह लेख मैं देखना चाहता हूँ। आप भेजिए तो सही।

और जब लेख भेजा गया तो उसके तत्काल बाद फिर उनका पत्र आया कि मनु जी, आपका लेख 'दस्तावेज' में छपेगा और ठीक वैसे ही, जैसे आपने कहा। उसमें न एक शब्द जुड़ेगा और न हटाया जाएगा। आपको हम बता दें कि हम किसी से नहीं डरते और सच्ची और खरी बात कहने में और छापने में किसी की परवाह नहीं करते। कहानीकारों और उनकी कहानियों के बारे में आपकी जो भी राय है, वह ज्यों की त्यों छपे और पाठकों तक जाए, हम भी यही चाहेंगे। इसके अलावा भी जो लेख आप लिखना चाहें, निश्चिंत होकर लिखें। वे भी बिना किसी काट-छाँट के, जैसे आप चाहेंगे, पाठकों तक जाएँगे।

पत्र एक पोस्टकार्ड पर लिखा गया था, भाषा एकदम सादी। कोई भावुकता की उड़ान नहीं। न अति विनम्रता, न ज्यादा रोब-दाब। पर उसके पीछे एक संपादक की दृढ़ता की जो मिसाल थी, उसे मैं कभी नहीं भूलूँगा। इसलिए भी कि वह गहरे और दुख भरे अवसाद के समय मुझे राहत देने वाली थी। चोट पर मरहम की तरह। फिर वह लेख छपा दो किस्तों में। कुल मिलाकर 'दस्तावेज' सरीखी बड़े आकार की पत्रिका के लगभग पैंतीस-छत्तीस पृष्ठों में और उस पर पाठकों और कहानीकारों के ढेरों पत्र आए। अविस्मरणीय, उत्तेजक और बेहद भावपूर्ण।

यही वह समय था, जब मैंने जाना कि इस सादा-सी लगने वाली 'दस्तावेज' पत्रिका का मान-सम्मान और विस्तार कितना है। साथ ही उसे पढ़ने वाले 'दस्तावेज' पत्रिका और उसके संपादक ही नहीं, लेखकों को भी कितना आदर देते हैं। तब समझ में आया कि अपनी सादगी के बावजूद विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जैसे शख्स क्या हैं और अपने जीवन में क्या कुछ बनाया है उन्होंने।

इसके बाद तो 'दस्तावेज' के लिए खासी तैयारी के साथ किसी न किसी विषय पर लिखने का एक सिलसिला ही चल पड़ा। बीसवीं शताब्दी के अंत में उपन्यासों पर भी मैंने खूब जमकर काम किया और एक लंबा लेख लिखा। तिवारी जी को बताया तो उन्होंने कहा, "तत्काल भेजिए।" यह लेख याद पड़ता है 'दस्तावेज' के तीन अंकों में छपा था। और कुल मिलाकर पत्रिका के शायद साठ पृष्ठ इसमें खर्च हुए। कोई संपादक अपने लेखकों को इतना स्थान मुहैया करता है, इसका मतलब ही है कि वह अपने लेखकों पर कितना भरोसा करता है और उन्हें कितना बड़ा और आदर योग्य स्थान देता है।

वर्षों बाद मुझे 'दस्तावेज' पर मनोहर श्याम जोशी की एक टिप्पणी पढ़ने को मिली। वह टिप्पणी कितनी सार्थक है, इसे मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ। जोशी जी ने कहा था, "हिंदी की और पत्रिकाएँ तो संपादकों की पत्रिकाएँ हैं, जबकि 'दस्तावेज' संपादक से ज्यादा लेखकों की पत्रिका है।" मैं समझता हूँ, यह साहित्य के उस सच्चे प्रजातंत्र की स्वीकृति थी जिसे विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने गँवाई व्यक्तित्व में छिपे अपने ऊँचे साहित्यिक कद और 'दस्तावेज' सरीखी पत्रिका से बनाया। इसके बाद उसी क्रम में बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण की बाल कविताओं मेरा लंबा लेख भी उन्होंने छापा और उस पर भी ढेरों पत्र और प्रतिक्रियाएँ मुझे मिलीं।

मुझे लगा कि 'दस्तावेज' ने मुझे एक साहित्यिक मंच ही नहीं, एक भला-भला और संवेदनशील साहित्यिक परिवार भी दिया है, जिसने मुझे साहित्य के प्रति आस्था दी। इसके लिए सचमुच मैं तिवारी जी के प्रति गहरी कृतज्ञता महसूस करता हूँ।

अब तो विश्वनाथ प्रसाद तिवारी मेरे परिवार के सदस्य सरीखे हो गए थे। उनका अकसर दिल्ली आना होता रहता था। हर बार मिलना और फोन पर बातें। उनके छोटे भाई राजेंद्र रंजन दिल्ली में ही हैं। अकसर तिवारी जी वहीं ठहरते थे और वहीं उनसे बातें और थोड़ी गपशप भी होती।

फिर उनसे एक इंटरव्यू लेने का भी संयोग बना, जिसके लिए 'दैनिक हिंदुस्तान' की रविवारीय पत्रिका के तत्कालीन संपादक विजयकिशोर मानव ने खासकर आग्रह किया था। इस इंटरव्यू में तिवारी जी के बचपन की न भूलने वाली छवियाँ हैं और इसे पढ़कर पता चलता है कि गँवई गाँव का एक शरारती-सा बच्चा, जो पूरी तरह से किसानी परिवेश में ढला हुआ था और परिस्थितियाँ मानो उसे किसान ही बनाना चाहती थीं, कैसे उन दायरों से बाहर निकलता है और पढ़ाई-लिखाई के जरिए उस 'उजाले की राह' तक पहुँच जाता है, जहाँ से उसे एक बड़ा साहित्यकार बनना था और गंभीरता से लिखते-पढ़ते हुए कुछ मिसालें कायम करनी थीं।

यह दीगर बात है कि जब तिवारी जी गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष बने, तब भी अंदर से एकदम गँवई शख्स ही रहे। उन्होंने इसी इंटरव्यू में शायद बताया था कि वे ट्रेन में मिलने वाले लोगों को यह कभी नहीं बताते कि वे यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर या विभागाध्यक्ष हैं। वे हमेशा खुद को एक गँवई किसान के रूप में दर्शाते हुए ही बात करते हैं, जिससे सामने वाला खुलकर बात करता है और अपने भीतर की सारी बातें निस्संकोच कहता-सुनता है।

यह इंटरव्यू इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि इसके जरिए तिवारी जी के अंतरंग व्यक्तित्व की कई निर्मल छवियाँ सामने आईं और कई परतें खुलीं। फिर गाँव में बीते उनके बचपन की बहुतेरी न भूलने वाली स्मृतियाँ इसमें हैं, जिनके बगैर कवि-आलोचक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी और उनके व्यक्तित्व को समझा ही नहीं जा सकता।

तिवारी जी का बचपन कैसा था और क्या वे जानते थे कि बड़े होकर वे लेखक बनेंगे, लेखक ही बनेंगे? यह पूछने पर उन्होंने मुसकराते हुए जवाब दिया था-

"सच मानिए तो नहीं...बिल्कुल नहीं। प्रकाश जी, उस समय जो परिवेश था या जिस तरह की गाँव-देहात की स्थितियाँ थीं, उनमें तो मैं यह भी नहीं जानता था कि मैं पढ़ूँगा भी...या पढ़कर कुछ होऊँगा, यह सोचना भी मुश्किल था। एकदम ठेठ किसानी माहौल था, जिसमें न तो पढ़ने-लिखने की कोई संभावना थी और न पढ़ाई का कोई ऐसा मूल्य ही था कि पढ़कर यह बनना है, वह बनना है। लगता था, पढ़ूँगा भी तो पढ़-लिखकर किसानी करूँगा। यही ज्यादा से ज्यादा उस समय सोच सकता था।"

और आज के खासे गंभीर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी तब बड़े शरारती और ऊधमी भी थे। अपने इस मनमौजी बचपन से रू-ब-रू कराने के क्षणों में हँसते हुए उन्होंने बताया-

"मैं इतना शरारती और ऊधमी लड़का था कि आज मुझे देखकर आपके लिए कल्पना करना मुश्किल होगा कि मैं कभी ऐसा भी रहा होऊँगा। सारा दिन मैं किसी न किसी को तंग करता था। खूब शैतानी, खूब ऊधमबाजी।" गनीमत यह थी कि इसके बावजूद बुद्धि प्रखर थी, इसलिए पढ़ाई में कोरे कभी नहीं रहे। जरा तिवारी जी से ही सुनें उन दिनों का हाल, "ऐसा है प्रकाश जी, खेल-कूद में मुझे मजा आता था अैर पढ़ाई में रुचि या दिलचस्पी बिल्कुल नहीं थी। हाँ, बुद्धि प्रखर थी।...हालाँकि यह बात भी क्या अपने मुँह से कहना ठीक है? बस, इतना ही कह सकता हूँ कि जो पढ़ता था, वह याद हो जाता था और रिजल्ट अच्छा ही आता था। अक्सर अपनी क्लास में अव्वल आता था।"

फिर थोड़ा बड़े होने पर आसपास की चीजों और दृश्यों को समझने और देखने-भालने का भी मन बना। किशोरावस्था तक आते-आते, दुनिया जो उनके आगे थी, अब धीरे-धीरे अपने अर्थ खोलने लगी। उन चीजों का 'मर्म' समझने लगे और उनके लेखन की 'आत्मा' या 'बीज' क्या था? इस पर भी उन्होंने विचार किया-

"हाँ, एक बात और है, जो मेरे लेखन का बीज हो सकती है। हमारे गाँव में संपन्न परिवार कुछ गिने-चुने थे। ज्यादातर गरीब लोग थे, उनकी हालत अच्छी नहीं थी। तन पर साबुत कपड़े नहीं, न दवा-दारू-तो उनके दुख मुझे द्रवित करते थे। अक्सर मैं अपने दरवाजे पर उन्हें कुछ न कुछ माँगते हुए देखा करता था। उन्हें देखकर मैं दुखी होता था।...तो यह भी एक कारण था, जो मुझे जाने-अनजाने लेखन की ओर ला रहा था। फिर हमारे गाँव की एक और विशेषता है, जो मुझे अच्छी लगती है कि उसमें आधे मुसलमान हैं। पर उनमें कभी अलगाव या भेद-भाव नहीं नजर आया। अत्यंत सांप्रदायिक सौहार्द की यह मिसाल मुझे बचपन से देखने को मिली।"

बचपन में ऐसी क्या चीज थी, जो उन्हें लेखक बना रही थी? इस सवाल पर वे अपने भीतर गहरे उतरते हैं। और फिर उन्हें कुछ ऐसा याद आता है, जो उन्होंने परिवार और गँवई परिवेश में अर्जित किया और जो आज तक उनके साथ चला आता है। उनकी निजी शख्सियत हो या साहित्यिक व्यक्तित्व, तिवारी जी हर क्षण स्वाधीन-चेता हैं और इसके बगैर उनकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस बारे में मेरे प्रश्नों का जवाब देते हुए उन्होंने जो कुछ कहा, उसे उद्धृत करना यहाँ जरूरी लग रहा है। तिवारी जी के ही शब्दों में-

"आपने प्रश्न किया तो एक चीज पर मेरा ध्यान गया। शायद वही आपके सवाल का जवाब भी हो।...असल में, बचपन से ही परिवार में मुझ पर कोई अंकुश नहीं था और इससे मुझमें स्वाधीनता की चेतना पैदा हुई। यानी मैं कहीं भी जाऊँ, कोई भी काम करूँ...किसी भी दिशा में जाऊँ, मैं चाहे जो करूँ, मुझे कोई कुछ कहने वाला नहीं था। शायद मैं बड़ा बेटा था, इसलिए यह रहा हो।...लेकिन जो भी हो, जन्म से जो स्वाधीनता का बोध मुझमें आया, वहीं प्रकारांतर से आपको मेरी कविताओं और साहित्य में भी दिखेगा। बचपन से ही मैंने यह पाठ

सीखा कि कहीं किसी दबाव के आगे झुकना नहीं है और इस स्वाधीनता को मैं बड़ा मूल्य मानता हूँ। इसलिए तमाम तरह के मतवाद और विचारधाराएँ जिनसे लोग आतंकित होते हैं, मैंने उन्हें पढ़ा-समझा, पर उनके रोब में कभी नहीं आया।"

फिर थोड़ी चुप्पी और एक हल्के अंतराल के बाद वे अपनी बात को कुछ और स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "ऐसे ही मुझे लेखक बनाने वाले जिन कारणों के बारे में आपने पूछा है, उनमें एक शायद यह भी है कि मैं बचपन से कुछ अतिरिक्त संवेदनशील था। तो यह जो मेरे भीतर की अतिरिक्त संवेदनशीलता थी, वही मुझे अपने परिवेश के बारे में कुछ अलग ढंग से सोचने - विचारने के लिए तैयार कर रही थी और मेरे लेखन के लिए वह बीज भी बनी।...फिर बचपन में गाँव के लोगों की जो गरीबी और असहायता देखी या गाँव के लोगों पर जो अत्याचार होते थे, कभी सरकारी कर्मचारियों द्वारा, कभी पुलिस के द्वारा, इससे मेरे भीतर दर्द और गुस्से की एक लहर पैदा हुई। एक 'प्रोटेस्ट' करने की तीव्र इच्छा पैदा हुई और यह प्रोटेस्ट करना ही शायद मेरे लेखन की पहली प्रेरणा थी।...यानी कविता के द्वारा या साहित्य के द्वारा प्रोटेस्ट करना।"

कहते हुए तिवारी जी के चेहरे पर मैंने जो असाधारण दृढ़ता देखी, उसे मैं आज भी नहीं भूल पाया। सादगी और दृढ़ता एक साथ। यह एक हिंदी लेखक का तेज था। ऐसा हिंदी लेखक, जो अपनी जड़ों से बड़ी दृढ़ता से जुड़ा हुआ है और जिसे जरा भी दिखावे की जरूरत नहीं है।

तिवारी जी के निजी जीवन के पृष्ठों को हम पलटते हैं, तो इसमें शक नहीं कि उन पर माँ के व्यक्तित्व का असर सबसे ज्यादा है और उन्हें याद करके आज भी वे भावुक हो जाते हैं। माँ पर उन्होंने संस्मरण लिखा है, कई कविताएँ भी लिखी हैं। खासकर माँ के न रहने पर लिखी गई तिवारी जी की कविताएँ मन में एक गहरी टीस और उदासी पैदा करती हैं। 'चिता में जलती हुई माँ' तिवारी जी की बहुत मार्मिक कविता है। चिता में जलने के साथ ही माँ का हंसा उड़ जाने वाला अकेले का सफर! पढ़कर आँखें भीग जाती हैं।

इस बारे में बात चलने पर खुद तिवारी जी ने भावुक होकर बताया था, "असल में मेरी माँ एक सीधी-सादी कर्मनिष्ठ महिला थीं। पढ़ी-लिखी तो थीं नहीं, पर इनसानियत बहुत थी उनमें। किसी भी दुखी आदमी की मदद करने को वे हर वक्त तैयार रहती थीं। बचपन से मैंने यही देखा, कभी किसी को चावल की गठरी बाँधकर दे दी, कभी दही भरकर दे दी...और किसी न किसी काम में वे सुबह से रात तक लगी रहती थीं। तो आप कह सकते हैं, वह सारी दुनिया से बेखबर अपने काम में लगी रहने वाली महिला थीं।...और आपने प्रेम के बारे में पूछा है तो मेरे प्रति कभी कोई अतिरिक्त लाड़ नहीं दिखाया उन्होंने। या कि उनके मन में कभी यह भाव नहीं आया कि मेरा बेटा ही योग्य या अनोखा है, बाकी दूसरे नहीं हैं। ऐसे ही मुझे लेकर कोई बड़ी महत्त्वाकांक्षा भी उनके मन में नहीं थी कि यह कोई बड़ा आदमी बने...या फलाँ-ढिका। बस, सोचती थीं, जैसे गाँव में और सब होते हैं, वैसे ही यह भी हो! यानी आप कह सकते हैं कि माँ का मेरे प्रति एक तटस्थ किस्म का प्रेम था, जिसमें भीतर का प्रेम तो था, पर कोई फालतू दिखावा या बेकार का लाड़ नहीं था...!"

इस इंटरव्यू में बार-बार ऐसे आत्मीय क्षण आए कि तिवारी जी को भीतर तक भीगता महसूस किया। हालाँकि उनमें एक ऐसा भीतरी दृढ़ अनुशासन भी था कि वे खुद को काबू किए हुए थे। अत्यंत प्रियजनों की बात भी वे इस तरह कर रहे थे, जैसे कोई सहृदय आलोचक कहानी या उपन्यास के पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण सामने लाता है। और इसलिए जब वे माँ के बारे में कह रहे थे, तो गाँव की एक कर्मठ स्त्री का चित्र बार-बार आँखों के आगे उभरता था।

इसी तरह बाबा का उन पर गहरा असर पड़ा। बाबा जो अनपढ़ होकर भी गहरी दृष्टि से संपन्न थे और दूर तक देख सकते थे। उनके बारे में तिवारी जी बताते हैं, तो उनके बचपन के सोच-विचार और व्यक्तित्व का गठन किन तत्वों से हुआ, यह समझ में आता है। तिवारी जी के ही शब्द हैं-

"मेरे बाबा एकदम अनपढ़ थे, लेकिन समझदार बहुत थे। उन्होंने अंग्रेजों का जमाना और अत्याचार लंबे समय तक देखे थे। शायद इसीलिए उनकी यह महत्त्वाकांक्षा थी कि मैं पढ़-लिखकर कोई बड़ा अधिकारी बनूँ! उनके मन में शायद कहीं एक तड़प थी- एक सपना था कि मैं पढ़-लिखकर जज या बैरिस्टर बनूँ! उस समय शायद वे बड़ा से बड़ा यही सपना देख सकते होंगे। सोचते होंगे कि जज या बैरिस्टर होकर मैं खुद अंग्रेजों के मुकाबले खड़ा हो जाऊँगा।...तो प्रकाश जी, मेरे बाबा बहुत ही सीधे थे। न पढ़े-लिखे, न दुनियादार, पर वैसा व्यक्ति मैंने आज तक कोई और नहीं देखा।...

"आप विश्वास नहीं करेंगे, उन्होंने अपने पूरे जीवन में कभी चाबी हाथ में नहीं ली या पैसे का स्पर्श नहीं किया- मरते समय तक नहीं। उनका यही कौल रहा कि न पैसा हाथ से छुएँगे, न चाबी! आपको यह भी आश्चर्यजनक लगेगा कि मेरे पिता चौदह वर्ष की अवस्था में घर के मालिक बन गए थे।...असल में बाबा दुनियादार तो थे नहीं। तो बाबा के बड़े भाई ने उन्हें अलग कर दिया था। बाबा ने तभी मेरे पिता को घर का मालिक बना दिया था और खुद इस सारे प्रपंच से अलग हो गए थे...!"

आगे बाबा के व्यक्तित्व की कुछ और बारीक रेखाएँ उभारते हुए तिवारी जी जो कहते हैं, उसमें खुद उनके जीवन-कर्म और मूल्यों का स्वर भी कहीं देखने को मिल सकता है। बाबा उन्हें आध्यात्मिक नहीं, दुनियादार ही लगते है। पर उनकी दुनियादारी कैसी है और उसमें जीवन भर परमार्थ के लिए कर्मलीन रहने का कैसा तप है, इसे खुद तिवारी जी से सुनिए -

"नहीं, आध्यात्मिक तो नहीं...इसलिए कि बाबा के जीवन में दो विरोधी छोर थे। अपने लिए वे संन्यस्त थे, पर परिवार के लिए पूरी तरह दुनियादार भी कि घर के लोगों की सभी जरूरतें पूरी हों..या किसी को कोई कष्ट न हो। बस, अपनी जरूरतें वे कम से कम रखना चाहते थे।... तो कोई न कोई आदर्श तो उनका था, पर वह आध्यात्मिक आदर्श रहा हो, मुझे नहीं लगता। इस अर्थ में अगर कोई आदर्श था तो कुछ-कुछ ऐसा ही कि अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीना है। आप कह सकते हैं कि कुछ लोग अपने शरीर-सुख और अपनी सुविधा के लिए जीना चाहते हैं,

जबकि दूसरे लोग अपने शरीर-सुख और सुविधाओं को तुच्छ मानकर चलते हैं। तो मेरे बाबा दूसरी किस्म के थे...!"

"और पिता...?" मैंने जानना चाहा। इस पर तिवारी जी ने बताया कि वे गँवई किसान थे, एकदम सीधे-सादे। शायद बाबा जैसे घोर कर्मठ भी नहीं। पर बेटे को पहचानने में उनसे भूल नहीं हुई। समझ गए कि यह औरों से अलग है और कुछ अलग ही ढब का है।

फिर अपने बचपन की यादें खँगालते हुए तिवारी जी ने कहा, "हाँ, मैं जब बोला करता था, तब जरूर उनका ध्यान इस बात की ओर जाता था कि यह लड़का कुछ अलग ढंग का है। थोड़े चकित होते थे और उन्हें अच्छा भी लगता था...और उससे भी ज्यादा बाबा को। बाबा हालाँकि एकदम अनपढ़ थे, पर उनमें एक अंतर्दृष्टि और सहज ज्ञान ज्यादा था। मुझे आज भी याद है, एक दफा मुझे खेत में काम करते देख, बाबा ने पिता से कहा था, 'सोने के कुदारी से खेत नाही कोड़ल जाला।' यानी सोने की कुदाली से खेत की गुड़ाई नहीं की जाती।...उनका यह वाक्य ऐसा है कि उसे मैं कभी भूल नहीं पाया। शायद इसलिए भी कि इसमें मेरे बाबा का समूचा व्यक्तित्व समाया हुआ है। उन्हें शुरू से ही लगता था कि मैं खेती के लिए नहीं बना। मुझे विद्या के क्षेत्र में जाना चाहिए।"

और अब तिवारी जी की साहित्य-यात्रा का प्रारंभ या कहें, लेखन का 'मंगलाचरण'! वह कब और कैसे हुआ? इस बारे में भी उनसे खुलकर बातें करने का मौका मिला। यह मुझे अच्छा और सुखकर इसलिए लगा कि तिवारी जी खुद को या अपने अतीत को ग्लोरीफाई कभी नहीं करते। वे अपनी सीमाओं के बारे में खुलकर बताते हैं और उनसे बाहर आने के संघर्ष और जद्दोजहद को लेकर भी बड़ी साफ बात कहते हैं। एकदम गँवई परिवेश में पल और बढ़ रहे विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने जब किशोरावस्था में कलम हाथ में ली और लिखना शुरू किया तो स्वाभाविक ही रामनरेश त्रिपाठी उनके आदर्श थे। यहीं से कविता की लकीर मन में खिंची तो आगे बढ़ती ही चली गई। इस बारे में खुद तिवारी जी ने बताया, "रामनरेश त्रिपाठी का खंडकाव्य 'पथिक' हमारे कोर्स में था। उसमें एक स्वाधीनता-प्रेमी आदमी का जीवन था जो घर-बार छोड़कर प्रकृति का आनंद लेने के लिए प्रकृति की गोद में चला जाता है। इस खंडकाव्य का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा था और मुझे यह पूरा कंठस्थ था।...तो जब पहली कविता लिखी, तो उस पर इसका प्रभाव भी था।"

फिर उनकी साहित्यिक यात्रा आगे कैसे चली, 'दस्तावेज' निकालने का ख्याल मन में कैसे आया और फिर साहित्य के मौजूदा परिदृश्य और आज के समय और समाज को एक साहित्यकार के रूप में वे कैसे देखते हैं, ऐसे एक नहीं ढेरों मेरे खदबदाते सवाल और तिवारी जी की शांत प्रभा में लिपटे उनके जवाब, जो ऊपरी शांत आवरण के भीतर गहरी हलचल समेटे हुए थे।

हालाँकि जैसा इस इंटरव्यू को थोड़ा-सा और आगे चलकर होना था, हुआ।...यानी अंत तक आते-आते सवाल-जवाब भी कहाँ रहे, एक अजब तरह की अनौपचारिक बतकही चल पड़ी। अब नाम उसे इंटरव्यू दिया जाए या कुछ और, इसकी परवाह किसे थी!

शायद इसी अर्थ में हर तरह की सर्जनात्मकता या रचना सीमाएँ तोड़ती है। तोड़ती और कुछ बनाती है। नजदीक से देखें, तो तिवारी जी में भी यह तोड़ना और बनाना है, लेकिन बड़े शांत कलेवर में!

अलबत्ता कोई ढाई घंटे तक चले इस अनौपचारिक इंटरव्यू से विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को काफी भीतर तक जानने का मौका मिला। बीच-बीच में ऐसे क्षण आए कि मैं आर्द्र हो उठा। उनकी रचनाएँ ही नहीं, रचना की जमीन भी अब जैसे अर्थ खोलने लगी। इसके बाद खुद-ब-खुद तिवारी जी के रचनाकार रूप से भी निकटता होती चली गई।

तिवारी ने अपनी कुछ पुस्तकें भेंट कीं, तो उनके कवि और आलोचक रूप को निकट से देखने-जानने का अवसर मिला। उनकी कविताओं से तो बहुत पहले से परिचित था। लेकिन उनके गद्य-लेखन की शक्ति को अब नजदीक से जाना। आलोचना, संस्मरण और यात्रा-वृत्तांत, तिवारी जी के गद्य के इन तीनों रूपों से रू-ब-रू होने का अवसर मिला। इनमें यात्रा-निबंधों से निकटता कुछ पहले हुई और इन पर एक छोटी-सी टिप्पणी भी मैंने लिखी भी। कारण शायद यह कि तिवारी जी के यात्रा-निबंधों में जैसी सादगी और सहजता है, वह बहुत कम देखने को मिलती है।

ये ऐसे यात्रा-वृत्तांत हैं, जिनमें तिवारी जी ने कैमरा पूरी तरह अपने ऊपर नहीं रखा और राह में जो लोग मिले, वे सब इसमें खुद-ब-खुद शामिल होते जाते हैं। भले ही वह कोई मैला, उदास बच्चा या अनाम-सा शख्स क्यों न हो! पर जिस-जिस पर भी तिवारी जी की नजर पड़ी और जिस-जिसने भी उन्हें सोचने को बाध्य किया, वे उसे अपने साथ ले लेते हैं। फिर इन यात्रा-वर्णनों में प्रकृति की सुंदरता की एक से एक अनोखी झाँकियों का वर्णन तो रसमग्न कर देने वाला है। लगता है कि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कवि रूप यहाँ बोल उठा है।

लेकिन अपनी इन अनथक यात्राओं में वे सिर्फ भावमग्न कवि ही नहीं बने रहते, बल्कि जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ लोगों के व्यवहार और जीवन-परिस्थितियों को भी गहराई से देखते-आँकते और समझना चाहते हैं। तिवारी जी के यात्रा-वर्णनों की दो पुस्तकें बहुत चर्चित हुईं, 'आत्म की धरती' और 'अंतहीन आकाश'। इनमें खासी विविधता है। यानी एक ओर मैदानी यात्राएँ हैं, तो दूसरी ओर पहाड़ और समंदरों की पुकार उन्हें जहाँ-जहाँ ले गई, उन सभी स्थलों का वर्णन है। इन पुस्तकों को पढ़ने के बाद यह आश्चर्य होता है कि एकदम सीधा-सादा देहाती-सा लगने वाला यह व्यक्ति कहाँ-कहाँ हो आया और कैसे अपने ढंग से समूचे भारत की परिक्रमा कर डाली। उत्तर और पूर्वी भारत ही नहीं, धुर-दक्षिण तक वे गए। यहाँ तक कि पूर्वोत्तर प्रदेशों तक और फिर विदेशों की उनकी यात्राएँ तो हैं ही। आश्चर्य होता है कि क्या उनके भीतर पालथी मारे राहुल सांकृत्यायन सरीखा कोई सैलानी बैठा है, जिसके भीतर नए-नए लोगों से मिलने और नए-नए स्थानों को देखने की एक गहरी अनझिप प्यास है।

पर मजे की बात यह है कि जहाँ-जहाँ वे गए, वह देश हो या विदेश, छोटे कस्बे हों या महानगर, उनका सादा और खुद्दार गँवई व्यक्तित्व हमेशा उनके साथ रहा है। वे कभी किसी के रोब में नहीं आते।

कुछ-कुछ यही खूबी तिवारी जी के संस्मरणों में भी है, जो औरों से अलग हैं और एक बार पढ़ लेने के बाद आसानी से भूलते नहीं हैं। इस लिहाज से उनकी पुस्तक 'एक नाव के यात्री' बहुत महत्त्वपूर्ण और बार-बार पढ़ने लायक है। पुस्तक के प्रायः सभी संस्मरणों में एक ऐसा स्वाभाविक खुरदरापन है, जो लगातार उनकी शख्सियत और भीतरी ताप को हमारे सामने उभारता है। साथ ही ये रसमग्न कर देने वाले संस्मरण हैं। तिवारी जी जब किसी बड़ी साहित्यिक शख्सियत या सहयात्री के बारे में कह रहे होते हैं, तो पूरी तरह से तल्लीन होकर या डूबकर कहते हैं और पाठकों को भी अपने साथ बहा ले जाते हैं।

आम तौर से जिसके बारे में वे लिख रहे हैं, उसके बारे में आदर, स्नेह या गहरी हार्दिकता का भाव ही उनमें रहता है। आजकल जैसे दूसरों की टाँग खिंचाई और कीचड़ उछालने के लिए संस्मरण लिखे जाते हैं, वैसे संस्मरण आप यहाँ हरगिज न पाएँगे। लेकिन तिवारी जी से ऐसे संस्मरणों की उम्मीद भी न की जाए, जिनमें 'अहो-अहो' वाली झूठी प्रशंसा होती है। लिहाजा जब, जिसके बारे में, जो कहना होता है, वे हर हाल में कहते ही हैं। फिर चाहे विद्यानिवास मिश्र जैसे उनके आदरणीय और विद्वान मित्र हों, नामवर सिंह जैसे बड़े आलोचक हों या फिर परमानंद श्रीवास्तव जैसे उनके समकालीन। लिखते समय वे अपने नायक या सहयात्री की विशेषताएँ ही उभारते हैं, पर बीच-बीच में जहाँ कहीं कोई सीधी, बेबाक बात कहने की जरूरत होती है, वहाँ वे कहते हैं और पूरे साहस के साथ कहते हैं। आदमी बड़ा है या छोटा और उनके कहने का कोई बुरा मानेगा या अच्छा, इसकी वे कतई परवाह नहीं करते।

यही कारण है कि विद्यानिवास मिश्र जी पर लिखे गए संस्मरण में उनकी कुछ टिप्पणियाँ आश्चर्यजनक रूप से कठोर लगती हैं। ऐसे ही नामवर जी की पर्याप्त इज्जत करते हुए भी उनके आलोचक की सीमाएँ दर्शाने में वे पीछे नहीं रहते और परमानंद श्रीवास्तव के लेखन के बारे में उनकी यह टीप ही काफी है कि जो भी नई पुरानी-पत्रिका पलटिए, उसमें आपमें परमानंद श्रीवास्तव विराजमान मिल जाएँगे। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि अब उनके लिए लेखन के क्या मानी हो चुके हैं!

यों इन संस्मरणों में कुछ ही पंक्तियों में अपनी पूरी बात कह देना और बगैर अशालीन हुए कह देना- बगैर उत्तेजना और तल्खी के कह देना, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की एक बड़ी शक्ति ही मानी जाएगी और यह चीज उनके यहाँ बार-बार ध्यान खींचती है।

फिर तिवारी जी के दो बड़े चर्चित और ऐतिहासिक महत्त्व के संपादकीयों पर बात न की जाए, तो बात अधूरी ही रहेगी, क्योंकि उनकी साहित्यिक शख्सियत का 'मर्म' और ताकत इनमें छिपी हुई है। इन दो संपादकीयों में से पहला उन्होंने राजेंद्र यादव को लेकर लिखा और दूसरा नामवर सिंह का लेकर। ये दोनों ही हिंदी की ऐसी बड़ी शख्सियत हैं, जिनके बारे में कुछ कहने से पहले लोग दस बार सोचते हैं। पर आश्चर्य, तिवारी जी ने बड़ी हिम्मत और दृढ़ता के साथ और आश्चर्यजनक निर्भयता से उन पर लिखा है।

राजेंद्र यादव अपने लंबे संपादकीयों में खुद को स्त्रियों के सबसे बड़े हिमायती के रूप में पेश करते हैं, पर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी मन्नू भंडारी की कुछ बेहद तल्ख और बेधक टिप्पणियों का साक्ष्य लेकर और खुद राजेंद्र यादव के समय-समय पर लिखे गए लेखों के आधार पर, अपने एक लंबे संपादकीय लेख में इसी की पोल खोलते हैं। तिवारी जी बड़ी स्पष्टता से और हिम्मत के साथ दिखाते हैं कि स्त्री को लेकर राजेंद्र यादव का दृष्टिकोण कितना मर्दवादी, सामंती किस्म का तथा खोखला है। वे स्त्री की देह से मुक्ति का जो नारा लगाते हैं, उसके पीछे पुरुष की कैसी लपलपाती इच्छाओं के नागपाश हैं। इसमें स्त्री की मुक्ति नहीं, वरन् स्त्री को एक-दूसरे ही जाल में फाँसने का जतन है। खास बात यह है कि तिवारी जी बहुत करीने से यह बात सामने रखते हैं और इसे खुद राजेंद्र यादव के कथनों में छिपे विरोधाभासों के जरिए उभारते और उधेड़ते हैं।

इसी तरह नामवर सिंह की रामविलास शर्मा-ग्रंथि को वे इस कदर बेनकाब करते हैं कि नामवर जी का पूरा आलोचकीय व्यक्तित्व ही जैसे भरभराकर ढ़हने लगता है और मजे की बात यह है कि इसके लिए तिवारी जी को अपनी ओर से कुछ विशेष कहने या कुछ करने की जरूरत नहीं होती, बल्कि वे नामवर जी के 'तब' और 'अब' के दो लेखों को आमने-सामने रख देते हैं। आज से कोई चार दशक पहले नामवर सिंह रामविलास जी की प्रशस्ति में क्या कुछ कह गए थे और बाद में रामविलास जी के आँख मूदते ही कैसे विष और कटाक्षपूर्ण तीर छोड़ने लगे और अपनी ही बातों को पलटते चले गए। तिवारी जी ने नामवर जी को ही बार-बार उद्धृत करते हुए यह बताया है। रामविलास जी की जिस-जिस बात के लिए नामवर तारीफ करते थे, बाद में वे उसी-उसी बात को प्रकारांतर से ध्वस्त करने में लग गए। इससे नामवर सिंह रामविलास जी को तो ध्वस्त कर नहीं पाए, हाँ, अपने आलोचक रूप को उन्होंने अविश्वसनीय जरूर साबित कर लिया।

नामवर जी पर इतना सटीक लेख शायद आज तक दूसरा नहीं लिखा गया। मैंने खुद नामवर जी पर एक लंबा लेख लिखा था, 'नामवर ही नामवर के सबसे बड़े दुश्मन हैं' और इसमें उनकी असाधारण प्रतिभा के साथ ही तमाम सीमाएँ और विरोधाभास सामने रखे थे। मगर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जी की एक बड़ी खासियत यह है कि बगैर किसी उत्तेजना के और बगैर अशालीन हुए वे गहरी चोट करते हैं। एक बड़े लेखक की यह पहचान और ताकत है। यह ऐसा विलक्षण गुण और गुर है, जो मैं उनसे यकीनन सीखना चाहूँगा।

तिवारी जी ने राजेंद्र यादव और नामवर सिंह पर ये दो लंबे और ऐतिहासिक महत्त्व के लेख लिखकर दिखा दिया कि बगैर उत्तेजना के ज्यादा मार की जा सकती है। उसमें भी उत्तेजना होती तो है, पर वह छलकती नहीं फिरती और एक आंतरिक शक्ति बनकर फूट पड़ती है। तिवारी जी से बेशक यह बात मैं और मेरी पीढ़ी के लोग सीख सकते हैं।

अलबत्ता तिवारी जी की यही रचनात्मक ऊर्जा साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष के रूप में उनके कार्यकाल में दिखाई पड़ी, जिसमें उन्होंने अकादेमी को एक प्रजातांत्रिक विन्यास देने की

भरसक कोशिश की। इस संबंध में उनके उत्साह, उदारता और खुलेपन को बहुतों ने देखा और सराहा भी। मुझ सरीखे बहुत से लेखकों के लिए यह एक चकित कर देने वाला अनुभव था। दूसरी बातें छोड़ भी दें, तो तिवारी जी के प्रयत्नों से एकदम अलग लीक पर चलने वाले वे साहित्यकार जो बरसों से साहित्य अकादेमी से कुछ दूर-दूर से थे, उतने दूर नहीं रह गए थे और उत्साह से अकादेमी के आयोजनों में शिरकत करते देखे जा सकते थे। यह परिवर्तन कम से कम गौर करने लायक है।

और फिर एक बड़े जीवट वाले कवि-लेखक के रूप में तिवारी जी की अनवरत यात्राएँ! उनके पास हर क्षण बड़ी योजनाएँ और बड़े-बड़े काम रहते हैं, जिनकी चर्चा वे अक्सर बड़ी सादगी से करते हैं। अक्सर उन्हें सामने देखकर मुझे उनकी ग्राम्य सादगी के बावजूद, खुद उन्हीं की एक कविता याद आती है, 'सड़क पर एक लंबा आदमी'। वह लंबा आदमी सबसे बेपरवाह अपनी विनम्र चाल में चलता जा रहा है...और लोग जिन्होंने उसे देखा है, बड़े आश्चर्य चकित होकर बात कर रहे हैं कि, 'ओह, कैसा एक लंबा आदमी चलता चला जा रहा है सड़क पर...!' यह पूरी कविता उद्धृत करने का लोभ सँवरण नहीं कर पा रहा हूँ। आप भी पढ़ें यह कविता-

आज अचानक दीख गया
सड़क पर एक लंबा आदमी

लोग अपनी-अपनी दुकानों से
उचक-उचक कर घूर रहे थे उसे
बच्चे नाच रहे थे तालियाँ बजाकर

हवलदार फुसफुसा रहा था-
'हुजूर, हवालात के दरवाजे से भी
ऊँचा है यह आदमी।'

मसखरे हिनहिना रहे थे
जहाँपनाह, आप की कुर्सी से भी
बड़ा है यह आदमी

चौराहे का सिपाही आँखें फाड़े देख रहा था
बाप रे, सड़क पर इतना लंबा आदमी!
सीधा तना चल रहा था वह
राजपथ पर दृढ़
विनम्र और बेपरवाह

शहर में आग की तरह फैल गई थी
यह खबर
निकल पड़े थे अपने-अपने घरों से
बौने लोग
चौकन्ने हो गए थे अखबार
सेना कर दी गई थी सतर्क
मंत्रिपरिषद में चल रहा था विचार

एक बुढ़िया
अपने पोते-पोतियों को जुटाकर
दिखा रही थी
कि सतयुग में होते थे
ऐसे ही लंबे आदमी।

पता नहीं क्यों, जब-जब इस कविता को पढ़ता हूँ तो सड़क पर चलते इस लंबे आदमी में मुझे विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का चेहरा दिखाई देने लगता है। वे जमीन से जुड़े ऐसे लेखक हैं, जो बड़े से बड़े पदों पर रहे हैं और साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष पद को भी उन्होंने सुशोभित किया है। इस समय वे साहित्य अकादेमी के महत्तर सदस्य या फेलो हैं और निरंतर अपने सृजन में जुटे हैं। पर आश्चर्य, आज भी वे पहले की तरह सीधे-सहज हैं और उनकी सादगी मुग्ध करने वाली है।

तो इस लंबे और वाकई लंबे, सादा और इकसार आदमी को मेरा सलाम! वे आगे, बहुत आगे जाएँ और अपनी मंजिल-दर-मंजिल हासिल करें, मेरी शुभकामनाएँ! हाँ, वे कितने ही आगे क्यों न बढ़ जाएँ, हमारे तो वही प्यारे-प्यारे से और कुछ-कुछ गँवई ढब के तिवारी जी बने रहें, इसकी कामना और उम्मीद तो हम कर ही सकते हैं।

प्रकाश मनु, 545 सेक्टर-29, फरीदाबाद (हरियाणा), पिन-121008
मो. : 9810602327, ई-मेल : prakashmanu334@gmail.com

अजीत कुमार वर्मा की कविताई

कमलानंद झा

अस्सी के पार कवि अपने मिजाज में और कविता में युवा हैं। युवा होने का अर्थ यह भी है कि मुक्ति की घनघोर आकांक्षा हम इनकी कविताओं में यहाँ से वहाँ तक देख सकते हैं। प्रेम मुक्ति की चाहत की अभिव्यक्ति है। अजीत बाबू की प्रेम कविताएँ प्रेम के विविध रूपों से साक्षात्कार कराती हैं। यह प्रेम कविताएँ भले ही एक स्तर पर आध्यात्मिकता की ओर जाती हैं लेकिन हैं सांसारिक प्रेम ही। इसमें अलौकिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रेम कविता लिखना कठिनतम काम है। प्रेम करना जितना कठिन है उससे अधिक कठिन अच्छी प्रेम कविता लिखना है। केदारनाथ सिंह जिन्होंने कई विलक्षण प्रेम कविताएँ लिखी हैं अपने एक साक्षात्कार में स्वीकार किया है, प्रेम कविता लिखना मेरे लिए सर्वाधिक दुष्कर कविकर्म है। अजीत कुमार वर्मा की प्रेम कविताओं की आप जाँच करें, तो प्रेम-कसौटी पर पूरी तरह खरी उतरती हैं।

तुम भले ऊँची करो दीवार जितनी
हम परिंदे हैं, उसे भी लाँघ जाएँगे।

अजीत कुमार वर्मा उन कवियों में हैं जो सिर्फ कविता नहीं लिखते बल्कि कविता के प्रश्न पर गंभीरता से विचार करते हैं। कविता क्या है, कविता से कितनी उम्मीद की जानी चाहिए, कविता आखिर करती क्या है, कविता-रचना की प्रक्रिया क्या होती है, कोई कविता अच्छी कैसे बन जाती है आदि प्रश्नों से लगातार अजीत कुमार वर्मा जूझते हैं।

छायावाद के जितने कवि हुए हैं, लगभग सभी ने कविता के प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया है। लेकिन आज सिर्फ कविता लिखी जाती है, उस पर विचार कम होते हैं। अजीत कुमार वर्मा कविता पर विचार करते हुए कहते हैं, ''स्वयं कविता होने की साधना प्रक्रिया में जो रस कवि के व्यक्तित्व में पूरा का पूरा जज्ब होते-होते रह जाता है, छलक पड़ता है, वही कविता है। यही छलकन, यही 'सबद' कविता का उत्स है।''

दूसरी महत्वपूर्ण बात जो उनकी कविता देखने को मिलती है और विचार में, वह है- आखर की मितव्ययिता। दरअसल, वर्मा जी मितव्ययी आखर के कवि हैं। इनकी कविता बड़बोलेपन का शिकार नहीं होती है। इनकी कविता या विचार में शब्दों की बौछार नहीं होती। इनकी मानें तो दो शब्दों के बीच में कहीं न कहीं कविता मौजूद होती है। इनकी

कविता में मौन की प्रमुखता है। इनके एक संग्रह का नाम ही है 'शब्द मौन है'।

शब्द और अर्थ का सार्थक समन्वय ही कविता नहीं है बल्कि अधिक गूढ़ गोताखोरी है कविकर्म। कवि अजित कुमार वर्मा के अनुसार, शब्दों के बीच फैला मौन मेरे कवि को ज्यादा पसंद है। आवाजों के बीच पसरा सन्नाटा और सन्नाटे में गहरे उतरकर उसके संदर्भों को खींच लाना असली कविकर्म है। इनके अनुसार, कविकर्म बैठे निठल्ले का काम नहीं है। काव्य-लेखन कितना दुरुह कार्य है, वे इस ओर संकेत करते हैं। यह संयोग नहीं है कि अजीत बाबू की कविताएँ संख्या में भले ही कम हों, लेकिन गुणवत्ता में अपूर्व हैं।

अस्सी के पार कवि अपने मिजाज में और कविता में युवा हैं। युवा होने का अर्थ यह भी है कि हम इनकी कविताओं में मुक्ति की घनघोर आकांक्षा सर्वत्र तक देख सकते हैं। प्रेम मुक्ति की चाहत की अभिव्यक्ति है। अजीत बाबू की प्रेम कविताएँ प्रेम के विविध रूपों से साक्षात्कार कराती हैं। यह प्रेम कविताएँ भले ही एक स्तर पर आध्यात्मिकता की ओर जाती हैं, लेकिन हैं सांसारिक प्रेम ही। इसमें अलौकिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रेम कविता लिखना कठिनतम काम है। प्रेम करना जितना कठिन है उससे अधिक कठिन अच्छी प्रेम कविता लिखना है। केदारनाथ सिंह जिन्होंने कई विलक्षण प्रेम कविताएँ लिखी हैं, उन्होंने अपने एक साक्षात्कार में स्वीकार किया है कि प्रेम कविता लिखना मेरे लिए सर्वाधिक दुष्कर कविकर्म है। अजीत कुमार वर्मा की प्रेम कविताओं की आप जाँच करें, तो प्रेम-कसौटी पर पूरी तरह खरी उतरती हैं। उनकी प्रेम कविता की कुछ पंक्तियाँ गुनगुनाएँ -

एक पल मुझमें कहीं कुछ बो गया ऐसा
पा सका न खुद को न फिर, मैं हो गया वैसा!
छंद यह मधु-बंध का
मुझ में रचा तुमने
मन को गम-गम कमल-वन-सा
ठूंठ मैं फिर हो हरा मधुमास बन झूमा
तुमने सुरभित श्लोक-सा मुझको रचा ऐसा!

प्रोफेसर वर्मा की प्रेम कविता प्रेम में कायांतरित करनेवाली कविता है। एक से एक खराब मनुष्य को प्रेम बेहतर मनुष्य में रूपांतरित कर देता है। एक दूसरी प्रेम कविता इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है-

एक कतरा भर मिला था ओस का इस प्यार को
जो वास्ते इस तिश्नगी के आबे जमजम हो गया।
ए मेरे हमदम लगाया तुमने मुझको यूँ गले
तीरगी के तंग कूचा मैं मुनव्वर हो गया।

कवि को अपनी कविता पर अगाध विश्वास है, जिसे कवि को अपनी कविता से प्यार नहीं होगा और अपनी कविता पर विश्वास नहीं होगा, वह दूसरे की कविता से प्यार नहीं कर सकता। विद्यापति को भी अपनी कविता पर बहुत विश्वास था, जब वे कहते हैं 'बालचंद्र बिज्जावई भाषा', अब्दुल रहमान से लेकर तुलसीदास तक को अपनी कविता पर बहुत आस्था रही है। जितने बड़े और महत्वपूर्ण कवि हुए हैं, लगभग सभी को अपनी कविता पर गर्व रहा है। अजीत कुमार वर्मा जिस मौन की बात करते हैं, उस मौन की बदौलत उनकी कविता में आत्मविश्वास आता है-

यह चुप्पी इस कदर भारी
कि हर आवाज पर भारी।
यह रोशन इस कदर
कि सारा शहर सकते में
उसकी पुरकशिश आवाज कुछ ऐसी मुकद्दस थी
कभी गुनगुन गजल लगती कभी अजान लगती थी

अजित कुमार वर्मा की कविता में एक तरफ आबे जमजम है, अज़ान है तो दूसरी तरफ विविध प्रकार के छंद और श्लोक की भरमार है। यह जो शब्दों का विन्यास और रेंज है, वह इनकी कविता को विस्तृत आयाम देता है।

अभी हिंदी साहित्य में लोग बहुत संभल-संभल कर थाह-थाह कर लिख रहे हैं। सत्तातंत्र से गुस्ताखी से परहेज करते हुए। जब पत्रकार रवीश कुमार मीडिया को 'गोदी मीडिया' कहते हैं तो साहित्य में भी 'गोदी साहित्य' होता है। ऐसे दौर में अजीत बाबू एक ऐसे कवि हैं, जो कहते हैं कि मदांध सत्ताधारी को लगता है कि दूसरे की सत्ता जा सकती है; मेरी सत्ता नहीं जाएगी-

तू नहीं आखिरी नज़्में-सुखन
फिर उड़ेगी नज्म कोई सोच तू

कवि सत्ता व्यवस्था की निरंकुशता से साहसपूर्वक संवाद करते हैं। कवि अजीत कुमार वर्मा सभी तरह के सत्ता प्रतिष्ठान को चुनौती देते हुए कहते हैं -

बादशाहत भी सदा किसकी रही
वक्त पल में छीन लेता सोच तू....
तू हजारों दीवारें खड़ी कर
धार लेगी राह अपनी सोच तू
कभी किसी का एक-सा है रात-दिन
वक्त भी करवट बदलता है सोच तू।
ऐसे तंत्र को संभालने की चेतावनी देते हुए कवि कहता है -
जलजले और तूफां दरपेश है
अब भी सम्हल

आग की लपटें ये चारों ओर देख
जिंदगी से मौत का है खेल
अब भी सम्हल।

मेरा मानना है कि जो सच्चा कवि होगा वह जनवादी कवि भी होगा। अजीत कुमार वर्मा को जितना मैं जानता हूँ वह कभी किसी राजनीतिक पार्टी के सदस्य नहीं रहे, लेकिन उनकी कविता में आप देखें कि जनवाद की स्पष्ट अनुगूँज सुनाई देती है। जन की पीड़ा और आकांक्षाओं को समझना और उसे सहज-सरल तरीके से काव्य में उतारना ही जनवादी कविता है। जन के साथ खड़ा हो जाना ही जनवाद है। इस तरह अजीत कुमार वर्मा की कविता को नागार्जुन की काव्य परंपरा में देखा जा सकता है। जब वह कहते हैं-

शब्द मेरे मर्म से उमड़ो
जन के मर्म में उतरो।
जन से जन की दूरियाँ
सेतु बनकर पाट दो।

अजीत कुमार वर्मा की कविताएँ, मनुष्य-मनुष्य के बीच की सभी तरह की दूरियों को खत्म करने का आह्वान है। सामाजिक सरोकारों से निश्चिंत शाश्वत विषय पर कविता लिखना एक तरह की राजनीतिक चतुराई है। यह शाश्वत विषय एक तरह का पाखंड है, जीवन में विन्यस्त शोषण और उत्पीड़न से बच निकलने का चोर रास्ता। अजीत कुमार वर्मा की कविताएँ इस शाश्वत विषयरूपी चोर रास्ते को नामंजूर करती हैं-

आग लिख, पानी लिख,
अपनी जिंदगानी लिख।
जो किस्तों में मरते हैं
उनकी दर्द कहानी लिख।
मौसम ने बदले तेवर
नदियों की मनमानी लिख।
व्याधों ने फेके दाने
पाखी की नादानी लिख।
दिल को दिल से जोड़े जो
ऐसी एक कहानी लिख।

यहाँ कविता में कहानी लिखने की माँग अनूठी है।

जिंदगी के गीत तो सब लोग गाते हैं, गाना भी चाहिए। अपने जीते जी की खुशियाँ सब लोग देखते हैं। कबीर ने कहा जो घर जारे आपना चले हमारे साथ। कबीर घर जलाने की बात करते हैं, अजीत कुमार वर्मा खुद को जलाने की बात करते हैं और अपनी मृत्यु का उत्सव मनाते

हैं। मृत्यु से सब कोई डरता है लेकिन कवि अजीत को मृत्यु से रत्ती भर डर नहीं लगता। उनकी कविता मृत्यु के भय पर विजय प्राप्त कर लेती है-

सजाकर आग का पलंग
सो गया हूँ ठाट से
और लपटों की रजाई
ओढ़ ली है ठाट से
रो रहा जहान अब
मैं हँस रहा हूँ ठाठ से
ज्वाल ज्वाल मैं चमक
दमक रहा हूँ ठाठ से

यह 'वहाँ' जाने की ठाठ पूर्ण तैयारी है। आधुनिक कविता में इस तरह की निर्वेद कविता ढूँढ पाना कठिन है। इस तरह अजीत वर्मा की कविता मध्यकालीन भक्त कवियों से जुड़ जाती है।

स्त्री-मुक्ति की आकांक्षा और आजादी के विविध स्वर यहाँ तलाशे जा सकते हैं। जहाँ कहीं भी आजादी पर प्रतिबंध लगते कवि को दिखता है, वहाँ इनकी कविता खड्‌गहस्त हो जाती है। आजादी का सुख और मुक्ति का आनंद उनकी कविता में देखते ही बनता है। आज ऐसे लोग खूब मिल जाएँगे, जो बोलते हैं कि अब स्त्री को आजादी की क्या आवश्यकता है? वह तो पूरी तरह आजाद हो चुकी है, कुछ ज्यादा ही बोलने लगी है। ऐसे माहौल में अजीत कुमार वर्मा स्त्रियों को जोर-जोर से बोलने के लिए न्योता देते हैं। जहाँ सुबह से शाम तक लड़कियों को नसीहत दी जाती है कि धीमे बोलने, लड़कियों को उठने-बैठने, चलने-फिरने, बोलने को नियंत्रित किया जाता है, अजीत कुमार वर्मा की कविता स्त्रियों पर आरोपित सभी तरह के नियंत्रण को ध्वस्त कर देती है। स्त्रियों पर लगाई गई वर्जनाओं को वे अपनी कविताओं में तोड़ते हैं। स्त्री-मुक्ति का मूल मकसद है- स्त्रियों का आत्मनिर्णय। पैमाना यह होना चाहिए कि समाज ने अपनी बेटियों और बहुओं को आत्मनिर्णय के लिए कितना तैयार किया है। केवल नौकरी करने के लिए नहीं, शादी करने के लिए ही नहीं, विषम परिस्थिति में शादी तोड़ने तक के लिए स्त्रियाँ आत्मनिर्णय ले सकती हैं। वर्मा जी की कविता स्त्रियों को आत्मनिर्णय के लिए प्रेरित करती है -

उसे मंजूर नहीं अब कि
वह सोचे तुम्हारे कहे को
बस, देखे उतना भर
जितने की छूट
दी है तुमने.....
उसे कतई मंजूर नहीं जिंदगी की

थोपी गई परिभाषा ढोना जो
सिर्फ और सिर्फ उसके लिए गढ़ी गई थी

यह सारी परिभाषाएँ एक मादा को स्त्री बनाती है। मादा को स्त्री बनाने की पूरी परियोजना पर अजीत की कविताएँ सवाल उठाती हैं। उनकी कई कविताओं में यह सवाल सामने आता है-

वह भरेगी खुद अपनी उड़ान
खोलेगी खुद अपनी पाँख
और गढ़ेगी खुद अपनी पाँख
और गढ़ेगी खुद अपना आसमान
उड़ान के वास्ते

प्रोफेसर वर्मा की कविता उम्मीद और उजास की कविता है। वैसे वो कविता ही क्या जो हताश और निराश मन में उम्मीद की लौ न जगा दे। उम्मीद भी हवाई और बेतुकी नहीं, सार्थक और सर्जनात्मक-

माना कि घनी रात है
पर रात ही तो है
बस दो कदम आगे
देखो, प्रातः भी तो है।

उम्मीद अपने विश्वास पर, अपनी प्रतिभा पर। 'कभी उजास बाकी है' कविता में वे कहते हैं कि जब तक साँस बाकी रहे, विश्वास को खोने नहीं देना है-

घनेरी रात है तो क्या?
अभी तो साँस बाकी है,
अभी विश्वास बाकी है,
दीया की काँपती लौ में,
अभी उजास बाकी है।

कविता तो एक तरफ अजीत कुमार की गजल की धार भी बहुत पैनी है। गजल के प्रतिमान पर खरी उतरने वाली गजलें। इनकी एक कविता में विज्ञापन की गुलामी पर तंज कसा गया है। रसोई से लेकर बेडरूम तक विज्ञापन की पहुँच हो गई है, आज आदमी विज्ञापन का खिलौना बन गया है। आपके पॉकेट में अगर 2 रुपया ही है तो 2 का शैंपू पाउच बाजार में उपलब्ध है। आपके पॉकेट में 200 रुपया नहीं है तो बाजार आपके पॉकेट से वह 2 रुपया भी निकाल लेगा। चिकनी मिट्टी और मुल्तानी मिट्टी पर 2 रुपया का शैंपू पाउच भारी पड़ता है। बाजार की टकटकी गरीब के उस 2 रुपया पर भी लगी हुई है। उनकी कविता कम से कम शब्दों

में बड़ी से बड़ी बात कह देती है। अजीत जी की कविता की भाँति उनकी गजल विधा का जोड़ ढूँढ पाना भी कठिन है-

चाहे तो लोगों के क्या हँसी ख्वाब हैं
टांके गए दीवारों पर वादे क्या खूब हैं
दिले-नादाँ को बहलाने के लिए
चाहो तो ले लो किराए पर नंगी पीठ है
तुम्हें क्या चाहिए अब इश्तहारों के लिए।

अजीत कुमार वर्मा शब्द के सही अर्थों में साहित्य- विवेक- संपन्न व्यक्ति है। हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत, अंग्रेजी, मैथिली, बांग्ला तथा उर्दू साहित्य का गहन अध्ययन उनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करता है। सौंदर्यशास्त्र, शास्त्रीय संगीत एवं ललित कलाओं में विशेष अभिरुचि के कारण इनकी कविता का कैनवास अत्यंत व्यापक बन पड़ा है।

'शब्द मौन है' और 'दूर्वा' काव्य संग्रह के अतिरिक्त उनकी अनेक असंकलित कविताओं में हम अनुशासनों की रचनात्मक घुलावट को बहुत स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। कविता की तरह अजीत कुमार वर्मा का व्यक्तित्व अत्यंत कोमल और पारदर्शी है। समय और परिस्थिति की धमाचौकड़ी और उठापटक से निस्संग साहित्य की सेवा और 'अन्य' की चिंता इनके जीवन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य रहा है। किसी के व्यक्तित्व को मापना हो, तो यह देखा जाना चाहिए कि उसके जीवन में 'दूसरों' के लिए कितना स्थान है।

अजीत बाबू अपने समकालीनों के अतिरिक्त अपने बाद की पीढ़ियों के रचनाकारों से निरंतर संवादरत रहते। उनकी छोटी-से-छोटी रचनाओं पर विमर्श करते, उत्साहवर्धन करते और मार्गदर्शन करते। वे विपरीत परिस्थिति में हमेशा दूसरों की मदद को तत्पर तैयार रहते। कुल मिलाकर उनका व्यक्तित्व काव्यमय है। अजीत कुमार वर्मा के लिए कविता और जीवन एक दूसरे का पर्याय है, संग-साथ है। अपनी कविताओं में जो लिखते हैं, उसे जीने की जिद अजीत कुमार वर्मा को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है-

कविता से कविता में
कविता बन उगे हम,
कविता में लीन हुए
तनिक नहीं दीन हुए।

डॉ. कमलानंद झा, प्रोफेसर, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ, उत्तर प्रदेश
ई-मेल : jhakn28@gmail.com

✧ ✧ ✧

नेपाल में हिन्दी पत्रकारिता : स्वरूप और विकास

डॉ. श्वेता दीप्ति

नेपाल में ऑनलाइन पत्रकारिता शुरू करने वाली पहली संस्था के रूप में मर्केंटाइल का नाम इतिहास के पन्नों में दर्ज है। मर्केंटाइल ने 1995 में क्रांतिपुर पब्लिकेशन हाउस के अंग्रेजी दैनिक द काठमांडू पोस्ट को साउथ-एशिया-कॉम के माध्यम से अपनी साइट पर डालकर ऑनलाइन पत्रकारिता की शुरुआत की। नेपाल में ब्लॉग साइटों पर भी बहुत-सी खबरें प्रकाशित होती हैं। कुछ ब्लॉग साइटें केवल समाचार प्रकाशित करती हैं, इसीलिए नेपाल में ब्लॉग भी खबरों का माध्यम बनने लगा है। हालांकि ब्लॉग एक समाचार साइट नहीं है। ब्लॉग किसी व्यक्ति के लिए अपने दैनिक जीवन के बारे में लिखने और उसे वेब पर प्रकाशित करने का एक तरीका है। नेपाली अखबारों और पत्रकारिता के विकास के इतिहास का अध्ययन करके यह समझा जा सकता है कि नेपाल की भौगोलिक स्थिति, राजनीतिक अस्थिरता, औद्योगिक विकास में बाधा, आर्थिक संकट आदि ने इसे प्रभावित किया है।

पत्रकारिता के इतिहास पर नजर डालें, तो माना जाता है कि विश्व में पत्रकारिता की शुरुआत। 16वीं शताब्दी में हुई थी। 1690 में अमेरिका में पब्लिक अकुरेंस (जन घटना) बोस्टन में प्रकाशित पहला समाचार पत्र माना जाता है। संचार आज दुनिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आज 21वीं सदी चल रही है। आज बिना संचार के समाज की कल्पना भी हम नहीं कर सकते हैं। यह सोचना ही अजीब लगता है कि बिना संचार के समाज कैसा रहा होगा।

नेपाल में समाचार पत्रों का इतिहास साहित्यिक समाचार पत्रों के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है। वि.सं. 1955 (ई.सं.1898) में नेपाल में प्रकाशित 'सुधा सागर' को नेपाल का पहला समाचार पत्र माना जाता है, लेकिन युवा कवि मोतीराम भट्ट की पहल पर भारत के वाराणसी नगर से वि.सं. 1948 (ई.सं.1826) में प्रकाशित 'गोरखा भारत जीवन' को नेपाली भाषा की पहली पत्रिका माना जाता है। इसलिए युवा कवि के रूप में पहचाने जाने वाले मोतीराम भट्ट को भी नेपाल के पहले पत्रकार के रूप में जाना जाता है। नेपाल की जमीन पर मास मीडिया और पत्रकारिता का इतिहास 'सुधासागर' साहित्यिक पत्रिका से ही माना जाता है क्योंकि इसका प्रकाशन नेपाल से हुआ था।

नेपाल के सबसे पुराने दैनिक समाचार पत्र 'गोरखापत्र' का प्रकाशन शुरू होने के बाद नेपाल की पत्रकारिता ने एक नया मोड़ ले लिया। गोरखापत्र का प्रकाशन राणा प्रधानमंत्री देवशमशेर ने 24 बैशाख, 1958 (ई.सं. 7 मई 1901) में शुरू किया गया था (स्रोत : विकीपीडिया)। उसी के आधार पर, बैसाख 24 (7 मई) को नेपाल में पत्रकारिता दिवस के रूप में मनाया जाता है।

हालाँकि पत्रकारिता का इतिहास नेपाल में प्रकाशित समाचार पत्रों पर आधारित बताया जाता है, लेकिन नेपाली भाषा का पहला समाचार पत्र भारत में प्रकाशित होने वाला 'गोरखा भारत जीवन' था। यह पत्रिका मोतीराम भट्ट और रामकृष्ण बर्मा द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित की गई थी।

क्रमिक विकास के रूप में, नेपाल में पत्रकारिता के इतिहास को विभिन्न चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

वि.सं. 8 फाल्गुन, 2007 (20 फरवरी, 1951) को, निजी क्षेत्र द्वारा प्रकाशित नेपाल का पहला दैनिक समाचार पत्र 'आवाज' प्रकाशित हुआ था।

विश्व पत्रकारिता के इतिहास में नेपाल को देखें, तो लगता है कि इसका विकास बहुत देर से हुआ। नेपाल में प्रिंटिंग प्रेस का विकास भी बहुत धीमा है। प्रिंटिंग प्रेस ने भारत के लगभग तीन सौ साल बाद ही नेपाल में प्रवेश किया। भारत में प्रेस की शुरुआत 1550 ई. में हुई, जबकि नेपाल में वि.सं.1908 (सन् 1851) के आसपास जब जंग बहादुर राणा ब्रिटेन से लौटे, तो लोहे का हाथ वाला प्रेस को लेकर आए। इसे गिद्ध प्रेस कहा जाता है। गिद्ध के जैसा ही पंख और लोगो के कारण इसे 'गिद्ध प्रेस' कहा जाता है। प्रेस नहीं होने के बावजूद कुछ हस्तलिखित पुस्तकें उस समय भी तैयार की गई थीं। इसके बाद जो छापाखाना नेपाल में खुला उसका नाम, ''मनोरंजन प्रिंटिंग हाउस'' था। यह प्रेस गिद्ध प्रेस की शुरुआत के कुछ साल बाद आया था। नेपाली मुद्रणकार्य में नेपाली पत्रकारिता की शुरुआत मोतीराम भट्ट ने की थी। साहित्य के माध्यम से नेपाली भाषा की सेवा करने वाले भट्ट ने वि.सं. 1950 (ई.सं.1854) में 'सुधासागर' को प्रकाशित करने का प्रयास शुरू किया। इस बीच, वि.सं.1952 (ई.सं.1852) में उनकी मृत्यु हो गई, तब पंडित नरराज ने वि.सं.1955 (ई.सं.1898) में 'सुधासागर' प्रकाशित किया, जो नेपाल से प्रकाशित होने वाला पहला समाचार पत्र था। यहीं से नेपाली पत्रकारिता की शुरुआत हुई और इसके बाद ही इसका विकास शुरू हो गया। चूँकि बनारस से नेपाल की पहली पत्रिका गोर्खा भारत जीवन प्रकाशित हुई थी। इस दृष्टि से बनारस को नेपाली पत्रकारिता के प्रारम्भिक स्थल के रूप में याद किया जाना चाहिए। यह पाया गया है कि जंग बहादुर द्वारा ब्रिटेन से प्रेस लाए जाने के लगभग 50 साल बाद नेपाल में एक समाचार पत्र प्रकाशित हुआ था। 'सुधा सागर' के बाद 'गोरखा पत्र' नेपाली भाषा में प्रकाशित होने वाला दूसरा समाचार पत्र है। यह वि.सं. 1901 (ई.सं.1958) में प्रकाशित हुआ था।

इस प्रकार नेपाली पत्रकारिता के इतिहास की बात करें, तो 'गोरखापत्र' को जहानियन राणा के शासन काल में नेपाली धरती पर उपजा पहला और ऐतिहासिक सरकारी कदम माना जाना चाहिए, जो नेपाली पत्रकारिता के इतिहास में अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा रहा है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि राणा काल से लेकर आज लोकतंत्र तक सरकारी मुखपत्र और सरकार के स्वामित्व वाले अखबार गोरखापत्र का इतिहास दिलचस्प और खुलासा करने वाला है।

नेपाल की पत्रकारिता के सन्दर्भ में एक और बात गौर करने वाली है। नेपाली पत्रकारिता की शुरुआत भारत से मानी जाती है। 'गोरखा भारत जीवन' और फिर 'गोरखा खबर कागत' और गोरखापत्र वि. सं. 1958 (ई.सं.1901) से 2 साल 10 महीने पुराने 'सुधा सागर' को नेपाली पत्रकारिता में नेपाली का पहला प्रयास माना जा सकता है, जो उनकी नेपाली भाषा में प्रकाशित हुआ।

उल्लिखित समाचार पत्रों को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कारणों से विदेशों (भारत, विशेष रूप से वाराणसी) से प्रकाशित किया जाता था। यह भी दावा किया जा सकता है कि ये 'गोरखे खबर कागत', 'गोरखा भारत जीवन', भारत में स्कूल/कॉलेज में पढ़ने वाले नेपाली छात्रों द्वारा प्रकाशित होते होंगे, जो नेपाल के जहानिया शासन के खिलाफ आवाज उठा रहे थे, जो शिक्षा के साथ ही राजनीति में लगे हुए थे।

नेपाल की पत्रकारिता के विकास में 'गोरखापत्र' का महत्त्वपूर्ण योगदान है। 113 वर्षों से लगातार प्रकाशित होने वाले 'गोरखापत्र' को नेपाली प्रिंट पत्रकारिता के क्षेत्र में एक बहुत ही विश्वसनीय समाचार पत्रिका माना जाता है। इस पत्रिका की एक सौ तेरह वर्ष की प्रकाशन यात्रा अपने आप में एक गौरवशाली और ऐतिहासिक यात्रा है। इस काल की हर महत्वपूर्ण घटना को गोरखापत्र ने इतिहास बनाया है। 'गोरखापत्र' के इतिहास पर नजर डालें, तो इसमें नेपाली भाषा, साहित्य, कानून, राजनीति, ज्ञान, विज्ञान, धर्म, कर्मकांड, खेती आदि सब कुछ समाहित है। वि.सं. 2020 आसाढ 25 गते (ई.सं.1963, जुलाई 9) से 'गोरखापत्र' निगम अधिनियम - 2019 (1962) के तहत 'गोरखापत्र संस्थान' के रूप में स्थापित हुआ और इसे संस्थागत स्वरूप प्राप्त हो गया। संस्थान के अंग्रेजी साप्ताहिक समाचार पत्र का प्रकाशन वि.सं. 2021 आश्विन (1964 अक्टूबर) से शुरू हुआ और यह समाचार पत्र वि.सं. 2032 (ई.सं.1975) से लगातार प्रकाशित हो रहा है।

पौष 1 गते 2022 (16 दिसम्बर 1965) से अंग्रेजी दैनिक 'दि राइजिंग नेपाल', जेष्ठ 2025 (मई 1988) से साहित्यिक मासिक 'मधुपर्क', जेष्ठ 2045 (मई 1988) से 'युवामंच' मासिक तथा बैशाख 9 गते 2047 (22 अप्रैल 1990) से बच्चों के लिए 'मुना' मासिक प्रकाशन शुरू हुआ।

नेपाल के सूचना एवं जनसंचार जगत के इतिहास में रेडियो ने बड़ी क्रांति लाई। विक्रम सम्वत् 2007 (ई.सं.1951) क्रांति के दौरान नारदमुनि थुलुंग के नेतृत्व में पूर्वी नेपाल के पहाड़ों से प्रजातंत्र रेडियो के नाम से एक रेडियो प्रसारित किया गया। बाद में विराटनगर में एक और रेडियो भी चलाया गया। तारिणी प्रसाद कोइराला के नेतृत्व में उस रेडियो ने भी मुख्य रूप से राणा विरोधी क्रांति का प्रचार किया। लोकतंत्र की स्थापना के बाद वि.स.2007 चौत्र (अप्रैल 1951) में उन्हीं उपकरणों को लाकर काठमांडू से नेपाल रेडियो की स्थापना की गई, जिसे अब सरकारी मीडिया रेडियो नेपाल के नाम से चलाया जा रहा है। शॉर्ट वेव पर प्रसारण शुरू करने वाला रेडियो नेपाल अब मीडियम वेव और एफएम पर प्रसारित होता है। इसके अलावा, देश भर में लगभग 300 एफएम रेडियो स्टेशन काम कर रहे हैं। शुरुआत में सीएनएन, बीबीसी और अंतरराष्ट्रीय मीडिया बहुत पहले ही ऑनलाइन संस्करण में चला गया, लेकिन नेपाल भी इसमें पीछे नहीं है। ई. 1993 में ऑनलाइन पत्रकारिता के विकास ने गति पकड़ी। ई. 1995 में नेपाल में ऑनलाइन पत्रकारिता स्थापित हो चुकी थी।

नेपाल में ऑनलाइन पत्रकारिता शुरू करने वाली पहली संस्था के रूप में मर्केंटाइल का नाम इतिहास के पन्नों में दर्ज है। मर्केंटाइल ने 1995 में क्रांतिपुर पब्लिकेशन हाउस के अंग्रेजी दैनिक द काठमांडू पोस्ट को साउथ-एशिया-कॉम के माध्यम से अपनी साइट पर डालकर ऑनलाइन पत्रकारिता की शुरुआत की। नेपाल में ब्लॉग साइटों पर भी बहुत सी खबरें प्रकाशित होती हैं। कुछ ब्लॉग साइटें केवल समाचार प्रकाशित करती हैं, इसीलिए नेपाल में ब्लॉग भी खबरों का माध्यम बनने लगा है। हालांकि ब्लॉग एक समाचार साइट नहीं है। ब्लॉग किसी व्यक्ति के लिए अपने दैनिक जीवन के बारे में लिखने और उसे वेब पर प्रकाशित करने का एक तरीका है। नेपाली अखबारों और पत्रकारिता के विकास के इतिहास का अध्ययन करके यह समझा जा सकता है कि नेपाल की भौगोलिक स्थिति, राजनीतिक अस्थिरता, औद्योगिक विकास में बाधा, आर्थिक संकट आदि ने इसे प्रभावित किया है। इसीलिए नेपाल के इस लोकतांत्रिक युग में भी नेपाली पत्रकारिता की तुलना विकसित देशों की पत्रकारिता के स्तर से करने की कोशिश करना जल्दबाजी होगी।

स्वरोजगार, लघु निवेश साप्ताहिक और मासिक समाचार पत्रों का अस्तित्व संकट में है। अब प्रिंट माध्यम का भविष्य बिल्कुल भी सुरक्षित नहीं है। नेपाली पत्रकार संघ, नेपाल की प्रेस परिषद और विज्ञापन बोर्ड को अपने इतिहास के संरक्षण के प्रति संवेदनशील होना आवश्यक है।

नेपाली पत्रकारिता का काल

नेपाली पत्रकारिता का इतिहास बहुत लंबा नहीं है। वि.सं.2007 (ई.सं.1951) से पहले नेपाल में बोलने की आजादी, प्रेस की आजादी, व्यक्तिगत आजादी नहीं थी। श्री 3 महाराज ने जो कुछ आदेश दिया, वही विधि व्यवस्था थी। हुकुमी शासन के दौरान, राजनीति और पत्रकारिता

बहुत दूर और अकल्पनीय हो गई थी। आम नेपालियों को शिक्षा तक नहीं लेने दी जाती थी।

वि.सं. 7 गते फागुन, 2007 (19 फरवरी, 1951) को एकतंत्रीय शासनकाल के अंत के बाद, प्रजातंत्रोत्तरकाल के बाद का युग शुरू हुआ। यह कालखंड भी नेपाली पत्रकारिता के लिए सुखद काल नहीं था। वि.सं. 7 गते फागुन, 2007 (19 फरवरी 1951) के बाद भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता चाहने वाले नेपालियों को राजनीतिक अस्थिरता और अराजकता का सामना करना पड़ा। 7 गते फागुन, 2007 (19 फरवरी, 1951) के बाद श्री 3 महाराज मोहनशमशेर जबरा राणा और कांग्रेस की सरकार के सम्मिलित 'प्रधानमंत्री' बने। वि.सं. 2007 (ई.सं. 1951) के बाद के उस संक्रमण काल में सूचना और संचार नाम से कोई परिचित नहीं था।

मातृका प्रसाद कोइराला के नेतृत्व में, वि.सं 1 गते मंसिर 2008 (16 नवम्बर, 1951) को कांग्रेस और राणाओं सहित एक और मिश्रित सरकार का गठन किया गया। मातृका प्रसाद कोइराला को प्रधानमंत्री बनाया गया। नेपाल के इतिहास में यह पहली सरकार थी, जहाँ जनता के बीच का व्यक्ति प्रधानमंत्री था। यह सरकार भी नौ महीने ही चल पाई। 30 गते सावन, 2009 (14 अगस्त,1952) को जनरल केशर शमशेर जबरा के नेतृत्व में सरकार बनी। 4 गते आसाढ़, 2010 (17 जून, 1953) को मातृका प्रसाद कोइराला के नेतृत्व में पुनः पाँच सदस्यीय सरकार का गठन किया गया।

प्रधानमंत्री मातृका प्रसाद कोइराला ने संचार के महत्व को समझा और उन्होंने पहला संचार मंत्री नियुक्त किया। त्रिपुरावर सिंह प्रधान को नेपाल के इतिहास में पहले संचार मंत्री बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। संचार मंत्री के अलावा वे स्वायत्त शासन, शिक्षा और लोक निर्माण मंत्री भी रहे। प्रधानमंत्री मातृका प्रसाद कोइराला के पुनर्गठित मंत्रिपरिषद में दूसरे संचार मंत्री का इतिहास रचने वाले भद्रकाली मिश्रा हैं।

फिर इतिहास ने पलटी मारी और महाराज महेन्द्र ने 1 गते पौष, 2017 (15 दिसम्बर, 1960) को लोकतांत्रिक रूप से चुनी हुई सरकार को उखाड़ फेंका और तख्ता पलट करते हुए सत्ता अपने हाथ में ले ली। फिर 104 साल बाद राजनीतिक आजादी, प्रेस की आजादी, बोलने की आजादी, जो नेपाली जनता और पत्रकारों को बमुश्किल मिली थी, उस पर राजदंड का प्रहार किया गया और लोगों की आजादी के सारे अधिकार छीन लिए गए।

1 गते 2017 (15 दिसम्बर, 1960) के बाद से लिखने, बोलने और स्वतंत्र रूप से विचार व्यक्त करने का अधिकार खो गया और नेपाली पत्रकारों के लिए जो स्वतंत्र पत्रकारिता करना चाहते थे; उनके लिए मुश्किल भरे समय की शुरुआत हो गई। 2007 (1951) से 2016 (1959) तक, नेपाली पत्रकारों के लिए एक संक्रमणकालीन अवधि थी। यह लोकतांत्रिक संक्रमण काल मुश्किल से एक दशक भी नहीं चला और नेपाली पत्रकारिता को विस्तार, विकास और फलने-फूलने का अवसर नहीं मिला।

वि.सं. 2016 (ई.सं. 1959) से पहले समाचारों के लिए कोई संवाद समिति नहीं थी। नेपाली पत्रकार यूपीआई, पीटीआई और हिंदुस्तान समाचार से खबरें खरीदते थे। देश में प्रजातंत्र आने के बाद स्वतंत्रता का आनन्द लेने के लिए वर्ष 2016 (ई.सं.1959) में एक गैर-सरकारी संगठन के रूप में 'नेपा संवाद समिति' की स्थापना की गई थी। इसके अलावा 2017 (ई.सं. 1960) में 'सगरमाथा संवाद समिति' का गठन किया गया।

ये दोनों समितियाँ फागुन, 2017 (मार्च, 1961) तक चलीं। 2018 (ई.सं.1962) में पंचायती सरकार ने राष्ट्रीय संवाद समिति का गठन किया। इस कमेटी के बनने के बाद नेपाली अखबारों को इससे जरूरी खबरें मिलने लगीं । दिनांक 29 गते मंसिर 2019 (14 दिसम्बर, 1962) को 'राष्ट्रीय संवाद समिति अधिनियम, 2019' (ई.सं.1963) प्रकाशित हुआ तथा इस अधिनियम के अनुसार राष्ट्रीय संवाद समिति का संचालन प्रारम्भ हुआ।

इसके बाद पंचायत सरकार 2019 (ई.सं.1963) में, नेपाल में पहला 'मुद्रण और प्रकाशन अधिनियम, 2019' (ई.1963) जारी किया गया था। इस अधिनियम की घोषणा के लगभग नौ महीने बाद पहला 'मुद्रण और प्रकाशन पंजीकरण विनियम, 2020 (ई.सं. 1964) जारी किया गया था। इस विनियम के अनुसार, दैनिक समाचार पत्रों को 500 प्रतियों की दर से प्रति दिन एक संस्करण प्रकाशित करना था और समाचार पत्रों को भी कुछ स्थितियों में कटौती के बिना 500 अवश्य प्रकाशित करने थे।

उस विनियम के अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि 10/15 आकार के 4 पृष्ठ से कम नहीं होने चाहिए, अन्य समाचार पत्रों में समान आकार के 8 पृष्ठों से कम का प्रकाशन नहीं होना चाहिए और यदि आकार छोटा है तो उसे 16 पृष्ठों का प्रकाशित किया जाना चाहिए। यदि नियमावली प्रावधानों के अनुसार प्रकाशित नहीं किया जाता है, तो सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं को निलंबित कर दिया जाएगा या प्रकाशन को ही निलंबित कर दिया जाएगा।

प्रचार विभाग के माध्यम से एक दिलचस्प इतिहास पता चलता है। पंचायत सरकार ने आज से 57 साल पहले यानी 11 भाद्र, 2022 (27 सितम्बर, 1965) को पत्रकारों की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया था और 1 पौष, 2017 (15 दिसम्बर, 1960) से सभी राजनीतिक दलों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। पार्टी पर प्रतिबंध लगने और नेपाली लोगों के मूल अधिकारों को प्रतिबंधित करने के बाद, जो पत्रकार नेपाल में पत्रकारिता करना चाहते थे, उन्हें राजा महेंद्र द्वारा लागू की गई एकदलीय प्रणाली का गुणगान करना होता था। नेपाली कांग्रेस और नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी प्रतिबंधित पार्टियाँ थीं।

2017 (ई. 1960) के बाद, स्वतंत्र पत्रकारिता पर सरकारी सेंसरशिप 2036 (ई.1971) तक जारी रही। काठमांडू पहुँचने वाले भारतीय समाचार पत्रों (हिंदी और अंग्रेजी में) को त्रिभुवन अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर बागमती के अंचलाधीश द्वारा प्रतिनियुक्त सरकारी प्रतिनिधियों द्वारा सेंसर किया जाता था।

भारतीय समाचार पत्र राजा और पंचायत व्यवस्था के खिलाफ प्रकाशित होने वाले समाचारों, लेखों और साक्षात्कारों को सेंसर किया जाता था। उस समय नेपाली बाजार में दर्जनों दैनिक समाचार पत्र जैसे टाइम्स ऑफ इंडिया, नव भारत टाइम्स, द हिंदू, हिंदुस्तान टाइम्स और साप्ताहिक समाचार पत्र जैसे इंडिया टुडे (अंग्रेजी/हिंदी), दिनमान, धर्म युग, संडे, स्टेटस मैन हजारों की संख्या में बिकते थे।

काठमांडू के बांगेमुडा और नया सड़क डाकघरों में हर शाम भारतीय अखबार खरीदने वालों की कतार लगी रहती थी। कतार में लगे लोग पत्रिका न पाकर निराश होकर लौट जाते थे।

ऐसे दौर और इतिहास से गुजरकर आज सिर्फ बोलने की आजादी, लिखने की आजादी ही नहीं, देश उस संवैधानिक दौर में प्रवेश कर चुकी है, जिसमें किसी भी मीडिया का रजिस्ट्रेशन रद्द नहीं किया जा सकता। प्रौद्योगिकी के विकास और विस्तार के साथ-साथ, नेपाली पत्रकारिता ने कंप्यूटर और प्रिंटिंग प्रेस के आधुनिक युग में प्रवेश किया है।

किन्तु आज नेपाल की पत्रकारिता का स्तर घटने लगा है। आज आम जनता को लगने लगा है कि साप्ताहिक समाचार पत्रों की लोकप्रियता में कमी आई है। लंबे इतिहास वाले साप्ताहिक समाचार पत्रों की लोकप्रियता में गिरावट के कई कारण हैं। खोजी पत्रकारिता का अभाव है। समाचार पत्र एफएम रेडियो और दैनिक समाचार पत्रों के आधार पर तैयार समाचारों से भरे होते हैं। हालाँकि खोजी पत्रकारिता एक कठिन और चुनौतीपूर्ण काम है, लेकिन यह पाठकों और स्रोतों को बढ़ाता है। पत्रकार की कलम समाज को दिशा देती है। इसका मुख्य कारण यह है कि समाचार पत्र व्यवसायिक नहीं हो सकता। कुशल जनशक्ति की कमी, संसाधनों की कमी, आधुनिक तकनीक और पत्रकारिता के मानकों को आत्मसात करने में असमर्थता, तकनीक के काम करने का पुराना तरीका आदि वर्तमान स्थिति में साप्ताहिक समाचार पत्र की समस्याएँ हैं। इसी तरह मीडिया पर सरकार की अस्पष्ट नीति, अनुचित राष्ट्रीय विज्ञापन नीति ने भी साप्ताहिक समाचार पत्र को संकट में ला दिया है। प्रौद्योगिकी के विकास के साथ, आज के ऑनलाइन मीडिया संगठन समाचारों को तुरंत अपडेट करते हैं। कुछ समय बाद एफएम रेडियो स्टेशन उस खबर को चलाते हैं। ऐसे में साप्ताहिक समाचार पत्र के पारंपरिक उद्देश्य का कोई अस्तित्व नहीं दिखता। साप्ताहिक समाचार पत्र दैनिक समाचार पत्र की नकल कर समाचारों के विश्लेषण की भूमिका को भूलने का प्रयास कर रहा है। उनकी भूमिका को न समझने के कारण ऐसा लगता है कि कई साप्ताहिक सिर्फ रिलीज होने के लिए जारी किए जा रहे हैं। वे पाठक को क्या नवीनता देंगे? उनके द्वारा छपी खबर का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है। साप्ताहिक अखबार इस बात पर ध्यान ही नहीं देते कि बेजुबानों की आवाज को खबरों में शामिल नहीं किया गया है। यही कारण है कि समाचार पत्र के प्रति सामान्य पाठकों की रुचि कम होती जा रही है।

रेडियो नेपाल एक राष्ट्रीय प्रसारण माध्यम है, जिसे देश के अधिकांश क्षेत्रों और आबादी में सुना जाता है, लेकिन यह स्वतंत्र नहीं हो पा रहा है क्योंकि यह सरकार का मुखपत्र है। रेडियो नेपाल, नेपाल टेलीविजन और यहाँ तक कि गोरखापत्र, जो सरकारी नियंत्रण में हैं, स्वतंत्र नहीं हो सकते और सरकार के गुणगान करने के कारण इसने पत्रकारिता को एक अतिरिक्त चुनौती बना दिया है। गोरखापत्र, रेडियो नेपाल, नेपाल टेलीविजन और राष्ट्रीय समाचार समिति (रासस) जैसे मीडिया क्षेत्र को सरकार ने अपने अधिकार में रखा है। पत्रकारिता, जिसे राज्य का चौथा अंग माना जाता है, वह सरकार का मुखपत्र बना हुआ है, जो निजी क्षेत्र में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों के लिए भी एक समस्या बन गया है। हाल के दिनों में न केवल समाचार पत्र बल्कि चार सौ से अधिक एफ.एम. रेडियो पंजीकृत है। राजनीतिक पत्रकारिता करने के उद्देश्य से स्थापित समाचार पत्र व्यावसायिक और स्वतंत्र नहीं हो सकते, इसलिए पत्रकारिता के क्षेत्र में पत्रकारिता का राजनीतिक दायरे में शामिल होना, एक अन्य समस्या और चुनौती बन गया है।

नेपाल में हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास

सन् 1826 में नेपाल में युवा कवि मोतीराम भट्ट के सहयोग से बनारस प्रवास काल में रामकृष्ण वर्मा के सम्पादन में प्रथम नेपाली मासिक ''गोरखा भारत जीवन'' पत्रिका का प्रकाशन हुआ था और नेपाल की राजधानी काठमाण्डु में पं. मोतीकृष्ण नरदेव शर्मा द्वारा 1826 में निजी स्तर के प्रेस की स्थापना के पाँच वर्ष बाद सन् 1898 की जुलाई (1955 साल श्रावण) से उन्होंने प्रथम नेपाली मासिक ''सुधा सागर'' का प्रकाशन आरंभ किया था। उसके 3 वर्ष बाद ही नेपाल में सरकारी स्तर पर सन् 1901 की मई 7, (24 बैशाख, 1958) से गोरखापत्र साप्ताहिक का प्रकाशन आरंभ हुआ था, जो क्रमशः अर्द्ध साप्ताहिक और सप्ताह में तीन बार होते हुए साढे तीन दशक पूर्व 18 फरवरी, 1961 (2017 फाल्गुन 7 गते) से नेपाल का सर्वश्रेष्ठ नेपाली दैनिक के रूप में सरकारी प्रकाशन है फिर भी पचास हजार से अधिक प्रतियाँ नहीं छप रही है।

नेपाल में एकतंत्रीय राणा शासन की समाप्ति के लिए सन् 1947 की जनवरी 26 को कलकत्ता में नेपाली कांग्रेस की स्थापना विश्वेश्वर प्रसाद कोईराला, डॉ. डिल्लीरमण रेग्मी, महेन्द्र विक्रम शाह, महावीर शमसेर आदि द्वारा किया गया और नेपाली कांग्रेस का मुख पत्र ''नेपाल पुकार'' नेपाली साप्ताहिक वी. लाल मोक्तायन के सम्पादन में पहले कलकत्ता से और फिर 1941 की दिसम्बर में पटना से हिन्दी साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित कर सन् 1950 की जनक्रान्ति के लिए नेपाल में जन जागरण लाने का काम किया गया। उधर बनारस में रह गए नेपालियों द्वारा 'युगवाणी' नेपाली साप्ताहिक का प्रकाशन 1948 की जनवरी 26 से लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा, बालचन्द्र शर्मा, कृष्ण प्रसाद उपाध्याय (भट्टराई), नारायण प्रसाद उपाध्याय के संयुक्त सम्पादकत्व में किया गया, जो नेपाली जनक्रान्ति का एक कारक तत्व साबित हुआ।

उसी समय 1850 के अगस्त में बनारस से बालचन्द्र शर्मा के सम्पादन में नेपाल का प्रथम हिन्दी साप्ताहिक ''नव नेपाल'' का प्रकाशन किया गया, जो सन् पचास की नम्वबर क्रान्ति में आग उगलने का काम किया। नवम्बर क्रान्ति सफल हो जाने पर 18 फरवरी, 1951 को एकतंत्रीय राणा शासन की समाप्ति के बाद नेपाल में प्रजातंत्र की स्थापना हुई, फिर प्रवास से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का स्थान देश के भीतर से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने ले लिया। उसी क्रम में काठमाण्डू से 15 फरवरी, 1951 जिस दिन साढ़े तीन महिनों के दिल्ली निर्वासन के बाद राजा त्रिभुवन सपरिवार युवराज महेन्द्र और तत्कालीन राजा वीरेन्द्र के साथ स्वदेश लौटे थे, हृदय चन्द्र सिंह प्रधान के सम्पादन में जनस्तर का प्रथम नेपाली साप्ताहिक ''जागरण'' का प्रकाशन और प्रजातंत्र घोषणा के दूसरे दिन 19 फरवरी, 1951 से नेपाल का प्रथम नेपाली दैनिक ''आवाज'' का प्रकाशन कविवर सिद्धिचरण श्रेष्ठ के सम्पादन में हुआ था।

हिन्दी पत्रकारिता में नेपाल से प्रकाशित पत्रों का भी उल्लेखनीय स्थान है। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ''नेपाल'' शीर्षक से एक हिन्दी पत्र प्रकाशित होता था। ज्ञातव्य है कि यह पत्र दैनिक रूप में प्रकाशित होने वाला एक विशिष्ट पत्र था। काठमांडू से ही प्रकाशित जो अन्य पत्र उल्लेखनीय है, उनमें ''हीमोवत संस्कृत'' पत्र भी है। इसी प्रकार ''हिमालय'' शीर्षक से भी एक पत्र बीरगंज से प्रकाशित हुआ था। इसी क्रम में 'नव नेपाल' शीर्षक से एक साप्ताहिक पत्र काठमांडू (नेपाल) से प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक मणिराज उपाध्यक्ष थे। इसका प्रकाशन 1955 से आरम्भ हुआ था।

नेपाल में हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास बहुत पुराना नहीं हैं फिर भी नेपाल के प्रजातांत्रिक इतिहास से जुड़ी हुई है। भारत में प्रथम हिन्दी साप्ताहिक कलकत्ता से पं० युगल किशोर शुक्ल के सम्पादन में 30 मई, 1826 में प्रकाशित हुआ था और उसके पाँच वर्ष बाद कलकत्ता से ही 18 जनवरी, 1831 को श्याम सुन्दर सेन के संपादन में हिन्दी का प्रथम दैनिक प्रकाशित हुआ था। नेपाल और भारत दो निकटतम पड़ोसी ही नहीं बल्कि एक दूसरे के अभाव में अस्तित्वहीन है। यही कारण है कि नेपाल का न सिर्फ हिन्दी पत्रकारिता बल्कि नेपाली पत्रकारिता का शुभारंभ भी बनारस में हुआ था।

नेपाली के भीतर हिन्दी पत्रकारिता का आरंभ प्रजातंत्र स्थापना के बाद सन् 1951 की जुलाई 3 (15 श्रावण 2008) से राजधानी काठमाण्डू में भोजराज सिंह न्यौपाने के सम्पादन में तरंग साप्ताहिक के साथ हुआ। उसके अगले वर्ष 26 मई से जनकपुरधाम से 'सात दिन' साप्ताहिक गिरीन्द्र मोहन भट्टा के सम्पादन में और फिर 15 अक्टूबर से युगेश्वर प्रसाद वर्मा और बद्री परासर मिश्र के सम्पादन तथा रामस्वरूप प्रसाद बी.ए. के प्रकाशनत्व में 'मुक्त नेपाल' साप्ताहिक का प्रकाश हुआ था।

उन दिनों सम्पूर्ण नेपाल तराई का सम्पर्क स्थल पटना होने के कारण वहाँ से 23 अक्टूबर, 1852 में 'नया नेपाल' साप्ताहिक जन कांग्रेस के मुख पत्र के रूप में अयोध्या प्रसाद के

सम्पादन मे प्रकाशित हुआ। प्रजातंत्र पूर्व बनारस से प्रकाशित 'नव नेपाल' साप्ताहिक बाद में राजधानी काठमाण्डू से गणेश प्रसाद शर्मा के सम्पादन में 1 नवम्बर, 1952 से और 24 अप्रैल, 1953 से मणिराज उपाध्याय के सम्पादन में 'सही रास्ता' साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसी तरह 20 जुलाई, 1955 से कैलाशपति बी. ए. के सम्पादन में 'नया जमाना' साप्ताहिक प्रकाशित हुआ। किन्तु सभी बाद में बन्द होते चले गये।

नेपाल से प्रथम हिन्दी दैनिक 'जय नेपाल' का प्रकाशन काठमाण्डू से 24 जुलाई, 1955 से इन्द्रचन्द्र जैन के सम्पादन में हुआ, उसके कुछ ही महीनों के बाद 15 जनवरी, 1953 से राम सिंह के सम्पादन में वहीं से दूसरे दैनिक 'नेपाल टाइम्स' का प्रकाशन हुआ और 20 दिसम्बर, 1958 से उमाकान्त दास के सम्पादन में 'नेपाली' नाम से तीसरे हिन्दी दैनिक का प्रकाशन काण्डमाडू में हुआ। प्रथम दैनिक का प्रकाशन बन्द हो गया और दूसरे दैनिक नेपाल टाइम्स का प्रकाशन भी परिवर्तित परिस्थिति (प्रजातंत्र खत्म किए जाने के बाद) में बन्द हो जाने पर 1 जून, 1964 से अंग्रेजी में और दो वर्ष बाद 1966 की सितम्बर 20 से चन्द्रलाल झा के सम्पादन में नेपाली में) प्रकाशन होकर ख्याति प्राप्त करता रहा किन्तु अब यह भी बन्द हो चुका है। राजधानी काठमाण्डू के बाहर जनकपुरधाम से 'सात दिन' और 'मुक्त् नेपाल' साप्ताहिक के प्रकाशन के साथ ही विराटनगर से लक्ष्मण शास्त्री के सम्पादन में 'आदर्शवाणी' नेपाली/हिन्दी मासिक 1952 की अगस्त (श्रावण से कार्तिक तक) से नवम्बर तक चार अंक प्रकाशित हुआ था। उसी समय वीरगंज से कृष्ण प्रसाद मानंधर के सम्पादन में 'नया नेपाल' त्रैमासिक का प्रकाशन हुआ था, जिसका तीसरा अंक 20 जनवरी, 1953 को प्रकाशित हुआ था। विराटनगर से नवम्बर 1955 में आनन्द लाल श्रेष्ठ के सम्पादन में 'ज्योति नेपाली', हिन्दी मासिक प्रकाशन हुआ था। काठमाडू में नेपाली, नेवारी, हिन्दी और अंग्रेजी चतुर्भाशिक पाक्षिक कमर्स 17 सितम्बर, 1958 को प्रकाशित हुआ। किन्तु, उससे तीन महीने पूर्व वहीं से केशवराम जोशी के सम्पादन में 'ज्ञान विकास' चतुर्भाषिक मासिक 12 जून से प्रकाशित होना शुरु हुआ था।

नेपालगंज से 1955 में स्व. महावीर प्रसाद गुप्ता के सम्पादन में 'नया संदेश' मासिक का प्रकाशन हुआ और विराटनगर से रघुनाथ ठाकुर के सम्पादन में 1957 के दिसम्बर 16 को 'राजहंस' साप्ताहिक प्रकाशित हुआ। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में जनकपुरधाम से हिन्दी, नेपाली और मैथिली का त्रैमासिक नवोनाथ झा के सम्पादन में अप्रैल 1957 में छपा था। परन्तु, दूसरा अंक नहीं छप सका। आनन्द कुटी विद्यापीठ का मुखपत्र 'आनन्द', 'नेपाली', तिवारी, हिन्दी और अंग्रेजी त्रैमासिक नवम्बर 1961 में छपा था। काठमाडू से 'नया समाज' साप्ताहिक शिवहर सिंह प्रधान पागल के सम्पादन में जून 1962 में प्रकाशित हुआ था। सन् 1960 दिसम्बर 16 में प्रजातन्त्र की हत्या से पूर्व नेपाल में हिन्दी दूसरी भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त रहने से हिन्दी पत्रों के साथ ही पत्रिकाओं के भी विकास हुए। इस क्रम में प्रथमतः काठमाडू से 'कारवां' मासिक और फिर श्री अटेर के सम्पादन में हिन्दी नेपाली मासिक पिटारी हस्तलिखित 1954 अप्रैल में प्रकाशित किया गया था।

काठमांडू से 'लोकमंच' साप्ताहिक युगेश्वर प्रसाद वर्मा के सम्पादन में 20 अक्टूबर, 1958 से प्रकाशित हुआ। उसके बाद ही सत्यनारायण झा के सम्पादन में नेपाल प्रजापरिषद् का मुखपत्र 'जनवाणी' साप्ताहिक उसी वर्ष 20 नवम्बर से प्रकाशित हुआ था। किन्तु ये दोनों भी कुछ ही अंकों के बाद बन्द हो गए। आनन्द प्रसाद पाठक के सम्पादन मे प्रकाशित 'अग्रदूत' साप्ताहिक का प्रकाशन भी 1961 जुलाई, 30 को बंद कर दिया गया। उसी अवधि में अखिल नेपाल किसान संघ द्वारा किसान बुलेटिन और नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा 'जनमत' साप्ताहिक प्रकाशित किया गया था।

नेपालगंज से योगेश्वर मिश्र के सम्पादन में 18 फरवरी, 1960 (2016 फाल्गुण 7) में 'मातृभूमि' साप्ताहिक तथा उसी वर्ष वहीं से महावीर प्रसाद गुप्ता और इन्द्रमणि मानव के संयुक्त सम्पादन में प्रकाशित हो रहे मासिक 'अनुराधा' पत्रिका, जो निकटवर्ती भारतीय क्षेत्रों में भी ख्याति प्राप्त था, उसे 16 दिसम्बर से प्रजातंत्र की हत्या के बाद बन्द कर दिया गया।

जनकपुर धाम से प्रकाशित 'लोकमत' नियमित साप्ताहिक है और तराई के सभी जिलों में पहुँचती है। इसके सम्पादक हिन्दी के योद्धा राजेश्वर नेपाली हैं। इसके साथ ही राजधानी काठमांडू से शुकेश्वर पाठक के सम्पादन में 'विश्लेषण' और वीरगंज से गणेश साह के सम्पादन में 'सन्डे टाइम्स' दोनों साप्ताहिक प्रकाशित होते थे। सन् 1952 में 'मुक्त नेपाल' जो जलेश्वर से साप्ताहिक प्रकाशित होता था, जिसका सम्पादन रामस्वरूप प्रसाद किया करते थे, किन्तु वह भी वर्तमान में बंद हो चुका है।

प्रजातंत्र पुनर्स्थापना के बाद सन् 1990 की दिसम्बर से 'नव नेपाल' मासिक का प्रकाशन डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र के सम्पादन में आरम्भ हुआ था। किन्तु चार अंक प्रकाशन के बाद यह भी बन्द हो गया। उसी तरह गजेन्द्र प्रसाद सिंह के सम्पादन में प्रकाशित 'इंकलाब' साप्ताहिक जो कुछ ही अंकों के बाद बन्द हो गया था, वह पुनः नमिता सिंह के सम्पादन में मासिक रूप में प्रकाशित होना शुरु हुआ; बाद में वह फिर से बंद हो गया। वर्तमान में 'हिमालिनी' एक ऐसी मासिक हिन्दी पत्रिका है, जो निरंतर पचीस वर्षों से प्रकाशित हो रही है। हिमालिनी की शुरुआत साहित्यिक पत्रिका के रुप में हुई थी, किन्तु वक्त और हालात के साथ इसके तेवर बदले और आज यह विविधता के साथ एक सम्पूर्ण मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित हो रही है। राजनीति, साहित्य, समाज, संस्कृति, अध्यात्म, स्वास्थ्य इनसे जुड़ी समग्र जानकारी हिमालिनी में शामिल होती है। नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्र और भारत के बिहार और उत्तर प्रदेश में हिमालिनी के पाठक हैं। इसका ऑनलाइन संस्करण भी सजग पाठकों के लिए हाजिर है, जो रोज की खबर पाठकों के समक्ष लाती है।

हिमालिनी का प्रकाशन डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र अकादमी और नेपाल हिन्दी साहित्य कला संगम के सहयोग से प्रारम्भ हुआ। विगत में भी कई हिन्दी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, पर सफल नहीं हो पाई। वजह चाहे जो भी हो पर इनकी असफलता के पीछे हिन्दी भाषा को लेकर नेपाल का

प्रतिकूल परिदृश्य अवश्य था। हिमालिनी का प्रथम अंक 1998 जनवरी में प्रकाशित हुआ। सफर की शुरुआत त्रैमासिक साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका के रूप में हुई। समय की माँग थी कि नेपाल की राजनीति को जन-जन तक पहुँचाया जाए और जनता अपने अधिकार और अस्तित्व से रु-ब-रु हो सके। इस महत् कार्य के लिए 'हिमालिनी' ने अपना स्वरूप बदला और 2006 से राजनीति इसका विशेष आधार बन गया।

हिन्दी पत्रिका प्रकाशन के क्रम में काठमांडु से प्रकाशित समसामयिक पत्रिका 'द पब्लिक' का नाम भी आता है, जो विगत कई वर्षों से प्रकाशित हो रही है। इसी तरह 'द पोपुलर टाइम्स' और 'अभ्युत्थान' नामक हिन्दी पत्रिका की भी शुरुआत हुई किन्तु कुछ माह प्रकाशन के बाद यह भी बंद हो गई। भारतीय दूतावास से प्रकाशित होने वाली 'विविध भारत' भी पिछले कई सालों से बंद हो चुकी है। वर्तमान में ऑनलाइन हिन्दी पत्रिकाओं में 'हिमालिनी' के अतिरिक्त 'रातोपाटी' और 'अक्षरंग' वेव पत्रिका चल रही है।

संदर्भ पुस्तक :

1. पत्रकारिता को इतिहास बिगत देखी बर्तमान सम्म, जनबोली न्यूज नेटवर्क, 27 माघ, 2073
2. नेपालको पत्रकारिता पत्रकार, डॉ. देवी क्षेत्री दुलाल, गोरखापत्र ऑनलाइन, फाल्गुन 11, 2076 नेपाली
3. पत्र पत्रिका को इतिहास कष्टकर, रोचक घोचक, गोपाल बुढाथोकी, साँघु न्यूज, 2071 असोज 11
4. पत्रकारिता, पत्रकार समाज, राम सुवेदी, आदर्श संचार, चौत्र 21, 2071
5. नेपाली पत्रकारिता को गर्विलो इतिहास, एस धमला, राइजिंग सन खबर, चौत्र 9, 2079
6. नेपाल में हिन्दी और हिन्दी साहित्य, सूर्यनाथ गोप, किताब महल, इलाहाबाद
7. नेपाल का इतिहास, काशी प्रसाद श्रीवास्तव, आत्माराम एंड सन्स नई दिल्ली
8. नेपाल में हिन्दी, कृष्णचन्द्र मिश्र, विद्या विहार, नई दिल्ली
9. मीडिया और हिन्दी, दूसरी आवाज (वेव पत्रिका) सितम्बर 2016
10. विकीपीडिया

डॉ. श्वेता दीप्ति, केन्द्रीय हिन्दी विभाग, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, कीर्तिपुर, काठमांडू, नेपाल

पता : बल्खु, काठमान्डू, नेपाल, ई-मेल : shwetadeepti1810@gmail.com

✧ ✧ ✧

समकालीन हिंदी कविता : यथार्थ और संवेदना में द्वंद्व

गणेश चन्द्र राही

अनुभव का ज्ञान में परिणति होने की मानसिक-प्रक्रिया व्यक्ति के बचपन से जीवन-पर्यंत तक चलता है। इस बीच संसार का अभ्यांतरण की प्रक्रिया भी चलती रहती है। यह आंतरिक एवं बाह्य दोनों रूपों में होता है। इसी से अनुभव परिष्कृत होकर अनुभूति में बदलती जाती है। काव्य में अनुभूति लंबे समय के बाद निथर कर आती है। अनुभव संवेदना का दूसरा पड़ाव है। यह अनुभव जब इंद्रियों से होकर अनुभूति के धरातल पर ज्ञानात्मक रूप अख्तियार कर लेता है तो वह मानव - जीवन का एक प्रामाणिक हथियार बन जाता है। बुद्धि की तर्कशक्ति से प्राप्त संवेदना को मन की भट्ठी में तपाना पड़ता है। तभी आदमी अपना अनुभव, संवेदना एवं विचार को आसानी से समझते हैं। भूख-प्यास की अनुभूति, आग की अनुभूति, व्यक्ति की पीड़ा, मकान के होने की अनुभूति मनुष्य को आसानी से होती है क्योंकि इन सब का इंद्रियों से संपर्क प्रतिदिन होता है।

मानव एक संवेदनशील सामाजिक प्राणी है। जीवन के विकास का मूल तत्व द्वंद्व है। यह द्वंद्व जीवन और जगत के विभिन्न संदर्भों से होकर अपना विस्तार पाता है। आगे चलकर यही सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं प्राकृतिक द्वंद्व रचनात्मक रूप अख्तियार करता है। कवि में यह संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना के रूप में अभ्यांतरित होकर काव्य के वस्तु-रूप में संचित रहता हैं। काव्य-जीवन में इन सबका समवेत रूप में कलात्मक अभिव्यक्ति होती है। इंद्रियजनित भावों एवं विचारों का विकास द्वंद्वात्मक प्रक्रिया होता है। यह एक सूक्ष्म मानसिक प्रक्रिया है। बाह्य यथार्थ-जगत् की रचना नाना प्रकार के प्राकृतिक उपादानों से हुआ है। जीवन के सुख-दुख की ज्ञानात्मक-संवेदना, इन्हीं भावों की रूपाकृतियाँ है, जो दृश्य रूप में संचित रहती हैं। फिर अचेतन में विभिन्न प्रकार के दबे अनुभव समसामयिक परिस्थितियाँ पाकर ये ही भावरूप में कविता में अचानक प्रकट होते हैं। नेत्र के समक्ष पूरा संवेदनशील परिदृश्य दृश्यमान हो जाते हैं। यहाँ यथार्थ और संवेदना को उदाहरणों से भी समझा जा सकता है। मान लीजिए एक व्यक्ति के परिवार में पिता बीमार है। सुबह-शाम कराह रहा है। कभी बुखार तेज होता है तो कभी सर दर्द से छपटाता रहा है। बेटा पिता की पीड़ा को अनुभव करता है। वह चिंतित होता है कि

उसका यह कष्ट जल्द ठीक हो जाए। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह एक संवेदनशील कवि भी है। उसके मन में कविता बार-बार उमड़ रही है। उसे काव्य-पीड़ा हो रही है। उसे कागज पर उतारने लिए उतावला हो रहा है। भावनाओं को संभालने की कोशिश कर रहा है। इधर उसके पिता का दर्द, कराहना, छटपटाहट, इलाज उसके लिए एक यथार्थ मानवीय समस्या है। इस बेचैनी, परेशानी, चिंता से वह सपरिवार संवेदित है क्योंकि पिता के स्वास्थ्य होने से पूरे घर-परिवार में शांति होगी। बेटे को वह एकांत क्षण मिलेगा और स्थिर होकर जहाँ कोने में बैठ कर कविता लिख पाएगा।

दूसरी स्थिति यह है कि भौतिक पदार्थों या कहें विषय-वस्तुओं का हमारी चेतना पर प्रभाव पड़ता है। लेकिन सच तो यह है कि इन भौतिक पदार्थों पर हमारी चेतना का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसका प्रमुख कारण है कि वस्तु जड़ हैं। इंद्रिय चैतन्य हैं। जब तक इसका वस्तु-पदार्थ के साथ संस्पर्श नहीं होता, वह इंसान सजीव होकर नहीं हँसता-बोलता। नदी का बहना, पेड़ों से पत्ते का झड़ना, फिर कोमल-कोमल सुनहले पत्तियाँ आ जाना, फूलना और फलना, वसंत ऋतु में फूलों की अद्‌भुत छटा सर्वत्र दिखाई पड़ना। पशुओं का मैदानों में विचरना, विभिन्न पक्षियों का तेज रफ्तार में आकाश में उड़ना, अपने स्वर में बोलना, झरना का बहना आदि प्राकृतिक क्रियाएँ मानवीय चेतना से स्वतंत्र हैं। हमारी चेतना न तो प्रकृति के नाना रूपों को बढ़ने में कोई भूमिका निभाती है और न ही उनके जन्म में सहायता पहुँचाती है। लेकिन जब हम समस्त चराचर-जगत को काव्य के लिए रचनात्मक सामग्री के रूप में इस्तेमाल करते हैं तो हमारी रचनात्मक-दृष्टि उनपर मानव क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं, गतिविधियों एवं सौंदर्यपूर्ण भावबोधों का आरोप लगाते हैं। उनसे मानव-चरित्र की तरह व्यवहार करते हैं। जबकि मानव और प्रकृति के अस्तित्व में भले ही सूक्ष्म रूप में कोई भेद नहीं है लेकिन स्थूल रूप में दोनों रूप, रंग, गति और भाषा में स्वतंत्र व्यक्तित्व होते हैं। इसीलिए रचनाकार फूलों को हँसते हुए, चिड़ियों को गाते हुए, पर्वत को रक्षक, तपस्वी, नदियों की धारा को जीवन कलकल करती धारा, बादलों के गर्जन को शोर की भाषा में अभिव्यक्त करते है। वह काव्य-बिंब, प्रतीक, अलंकार आदि के रूप में प्रयोग करते हैं। कवि के लिए सृष्टि की हर वस्तु जीवित है एवं उसके साथ संवाद करता है। जब चाहता तो चिड़ियों से प्रभातीगान और बारिश से प्रेम गीत गवा लेता है। वह हास्य, नृत्य एवं संगीत के साथ-साथ कविता के माध्यम से कवि प्रकृति से बोलते - बतियाते - गुनगुनाते हुए पाते हैं। मानव जीवन इन्हीं प्राकृतिक वस्तुओं से स्वयं आजीवन घिरा हुआ पाता है। जीवन सुख-दुख, हँसी-खुशी, प्रसन्नता-पीड़ा, क्रोध-उत्साह, दर्शन की चेतना जगती है। हमारी मानवीय संवेदना के आदि स्त्रोत यह यथार्थ है। मानव की रचना में मन, बुद्धि, विवेक, स्मृति, ह्रदय, जिज्ञासा, स्वप्न एवं इंद्रियाँ बौद्धिक एवं आध्यामिक अक्षय पूंजी है।

संवेदना, अनुभव एवं अनुभूति : मानवीय संवेदना मानव अनुभव की प्राथमिक अवस्था है। इंद्रियों के पाँच अंग हैं। सभी इंद्रियाँ अपने-अपने विषय तक सीमित हैं। एक दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करती हैं। उन्हें भी प्रकृति ने विशेषशक्ति दी है। अपने सीमित दायरें में रहकर

संसार का अनुभव मानव को कराते हैं। कहने का अर्थ है कि आँख का काम कान और नाक का काम नाक नहीं कर सकता है क्योंकि इनकी रचना प्राकृतिक है। मानव-शक्ति इनमें कोई बदलाव नहीं कर सकता है। जैसे- नेत्र, पेड़, मकान, घायल मनुष्य, भूख से व्याकुल इंसान की हालते टकराते हैं। स्नायुतंत्र बुद्धि से विवेक तक कुछ होने की सूचना देता है और उसके बाद इस बात का बोध होता है कि यह एक घायल मानव है। यही प्रक्रिया हर पदार्थ का अनुभव एवं ज्ञान प्राप्त करते वक्त होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक क्रिया हैं। संसार की विषय-वस्तु का इंद्रियों के माध्यम से विवेक के द्वारा प्रत्यक्ष बोध होता है। यथार्थ की वस्तुओं एवं मानवीय दशाओं - दुर्दशाओं, समाज में रह रहे इंसानों के जीवन की करुणाजनक अथवा सुखमय जीवन की तस्वीर का प्रत्यक्ष दर्शन से ही होता है। हमारी संवेदना मानव को इस दुर्दशा से बाहर निकालने के लिए जनता को सामूहिक संघर्ष एवं सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक लड़ाई के लिए मोटिवेट करती हैं। मन में प्रश्न उठता है इंद्रिय की संरचना पहले हुई या सृष्टि का? जिन पाँच इंद्रियों से सृष्टि का अनुभव करते हैं, उनसे भिन्न चीजें नहीं हैं? अर्थात् पाँच ज्ञान इंद्रियाँ और उनके पाँच विषय- शब्द, रूप, रस, गंध और त्वचा माने जाते हैं। विद्वानों ने ज्ञानात्मक इंदिय और इनके संवेदनात्मक विषय निर्धारित किए हैं। थोड़ा अजूबा लगता है। भौतिक जगत के विकास के साथ-साथ बाद में इंद्रियों का जो विकास हुआ है, इसके पीछे लॉजिक क्या है? एक-एक इंद्रिय के बनने एवं उसके विषय निर्धारित हैं। इनके लिए दूसरा विषय नहीं हो सकता हैं, यह एक वैज्ञानिक रूप से प्रामाणित हैं। जैसे - बढ़ही द्वारा कुर्सी बनाया जाना। कुर्सी के सभी अंगों को उसके उपयोग के अनुसार ही तैयार करता है। इंद्रियाँ और उसके विषय-वस्तु में ऐसा तार्किक संबंध विचारणीय हैं। यहाँ संसार की विषय-वस्तु, प्राकृतिक संरचना, मानव-इंद्रिय एवं उनकी तमन्नाओं की संरचनाओं में सूक्ष्म अंतर है। अस्तु।

आधुनिक कवि-आलोचक मुक्तिबोध का काव्य-सृजन को समझनेवाला ज्ञानात्मक - संवेदना सूत्र है। दरअसल, यथार्थ और संवेदना का ही संलिष्ट रूप है। अनुभव का ज्ञान में परिणति होने की मानसिक-प्रक्रिया व्यक्ति के बचपन से जीवन-पर्यंत तक चलता है। इस बीच संसार का अभ्यांतरण की प्रक्रिया भी चलती रहती है। यह आंतरिक एवं बाह्य दोनों रूपों में होता है। इसी से अनुभव और परिष्कृत होकर अनुभूति में बदलती जाती है। काव्य में अनुभूति लंबे समय के बाद निथर कर आती है। अनुभव संवेदना का दूसरा पड़ाव है। यह अनुभव जब इंद्रियों से होकर अनुभूति के धरातल पर ज्ञानात्मक रूप अख्तियार कर लेता है तो वह मानव - जीवन का एक प्रामाणिक हथियार बन जाता है। बुद्धि की तर्कशक्ति से प्राप्त संवेदना को मन की भट्ठी में तपाना पड़ता है। तभी आदमी अपना अनुभव, संवेदना एवं विचार को आसानी से समझते हैं। भूख-प्यास की अनुभूति, आग की अनुभूति, व्यक्ति की पीड़ा, मकान के होने की अनुभूति मनुष्य को आसानी से होती है क्योंकि इन सब का इंद्रियों से संपर्क प्रतिदिन होता है। लेकिन बस, रेल, साइकिल, कारखाने का भवन, वस्तुओं का उत्पाद, हवाई जहाज, सड़क, आदि का भी स्पर्श तो रोज प्रत्यक्ष होता है। लेकिन इन चीजों का अनुभव आग, हवा, पानी, रोटी

एवं प्रेम की तरह जब तक मनुष्य के खून एवं इंद्रियों से तादात्मय नहीं होता, वह अनुभूति का अंग नहीं बन सकते। हाँ, अनुभव की श्रेणी में रहेंगे क्योंकि इनका इस्तेमाल करने के बाद इनके प्रति हाथ, पाँव एवं देह की तरह संबंध नहीं होता हैं। ये आंगिक होने के साथ व्यक्ति की चेतना का अभिन्न हिस्सा हो जाते हैं। इनका स्पंदन धड़कनों के साथ-साथ अनुभूत करते हैं। दरअसल, इन साधनों का बार-बार इस्तेमाल करके भी उनके प्रति कोई लगाव नहीं होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि काव्य में मनुष्य के रागात्मक-वृत्तियों का संबंध ही संवेदना को झंकृति करते हैं और स्मृति के हिस्सा बन जाते हैं। अनुभूति इंद्रियों से आत्मा तक की मानसिक यात्रा करती हैं। गुलाब के फूल की खुशबू को अनुभूति परिणत होने में जरा भी देर नहीं लगती है। उसकी पंखुड़ियों एवं रंगोआब में नेत्र जब तक उलझती है तब तक खुशबू की यात्रा हजारों मनुष्य की आत्मा तक छू लेती है। गुलाब भौतिक होते हैं। वे एक समय के बाद मुर्झा जाते हैं जबकि उसकी खुशबू की अनुभूति प्राणों के साथ सफर करती है। एक और उदाहरण से इस यथार्थ और संवेदना को समझ सकते हैं। बचपन में मेरे पाँवों में राह चलते लोहे की कील घुस गयी थी। मैं चिल्लाने-रोने लगा। मुझे रोते देखकर ठेले वाला संवेदित हुआ। मेरी आँखों में आँसू थमने का नाम नहीं ले रहा था। ठेलेवाले ने प्यार से समझाया और मुझे आकाश की ओर कुछ देर देखने को कहा। इतनी देर में कील पूरी ताकत से खींच कर बाहर निकाल दिया। खून को रोकने के लिए मोटा-सा कपड़ा बांध दिया। कील को मुझे दिखाकर उसे सड़क के किनारे जोर से फेंक दिया। वह दर्द, दुख, छटपटाहट, ठेलेवाला का साहस और पाँवों से बहनेवाला खून आज स्मृति में हैं। दर्द की अनुभूति घटना स्मरण होते ही ताजी हो जाती है। रचनाकार इस सत्य को जीवन पर अपने रक्त में ढोता है क्योंकि इस संसार को मनुष्य ने अपने अनुभवों से चेतनरूप में समृद्ध किया है। ज्ञान की अनुभूति का केंद्र काव्य ही है। यह शास्त्र नहीं, बल्कि जीवंत संचित अनुभव होता है।

संवेदना का ऐतिहासिक विकास : संवेदना को विस्तार से जानने के लिए आवश्यक है कि इसके स्वरूप को भी समझा जाए। इंद्रियों के आधार पर संवेदना के दो रूप होते है- पहला मूर्त रूप और दूसरा अमूर्त रूप। सूक्ष्म रूप के तहत दुख-सुख, पीड़ा, आशंका, भय आदि आते हैं, इसे अमूर्त कह सकते हैं क्योंकि दुख-सुख का कोई चेहरा नहीं होता है। केवल अनुभूति की चीज है। लेकिन यथार्थ संवेदना के तहत रोता हुआ आदमी, हँसता हुआ, नृत्य करते, समाज में गान-बजान, खेती-बारी, रोड़ बनाते मजदूर, दफ्तर में काम करते कर्मी आदि मूर्त हैं अर्थात् नेत्रों के प्रत्यक्ष होते हैं। इन्हें अपनी इंद्रियों से स्पर्श कर सकते हैं। काम करते हुए आँखों से देख सकते हैं, गीत गाते हुए सुन सकते हैं और खाने के रूप, स्वाद एवं गंध ले सकते हैं। मूर्त गुणों का विकास देश, काल एवं परिस्थिति में बदलाव के अनुसार हुआ है। जब युगीन परिस्थितियों में समाज के शक्तिशाली दबंग लोग कमजोर लोगों को दबाना चाहते हैं, उसके अधिकार छीनना चाहते हैं, उनको गुलाम बनाना चाहते हैं और उनके साथ राजनीतिक सत्ता सहयोगी भूमिका निभाती है तब गाँव, समाज एवं देश स्तर पर शोषित, दमित, अधिकार से वंचित और गैर-बराबरी वाले समाज में संगठित होने सभी वर्ग के लोग इस दानवी शक्ति का विरोध करते हैं। तब धीरे-धीरे

परिवर्तनकारी सारी शक्तियाँ अपने-अपने मार्चे पर ऐतिसाहिक बदलाव की लड़ाई लड़ते हैं। फिर यह अमीरों और गरीबों, पूँजीपतियों एवं मजदूरों, सामंतों एवं खेतिहर मजदूरों एवं छोटे किसानों द्वारा व्यवस्था बदलने की लंबी लड़ाई शुरू हो जाती है। इस तरह संवेदना का यथार्थ समाज की शक्तियों के बीच द्वंद्व पैदा करता है। संवेदनाओं की टकराहट से ही संघर्ष पैदा होता है। जिनका स्वार्थ यथास्थितिवादी व्यवस्था को हर कीमत पर बचाने से जुड़ा होता है, वह जनपक्षधर हो नहीं सकता है। इसलिए मानवीय यथार्थ को ठीक से समझें। मनुष्य की भूख, रोटी, कपड़े, मकान, दवा, शिक्षा की जरूरत उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है। वह तो केवल इंद्रिय, बौद्धिक एवं कर्म शक्ति से संपन्न समझा जा सकता है। इन चीजों पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से किसी दूसरे व्यक्ति का कब्जा है। उससे लेने के लिए अकेले नहीं एक सामूहिक शक्ति की जरूरत पड़ती है। जैसे पहले भूख को लें। भूख रोटी या चावल से ही मिटेगी। अब यह सब मानव शारीरिक सीमा से बाहर ही मिलेगी। गेंहूँ, चावल उगाने के लिए जमीन और औजार चाहिए और जमीन पर तो जमींदार का कब्जा है। उससे जमीन को मुक्त कराना होगा। तभी इंसान आत्मनिर्भर हो सकेगा। इसी तरह कपास पर कंपनियों का कब्जा है। सूती वस्त्र के कारखाने पर पूँजीपतियों का कब्जा है। इसी तरह पूँजीवादी व्यवस्था में राजनीतिक सत्ता की शासन-प्रणाली भी उसी के हाथों में चली जाती है। प्रत्यक्ष रूप से लोकतंत्र का शासक शक्तिशालियों के हाथों में होती है। जैसे आज देश की सत्ता पूरी तरह बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में हैं। ऐसे में श्रमिक एवं आम आदमी, किसान, छात्र-नौजवान, महिलाएँ, शिक्षक, चिकित्सक आदि इस लड़ाई की नेतृत्वकारी शक्तियाँ बनते हैं। कवि की पक्षधरता भी इन्हें जनवादी ताकतों की होती है। इन दबे-कुचले वर्ग का हौसला बुलंद करता है, उसका आत्मसम्मान एवं आत्मनिर्भरता, समानता एवं न्याय के लिए सड़क पर उतरता है। इस तरह देखें, तो संवेदना का विकास आगे चल कर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक, शैक्षणिक, कृषि-व्यापार में विभक्त हो जाता है। हर क्षेत्र का संघर्ष एवं लड़ाई जनता की लड़ाई कहलाती है। इसे समझने के लिए ऐतिहासिक, समसामयिक व्यवस्था एवं भविष्य के महास्वप्न को अपने साथ लेकर चलना होगा क्योंकि आज के मनुष्य का संघर्ष समग्रता को लेकर आगे बढ़ रहा है। उसकी दृष्टि उद्योग, विज्ञान तकनीकी, प्रौद्योगिकी, बदलते वैश्विक राजनीतिक घटनाएँ एवं स्वीकार करते नयी दुनिया के मानव मूल्यों पर है।

यथार्थ और संवेदना के द्वंद्व समकालीन कविता में किस तरह व्यक्त हुआ है, इसकी पड़ताल आवश्यक है क्योंकि आज की कविता विचार की कविता लिखी जा रही है। परंतु यह कोई नयी बात नहीं है। पहले भी कविताओं में विचार होते थे। विचारहीन कोई कविता होती ही नहीं है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह कि समकालीन कविता विचारों की कट्टरता से मुक्त है। यानी वह 'वाद मुक्त' है। कवि की अपनी विचारधारा चाहे जो हो, लेकिन प्रगतिवादी कविताओं की तरह उनमें मार्क्सवादी विचारों को ठूंसा जाता था। विचार के प्रचार-प्रसार की कविता कही जा सकती है। प्रतिबद्धता उसका सरोकार था। अस्तित्ववाद, समाजवाद, विकासवाद, लोकतंत्रवाद

जैसे विचार-दृष्टियों को कवि कविता में प्रस्तुत करता था। लेकिन आठ के दशक के बाद स्थिति में परिवर्तन आया। भारत में लोकतंत्र की स्थापना, संविधान का गठन और शासन जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा किया जाने लगा। आजादी के बाद नयी सरकार अर्थात् नेहरू की सरकार ने देश के गरीब, शोषित, पीड़ित, बेरोजगार, अशिक्षित, कृषि-उद्योग-व्यापार आदि के क्षेत्र में कोई उजाला नहीं दिखा सका। राजनीतिक स्तर पर भाई-भतीजावाद, घुसखोरी, सरकारी योजनाओं में पैसे की लूटपाट, घोटाला, अपनी सुविधाओं को एकत्र करने, जातिवादी, वंशवाद, परिवारवाद, उद्योगपतियों को सारी सुविधाएँ मुहैया कराना, साम्राज्यवादी देशों से कर्ज लेना आदि देश की राह में बाधक बन रहे। इधर लगभग दो सौ वर्षों तक अंग्रेजों के गुलामी का काले इतिहास में समाज कंकाल बना। आर्थिक रूप से जीवन एवं देश टूटा। खजाना खाली हो गया। सामाजिक असमानता, देश के विभाजन से चारों तरफ विस्थापन की समस्या एवं साम्प्रदायिक दंगों से अशांति, मानवीय एकता, प्रेम, आत्मीयता जैसे मूल्य संकट में घिरते गये। वैयक्तिक आकांक्षा इतनी तीव्र हो गयी कि लोग जल्द अमीर बनने के ख्वाब पालने लगे। जीवन के गहराते सवाल राजनीति के लिए चुनौती बनते गये। आजादी के समय हमारा दुश्मन एक था-अंग्रेजी। आजादी के बाद स्वदेशी नेताओं के हाथों में सत्ता की बागडोर हाथ में लेते ही छल-प्रपंच, बेमानी, झूठा वादा करने, रंगदारी, गुंडागर्दी, आतंक के पर्याय बनते गये। चुने गये प्रतिनिधि, विधायकों एवं सांसद का आम जनता से निरंतर कटते जाना, उनमें अविश्वास एवं असंतोष बढ़ रहा था। समाज में सामंती दबंगता राक्षसों की तरह लोकतांत्रिक जीवन-प्रणाली का नयी सरकार के साथ-साथ पीछा करता रहा। उनके ही इशारों में थाना, पुलिस एवं कोर्ट में वकील नाचते। भुखमरी, अकाल दबे-कुचलों इंसानों को राक्षस की तरह चबा जाती। नीचे से ऊपर तक न थाना-पुलिस जनता की समस्याओं को सुनते और न ही कानूनी न्याय की आशा रहती। ऐसी भ्रष्ट-व्यवस्था को जो इंसानों की गैर-इंसाफ, जनता शोषण, मारपीट एवं खून-खराबा पर टिकी हो, उसको एक मानवता के पक्ष में खड़ा संवेदनशील रचनाकार भला कैसे उसकी तारीफ में कशीदे गढ़े। सत्तान्मुखी दलालों को गरीबों एवं कुचली हुई जिंदगी को राजनीतिक रखैल बनाने भला कैसे छोड़ दें। जो कविता अपने जन्म से ही करुणा के साथ मानवता के लिए खड़ी है, उसका रावणी आतंक से कमजोरो को मुक्त कराना है। इंसान की स्वतंत्रता की रक्षा करना कवि की नैतिक जिम्मेदारी है। ऐसे में साहित्य सदैव आम जनता का ही पक्षधर रहा है। गाँधी को वीररस की कविता पसंद थी। वे अंतिम आदमी तक कविता के स्वर को पहुँचाना चाहते थे। कविता को आज दुनिया बदलने वाले जनसंघर्ष एवं सामूहिक लड़ाई में हिस्सा लेना है। समकालीन हिंदी कविता गहरे असंतोष से उपजी कविता है। यह स्वातंत्रोतर भारत की जनता के संघर्ष को समग्रता में प्रतिनिधि करती है।

यथार्थ और कविता के स्वरूप एवं रचनात्मक अभिव्यक्ति

जिस नेहरू सरकार ने देश की जनता के समाजवादी महास्वप्न के आशा के नायक बन कर शासन किया, वह मोहमाया में जीनेवाली जनता के लिए यह सरकार भी 'माया ठगनी' ही

सिद्ध हुई। जिसके कारण हिंदी कविता में नेहरू शासन से मोहभंग हुआ। उसका चमकता हुआ समाजवाद का सितारा केवल युवाओं को लुभाया। पूर्व से जिस प्रकार शासन-व्यवस्था चल रही थी, उसमें कोई बदलाव न पाकर उसे देश की जनता ने नकार दिया। नेहरू की 'अंधेरे में' कविता के बाद नेहरू के शासन-काल की सत्यकथा सुदामा पांडेय 'धूमिल' ने 'पटकथा' में लिखी है। कविता की भाषा, तेवर, विचार आम आदमी को केंद्र में रखकर लिखी गयी है। यह संघर्ष और जुझारूपन धूमिल में इसलिए आया कि वह सत्ता का पिछलग्गू नहीं बना। लोकतंत्र को 'लोक' के साथ स्वीकार किया। लोकतांत्रिक व्यवस्था की पूरी मशीनरी को झकझोरा। राजनीतिक की सारी कमजोरियों पर धूमिल की कविता ने ऊँगली रखी। जैसे- उनकी कविता व्यवस्था के खिलाफ सीधी जनतांत्रिक कार्रवाई है। नयी सरकार से करोड़ों भूखी-नंगी जनता की जो अपेक्षा थी, वह पूरी नहीं हुई, बदलाव व्यवस्था के भीतर से होना था, वह केवल खादी-टोपी-धोती-कार में दिखाई पड़ रहा है। यह भ्रष्ट-व्यवस्था और जनता के टूटे सपनों का द्वंद्व था। यथार्थ से तंत्र दूर भाग रहा था। धूमिल लोकतंत्र के तमाशबीन नहीं थे, जो देखकर केवल तालिया बजाते। वे 'संसद से सड़क तक' की कविता पटकथा में कहते हैं -

'हाँ, यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
सिर्फ, टोपियाँ बदल गयी है और-
सच्च मतभेद के अभाव में
लोग उछल-कूद कर
अपनी जगहें बदल रहे हैं
चढ़ी हुई नदी में
भरी हुई नाव में
हर तरफ, विरोधी विचारों का
दलदल है
सतहों पर हलचल है।'

देश में आए लोकतंत्र की भाषा बहुत दिनों के बाद नहीं, बल्कि एक दो चुनाव में जनता को समझ आ गयी। यह कैसे मदारी की भाषा है। वही जो अपनी जादूगरी दिखाने के लिए लोगों की भीड़ भरे चौक-चौराहों, बाजारों-कचहरियों एवं मेलों में तमाशा लगाता है। लेकिन उससे पब्लिक को कोई लाभ नहीं होता। देश के लोकतंत्र में पंचवर्षीय चुनाव का हाल एक मदारी का तमाशा बन कर रह गया है। सत्ता को अपने पक्ष में करने और सुख-सुविधाओं की मलाई चाटने के लिए, झूठ एवं छल-प्रपंच में एक-दूसरे को पीछे धकेल देते हैं। इधर मतदाता जनता पाँच साल तक पीजा-बर्गर खाने लिए तरसती ही रहती है। उसके दरवाजे तक विकास की एक किरण भी नहीं पहुँच पाती और भारतीय संसद रखैल की तरह जिस पार्टी में जितना बाहुबल का जोर होता है, पाँच साल तक उसका भोग के लिए तैयार हो जाती।

धूमिल की कविता ने व्यवस्था के दोगले चरित्र को बेरहमी से नग्न किया है। उस समय धूमिल की कविता नयी पीढ़ियों के कवियों को प्रेरणा और लिखने का साहस देती है। अन्याय की ऐसी बेबाक बयां धूमिल ही दे सकते थे क्योंकि कुछ जन-सेवक कवियों ने सरकारी सुविधाएँ को पाने के लिए जनता से मुख मोड़ लिया था। उनको जनता की भीड़, नारेबाजी पसंद नहीं आया। धूमिल में कवियों को मंत्र दिया-

'यह जनता
जनतंत्र में
उसकी श्रद्धा
अटूट है
उसको समझा दिया गया है कि यहाँ
ऐसा जनतंत्र है जिसमें
जिंदा रहने के लिए
घोड़े और घास को
एक जैसी छूट है
कैसी विडंबना है
कैसा झूठ है
दरअस्ल, अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।'

आधुनिक विकास का चेहरा दाग-दाग रहा है। मानव जीवन की त्रासदी भयावह रही है। सपनों का लोकतंत्र आम आदमी का सपना पूरा नहीं कर सका। यह दलाल पूँजीवादी लोकतंत्र जनता के अनुभव में छलावा साबित हुआ। उनकी आशाओं पर ओला पड़ता गया। कुछ महानगरों को विकास का मॉडल बनाया गया। किंतु यह मॉडल दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई हमारे देश में गुलामी के दौर में उभर आये। वहाँ की भागदौड़ की जिंदगी और उसे जीने की प्रणाली, शिक्षा-दीक्षा, स्वास्थ्य, नौकरी, युवक-युवतियों के लिए बिल्कुल नया अवसर था। पढ़े-लिखे युवा पीढ़ी सपनों के आकाश में उड़ने लगी थी। भारत का नवनिर्माण दरअसल शहर केंद्रित होता रहा। पाश्चात्य जगत की उपभोक्तावादी संस्कृति, स्त्री-पुरुष के तालुकात में खुलेपन नयी पीढ़ी को आकर्षित करने लगा। रोजी-रोटी की चिंता ने औरतों एवं लड़कियों को घर से बाहर निकलने के लिए विवश किया। लेकिन यदि देश के विकास का अगर समग्रता पर मूल्यांकन किया जाए तो क्षेत्रीय असमानता एवं बेरोजगारी का आलम मिलेगा। सरकारों का पाँच साल में बनना और बदलना चुनावी रूटिन हो गया। घनघोर गरीबी, भुखमरी, गाँवों से शहरों एवं महानगरों की किसानों, युवाओं का पलायन समाज की सच्चाई बन गयी। इस ओर वर्षों बाद देश के नेताओं का ध्यान गया।

आधुनिक भारत का निर्माण सामाजिक असमानता, आर्थिक असमानता, शैक्षणिक असमानता, अंधविश्वास, रूढ़ियों एवं कुप्रवृतियों जैसे तमाम समस्याओं को ढ़ोते हुए हो रहा था। इस यथार्थ की मार युवा बेरोजगारों पर पड़ी। वे डिग्रियाँ जेब में लेकर शहरों की सड़कों पर घूम रहे थे। सरकार और जनता के बीच कई क्रांतियाँ हो गयी थीं। लेकिर आम आदमी के पेट की भूख शांत नहीं हुई थी। मायानगरी उन्हें कोई राहत नहीं दे रही थी। बस, आजाद मुल्क में उन्हें भूख, गरीब और तंगहाली ने भटकने के लिए विवश कर रखा था। आर्थिक परिस्थितियों ने तनाव, द्वंद्व एवं संघर्ष में डाल दिया था। इसका जीता जागता चित्र भारत यायावर ने अपनी कविता- 'कितनी सड़कों पर कितने लोग' में खींचा है। यह पूरे भारतीय बेरोजगार वर्ग और बदलते हुए समाज का चित्र है। सड़कों पर चिंताओं, उम्मीदों एवं गरीबी से दिन-रात बदहाल गुजारनेवाले आम आदमी का हाल है -

'ये कोई अकाल के दिन नहीं थे
देश में हरित-क्रांति हो चुकी थी
हम पूँजीवादी दौर में
दो कदम चल चुके थे
शहरों का मायानगरी में
परिवर्तन हो चुका था
मैं दफ्तरों में भटकता थक चुका था
मेरी डिग्रियाँ जेब में मुंड़ी-तुड़ी फट चुकी थीं
भूख, गरीबी और तंगहाली में
कविताओं का भरोसा था।'

मध्यवर्गीय, निम्न-मध्यवर्गीय एवं निम्न-वर्गीय जीवन में छल-प्रपंच, धोखा-धड़ी, फैशन, बनावटीपन आ गया था है। अधिक दौलतमंद बनने के लिए पढ़े-लिखे लोग पूँजीवादी लूटपाट प्रवृत्ति हत्या, हिंसा, चोरी, सरकारी गबन, रिश्वतखोरी, घोटाला, हवाला और भी नया-नया तकनीक का अन्वेषण कर रहे थे। इसमें उच्चवर्ग से निम्नवर्ग तक सभी संलग्न है। अखबारों में रिश्वतखोरी का रंगे पकड़ाते कर्मचारी, अकूत दौलत की मालकिन बनती आई.एस. अधिकारी, सरकारी संपति बेचने, सरकारी योजनाओं में करोड़ों-अरबों रुपये का गबन करते पकड़ गये नेता, मंत्री आदि से उनके काली करतूती लोगों ने जाना। तथाकथित विकास के देवता बने नेता रक्षक की जगह भक्षक बने गए। गरीबों के हक निगलते गए और वे कंकाल हो गए। वहीं धार्मिक कर्मकांडों, मंदिर-मस्जिद के नाम से झोली भरते पंडित, मौलाना, लाखों रूपये एक धार्मिक सत्संग में कमाते तथाकथित तरह-तरह के रंगीन मिजाजवाले चमत्कारी बाबाओं को कोई अनैतिक और अवैध कर्म नहीं समझते। सरकारी तंत्र-पुलिस, अधिकारी, गुंडे के माध्यम से संरक्षण देते हैं। देश की वैज्ञानिक दृष्टि देने की बात करनेवाली मीडिया भी इन्हीं बाबाओं, भ्रष्ट-कर्मचारियों के पीछे घूमते नजर आते हैं। समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर अरुण

कमल ने इस अंधेरगर्दी और भ्रष्टाचार का सफाया करने वाले अपने युग के नायक की कल्पना करते हैं। 'हमारे युग का नायक' कविता में आशा और विश्वास के साथ आश्वासन देते हैं -

'खत्म हो जायेगा एक दिन मूर्खों का राज
पकवानों को भोग छकता महन्थ
हथगोलों बारूद का ढेर गिनता सन्त
और माफिया गिरोहों का डॉन
नष्ट हो जायेंगे एक दिन
तब जिनकी आत्मा सबसे पवित्र है
तब, जो जगे हैं, रात भर बेचैन ओर से भरे
वे ही आयेंगे आगे
और ले चलेंगे सबको प्रकाश की ओर।'

धार्मिक आस्था, मिथकीय चेतना और आधुनिक जीवन-दृष्टि में गहरा द्वंद्व है। सभी धार्मिक चिंताएँ एवं कर्मकांड भाववादी दर्शन से संचालित है। यह अंतरद्वंद्व आधुनिक चेतना और चिंतन ने पैदा किया है। उन्नीसवीं सदी के हिंदी नव-जागरण ने पहली बार भारतीय धार्मिक चेतना को झकझोरा, जिससे व्यक्ति में नवीनता एवं पुरातनता का द्वंद्व आरंभ हो गया। उसकी धार्मिक आस्थाएँ एवं विश्वास हिलने लगा। मनुष्य ने सर्वप्रथम चुनौती दी थी। उसकी जगह पर मानव-सृष्टि का संचालक एवं नियामक बन ईश्वर की सत्ता को धर्म को ललकारते हुए समाज की दुर्गति, दुर्दशा, जिंदगी की बदहाली, भुखमरी, गरीबी, आर्थिक असमानता, विभिन्न प्रकार के शोषण, दमन से मुक्त करने वाले शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। मनुष्य की स्वतंत्रता, अधिकार सर्वोच्च शक्ति एवं दृष्टि बन कर विश्व में उभरी। कविता में इसकी अभिव्यक्ति होने लगी। वहीं कवियों ने धार्मिक रूढ़िवादियों, अंधश्रद्धा, अंधभक्ति, ईश्वर को लेकर समाज में व्याप्त हर तरह के अंधविश्वास, आस्था, उसके हजारों नाम आदि मनुष्य को सदियों से दिग्भ्रमित कर रहा था। राजसत्ता ने राजनीति को अपनी मुट्ठी में कर खुलकर आदमी की जिंदगी से खेलने का काम किया। रहस्यमयी, अमूर्त, अनंत, असीम की दिशा में इंसानों को मोड़ कर मंदिर-मस्जिद, गिरिजा-गुरुद्वारा, तीर्थस्थल आदि आकाशी आस्थाओं वाली धार्मिक विश्वासों से जोड़ कर मूर्ख बनाया। राजनीति और ईश्वर की सत्ता राजतंत्र में एक शक्ति-स्वरूपा बन गयी थी। लोकतंत्र में बाबाओं, संतों, धर्माधिकारी गुरुओं, पंडितों, पुरोहितों, मठाधीशों एवं पुजारियों को और आजादी मिली। अब इन्होंने धार्मिक भावनाओं एवं आस्थाओं को दान-दक्षिणा के बहाने मोटी कमाई का अचल स्त्रोत बनाया, जो आखिर भारतीय स्तर पर सरकारी बजट के एक-दो प्रतिशत की राशि से कम नहीं होगी। समकालीन कविता धार्मिक मताग्रहों एवं मिथ्या चिंतन का पर्दाफाश करती है। राजनीति और धर्म के सांठगांठ को किस तरह भारतीय सामाजिक विश्वासों का सहारा मिला हुआ है, यह स्वप्निल श्रीवास्तव की कविता 'ईश्वर का जन्मस्थान' में भेद खोलती हैं-

'मेरी सत्ता के समीप है
ईश्वर का जन्मस्थान
कहते हैं राजनेता
जनता को ठीक-ठीक पता नहीं
कहाँ है ईश्वर का जन्मस्थान
वह पुरातत्ववेता और राजनेता
की राय के बीच दिग्भ्रमित है।

मार्क्स ने धर्म को अफीम बताया है। जिस प्रकार नशे में आदमी अपना हक एवं यहाँ तक कि उसकी स्मरण शक्ति भी बेकार हो जाती है, उसी प्रकार धर्म भी है। इंसान के लिए कोई ज्ञान, विचार की शक्ति नहीं देता है, बल्कि उसके दिमाग को नपुसंग बना देता है। ईश्वर की अमूर्त धारणा और ग्रंथों में लिखी अतार्किक बातों से आदमी मोहित होता है। आम आदमी धार्मिक प्रवचनों, ईश्वर की शपथ खाकर अपने निर्णय को विश्वसनीय बनाते हैं। आधुनिक चेतना, आधुनिकता, आधुनिकीकरण एवं आधुनिक जीवन-दृष्टि आज संपूर्ण युग का विचार है। मनुष्य की आस्था, विश्वास, प्रेरणा, जीवन-शैली, कार्यशैली सब में विज्ञान, तकनीकी, प्रौद्योगिकी, यंत्र का प्रभार जीवन पर छा रहा है। हमारे जीवन का हर पहलू सोच, व्यवहार एवं कर्मक्षेत्र विज्ञान की नयी रोशनी में चमक रहे हैं। मानव द्वारा निर्मित लोकतांत्रिक व्यवस्था सत्ता का केंद्र बना है। आधुनिक कविता यथार्थ जीवन-दृष्टि एवं मानवीय संवेदना की दशा है। मनुष्य प्राचीन रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से निकलने के लिए आंदोलित है।

आज की कविता निर्लज्ज व्यवस्था का विरोध करने में कभी नहीं चुकती। कविता आज भी उसी अपने नव-जागरण के सपनों को जिंदा रखे हुए है। समकालीन कविताओं में कोई आंदोलन नहीं है। वह सामाजिक विसंगतियों, विषमताओं एवं मनुष्य को समग्रतापूर्वक विकसित करने, उसकी खुशियों की खातिर दुश्मनों से लोहा लेने का युगीन संकल्प के साथ लिखी जा रही है। यद्यपि दुनिया की व्यापारिक नीतियाँ मनुष्य को कुछ काल के लिए बहकाता है, दिग्भ्रमित एवं विकास का प्रलोभन देकर राह से भटकाता है। लेकिन कवि को अपना मार्ग मालूम है। उसको जाना कहाँ है, यह भी पता है। शोषण, दमन एवं अत्याचार का ऐतिहासिक संघर्ष को कभी भूल नहीं सकता। हर क्षेत्र में वह बेहतर मनुष्य बनाने की लड़ाई कलम से लड़ रहा है। आधुनिक मानव जब स्वयं विकास पुरुष का अधिष्ठाता बन बैठा है तो ईश्वर, भगवान आदि झूठा है। मानव मूल्यों को श्रेष्ठता के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। व्यवस्था ने आदमी के सामने कैसा खौफनाक मंजर पैदा किया है, उसे वह अपने आसपास आग की तरह महसूस कर रहा है। आदमी की सांस आज के दौर में धौंकनी की तरह चल रही है। कविता में यथार्थ का चित्रण और व्यवस्थाजन्य विरोध समकालीन कविता में देखी जा रही है। यहाँ आदमी के जहन में रेगिस्तानी कांटे है, और

जो फूल है वह है आग का फूल। अर्थात आज पूरी व्यवस्था संदेह के दायरे में और विरोध की आवाजों के घेरे में है। विद्याभूषण का संग्रह 'पठार के सुनो कविता' की कविता 'आग के आसपास' में सामान्यजन का प्रतिविरोध हैं। यह राजनीतिक की कविता है, जिसे अपनी काव्यभाषा में जोरदार ढंग से बयां कर रहे हैं -

व्यवस्था के दंश
अधोषित आतंक के बारूदी हुक्मनामों में लिखा इतिहास
एक जहरीली फिजां की ईजाद कर रहा है
आग की भाषा अनुवाद की मोहताज नहीं होती।
किसी टूअर छौने की सहमी आँखों में
मौत की तरह सरकते सन्नाटे की चीख
और झुलसे चेहरों का कुचले जज्बातों के अहसास
किसी दुर्घटनाग्रस्त धमनभट्ठी की तरह
खौफनाक होते हैं।

समकालीन कवि ने नई सदी में पिछली सदी को उन चीजों को लाते हुए दाखिल होते देखा, जिससे मानव त्रस्त रहा है। लेकिन पिछली सदी में ऐसा कुछ भी नहीं था, जो नई सदी में पहले से नहीं था। 'नई' के नाम पर दाखिल होने वाली सदी एक पूरी वैश्विक कुरूप-व्यवस्था थी। मनुष्य के आधे-अधूरे विकास की संकल्पना, इंद्रधनुषी सपने, टूटे-फूटे के सिद्धांत और बनते हुए नये विचार होते थे। कवि अपने युग को उसकी संपूर्ण मानव-पृष्ठभूमि में देखता है और मानव विकास को स्कैन भी करता है। इसमें क्या खोया और क्या पाया इसका लेखा-जोखा की तजबीज़ नहीं होती, बल्कि पिछले सत्ता मनुष्य के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास ने कितना कर पाया, इसका तुलनात्मक कर मूल्यांकन भी करता है। वह बदलाव की फिर नयी-नयी कहानी, नया इतिहास एवं नयी परंपरा लिखने के लिए उद्धत रहता है। नया मानव की दिशा और दृष्टि को विकास के लक्ष्य से कभी भी ओझल नहीं होते देखा। व्यवस्था में आए कूड़ा-करकट को हटाना अर्थात मुक्तिबोध की भाषा में कहे, तो दुनिया को साफ करने के लिए मेहतर बनना है। कवि को इस दायित्व को निभाने के लिए हमेशा तैयार रहना पड़ता है। आज की कविता पृथ्वी को सुंदर बनाने मानवीय मूल्यों एवं अमनराग का सपना देखती है। राजा खुगशाल की कविता 'ईक्कसवीं सदी की दहलीज पर' में पुरानी सदी के हालात का वर्णन कर रहे हैं। यद्यपि यह कविता हमारी सदी के भावी रूप का चित्रण करती है क्योंकि आज पृथ्वी के अस्तित्व पर गहरा संकट आ गया है। पर्यावरण एवं परिस्थितिकी की चिंता आज की मानव जाति की सबसे बड़ी चिंता है। कवि की काव्य पंक्तियाँ हैं -

'अलविदा कह रहे हैं सब बीसवीं सदी को
तपती धरती, पिघलते ग्लेशियर
ढहते पहाड़, जलते जंगल, सूखती नदियाँ
बाढ़ और भूकंप की विभीषिकाएँ
युद्ध और अकाल की छायाएँ
अंतरिक्ष के लोमहर्षक दृश्य
चाँद-तारों के कंकड़-पत्थर
जिन्हें ढोकर लाये हैं हम पृथ्वी पर'

सभ्य मानव ने अपने विकास के साथ-साथ पृथ्वी पर विकास का मलबा भी ढोकर लाया है। नयी सदी में दाखिल भ्रष्ट-व्यवस्था, घूरे पर मिलने वाले अवैध संतानों, स्मगलरों की समानांतर शासन, थिरकते युवक-युवतियाँ, विकास के झूठे आंकड़े, हिंसा-प्रतिहिंसा और नये संकल्प-विकल्प का कोलाज है पिछली सदी। आततायी व्यवस्था का चेहरा है पिछली सदी। देश की सच्चाई यहाँ की गरीबी एवं शाम को झोपड़ी में धुआंता हुआ चूल्हा है। रोटी - नमक - प्याज - मिर्ची पर गरीब का दिन कटना है क्योंकि हर सदी में इनकी जिंदगी चीख-पुकार मचाती रही है। दौलत वालों की नींद में खलल डालती रही है। ये सरकार के विकास बीस सूत्री कार्यक्रम और गरीबी हटाओं के राजनीतिक नारे में उछलते रहे हैं। विकास की सारी सुंदर एवं आकर्षक कहानियाँ गरीबों के खून-पसीने से लिखी गयी है। सरकारी बजट का ठिकरा असहाय, बेरोजगार भूखों के सिर पर ही तोड़ा गया। रोटी-नमक-प्याज-मिर्च इनकी भूख मिटाने रोजमर्रा का आहार बना। बेघर, बेकार एवं दाने-दाने के मुहताजों की संख्या हर सरकार के बाद बढ़ती गयी है। समकालीन कविता ने जनवादी-दृष्टि से जीवन के हालात की छानबीन की और विचारकों ने व्यवस्था की आलोचना की। गरीबी की हालत पर कवि क्या हर संवेदनशील मानव आँसू बहाता है। यह अमीरी-गरीबी का द्वंद्व, सुविधाभोगी और सुविधाहीन का द्वंद्व, परिवर्तन और यथास्थिति का द्वंद्व आज की हिंदी कविता में एक तरह से सनातन प्रश्न बन गया है। इसे ऐतिहासिक सत्य बताते हुए मुक्तिबोध ने 'सत्-चित्-वेदना' कहा था। आनंद नहीं। ऋतुराज की कविता 'गरीब लोग' हमारी आज समाज की सच्चाई बताती है। आधुनिक जीवन की जो भागदौड़ और आधुनिक जरूरतें किस तरह पिस रही है, इस नयी व्यवस्था का चेहरा देखना चाहिए -

'गरीब लोगों की आत्माओं से भाप निकलती है
जिससे चलती हैं रेलें, दौलती है स्टीमर,
उनके पसीने से बनता है पेट्रोल
उनके खून से बनते हैं दुनिया के सारे रंग
उनकी जिजीविषा से दार्शनिकों विचारकों को
गंभीर चेहरों पर दमकता है तेज,
उनके हास-परिहास से जवान होते हैं बूढ़े ऋषि।'

इधर मध्यवर्गीय जीवन-शैली एवं घरेलू रहन-सहन में माहिलाओं की भूमिका का विस्तार हुआ है। पहले जहाँ उन्हें केवल रसोई में खाना बनाने तक सुरक्षित रहना पड़ता था, उन्हें अब ऑफिस में कामकाज करना पड़ता है। मर्द भी काम करता है। व्यावहारिक रूप से पति-पत्नी दोनों को कामकाजी कहलाते हैं। दोनों को थकावट होती है। लेकिन बावजूद वह किचन में घुसने से मर्द को रोकती हैं। नैतिक जिम्मेवारी को पहचानती है। इसका कारण वह स्वयं जानती है, यदि उसे कुछ बनाने के लिए कहा जाएगा तो हर वस्तु कहाँ है, इसकी खोजीबीन करते हीं समय बर्बाद हो जायेगा। ऐसे में वह स्वयं की जिम्मेवारी समझ कर चाय या नश्ता बनाने लगती है। राजेश जोशी की कविता 'उनकी गृहस्थी' में मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन में स्त्री की एक झलक देखें -

'साड़ी का पल्लू कमर में खोंसती हुई वो आती है
मुझे हटाते हुए कहती- 'हटो, तुम्हें नहीं मिलेगी कोई चीज।'
होठों को तिरछा करती अजीब ढंग से मुस्कुराती है
मुश्किल है उस मुस्कुराहट का ठीक ठीक अर्थ
समझ पाना
जैसे कहती हो यह मेरी सृष्टि है
तुम नहीं जान पाओगे कभी
कि किन बादलों में रखी है बारिशें, किनमें रखा है कपास '

मध्यवर्गीय परिवार में पति-पत्नी के बीच रोजी-रोटी को लेकर तनाव बढ़ा है। महिलाओं का कार्यक्षेत्र घरेलू जीवन से लेकर सार्वजनिक जीवन तक है। उनके संघर्ष, भाग-दौड़, परेशानी, बच्चों का कैरियर, पति का जॉब एवं अपने ऑफिस में बॉस के साथ जी हुजूरी करना आदि प्रतिदिन महिलाओं के काम में शामिल हैं। दूसरी ओर, मेहनतकश महिलाओं का शोषण, दमन एवं यौन- शोषण, आदिवासी बालाओं की तस्कारी, दलित महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार, संपन्न परिवारों से पैसे के लिए निकलनेवाली काल गर्ल आदि पूँजीवादी समाज के दागदार चेहरे हैं। वहीं बाजारवादी व्यवस्था में स्वतंत्रता एवं ग्लेमर ने उनको विज्ञापन की नायिका एवं विश्वसुंदरी बनने का पूरा तंत्र रचा है। महानगरों में देह-व्यापार करनेवाली लड़कियाँ हैं, जो सामंती व्यवस्था की पतित औरतों से भी गई गुजरी जीवन बीताती है। उनका सम्मान हर पुरुष के पास मानो गिरवी पड़ा है।

यह आधुनिक समाज-व्यवस्था का यथार्थ है। समकालीन कविता के नये रचनात्मक क्षेत्र खुले हैं। कवि भी नये अनछुए अनुभव क्षेत्र से आकर कवि-कर्म में अपनी नयी संवेदना का व्यक्त कर रहे हैं। उनमें प्रगतिशील चेतना सदैव दीपक की तरह जलती रहती है। जीवन के ढेरों ऐसे प्रसंग एवं घटनाएँ भी कविता के दायरे में आ रहे हैं। इन अनछुए विषयों से हिंदी कविता का वर्ग संघर्ष और भ्रष्ट-व्यवस्था के खिलाफ आवाज तेज हो रही है। व्यक्ति को बदलना समाज के बदलने से पहले की अवस्था है। जो आज तक संभव नहीं हुआ है। दुनिया को बदलने लिए

कथनी-करनी में एकता चाहिए। केदारनाथ सिंह सूक्ष्मता के कवि हैं। जीवन के यथार्थ को देखने के लिए उनके पास विशिष्ट दृष्टि है। कम शब्दों में व्यवस्था पर चोट कैसे की जाती है, यह उनकी कविता से सीखी जा सकती है। 'कलाकार से' कविता में तोड़ने की कला के बारे में कहते हैं -

'चट्टान को तोड़ो
वह सुंदर हो जायेगी
उसे और तोड़ो
वह और, और सुंदर होती जायेगी।'

यह प्रहार निरंतर होते रहना चाहिए। भ्रष्ट व्यवस्था का किला बहुत मजबूत है। ये ही गढ़ और किले मुक्तिबोध के भी हैं। यह सत्य को छुपाता है और झूठ का प्रचार करता है। इस काली व्यवस्था में सबसे बदतर जिंदगी बच्चों की है। ये हर प्रकार से असुरक्षित हैं। इनका जीवन होटलों, ढाबों एवं सड़कों पर गुजरता है। इनका उज्ज्वल भविष्य आज कल-कारखाने के धुएँ से धूमिल लगता है। ये गरीब परिवार के बच्चें हैं, जो सड़क पर दौड़नेवाले कुत्ते समान हैं। शिक्षा तो इनके लिए महज सपना है। माँ-बाप का ठिकाना नहीं है। लावारिस इनका जीवन है। चंद्रकांत देवताले की कविता 'थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे' में संवेदशील यथार्थ को महसूस किया जा सकता है -

'ढेर सारे बच्चे
सार्वजनिक दीवारों पर गालियाँ लिख रहे हैं
ढेर सारे बच्चे बीड़ी के अद्धे ढूँढ रहे हैं
ढेर सारे बच्चे होटलों में
कप-बसियाँ रगड़ रहे हैं
उनके चेहरे मेमने की तरह दयनीय हैं
और उनके हाथों और पाँवों की चमड़ी
हाथ और पाँव का साथ छोड़ रही है।'

बाल-जीवन का यह कैसा दर्दनाक चित्र है? हमारे देश के बच्चों की आदत किसने बिगाड़ी? असामाजिक कार्यों की ओर किसने धकेला? पुलिस और गुंडों के हाथों बच्चे कैसे पहुँच जाते हैं? लाखों बच्चों के हाथों में किताब-कॉपी-कलम की जगह किसने कटोरा थमा दिया है? महानगरों के चौक-चौराहों पर बाबुओं की कार की सफाई के बहाने क्षुधा तृप्त करने दो चार रुपये के लिए हाथों को फैलाते। कामुक युवा उनके बालपन का अंधेरी रातों में फूलपाथों पर दुर्व्यवहार करते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में सबका विकास और सबका साथ की दृष्टि होती है। समाज के सभी वर्ग अपना विकास करते हैं। लेकिन फूटपाथ के बालजीवन को सुविधाभोगियों के बालकों के आगे अक्षर सीखने का नसीब नहीं है। समाज में आर्थिक असमानता के समुद्र में केवल विरोध की लहरे उठते हैं। कविता में ऐसी हर प्रकार की लहरों का स्वागत हो रहा है।

रिश्वतखोरी की तकाता यह है कि 'जिलाधीश कार्यालय के परिसर में' हाकिम रोज-रोज रिश्वत माँगते हैं। हलवाहे से सौ-दौ सौ ठगते-मचोरते हैं। कुमार अंबुज की यह कविता रिश्वतखोरी के आलम जिला के सबसे उच्च पदाधिकारी कलेक्टर के ऑफिस में दिखाते हैं। यह कविता एक तरह से देश के जिला कलेक्टर एवं कोर्ट-कचहरियों तथा मुख्यालयों में होनेवाली रिश्वखोरी का फंडाफोड़ती है -

'घर-गाँव छोड़े हुए चार दिन
अहाते के पेड़ के नीचे बैठा है हलवाहा
घरवाली ने रखी थीं जितनी भी ज्वार की रोटियाँ
हो चुकी हैं खतम
नाजिर कहता है अभी रूकों दो दिन और!
बाबू माँगता है कलेक्टर की नाक के नीचे
दो सौ रूपये की रिश्वत
सारे हाकिम रोज आते-जाते हैं पेट हिलाते हँसते हुए
भूखे असहाय हलवाहे के सामने से'

समकालीन हिंदी कविता मजबूती से जीवन के अनजाने इलाकों की ओर अग्रसर है। सुदूर ग्राम जीवन का आम किसान तक टहलती हुए उनका दर्द, पीड़ा, शोषण का सुनने पहुँच जाती हैं। लीलाधर जगूड़ी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, सुधीर सक्सेना, नरेश सक्सेना, शंभु बादल, लीलाधर मंडलोई, अनिल जनविजय, एकांत श्रीवास्तव, नरेंद्र पुंडरीक आदि कवि समकालीन कविता में यथार्थ और संवेदना के द्वंद्व को उभार रहे हैं। आठवें दशक में कविता का संपूर्ण ढाँचा एवं तेवर ही बदला है। समकालीन कविता में प्रतिबद्धता की जगह संसार के कहीं से कोई विचार लिया जा सकता है। आज की कविता की संवेदना का विकास विभिन्न संदर्भों में हो रहा है क्योंकि यथार्थ का वहीं धरातल नहीं है, जो प्रगतिवाद, प्रयोग में दिखता था। सोच की दिशा आसन्न वैश्विक सोच से बिल्कुल नवीनता की ओर अग्रसर है। किसी 'वाद' के कटघरे में न तो कवि बंधा है और उनकी कविता। वह पूरी तरह उन्मुक्तजीवी हो चुका है। आज की कविता का मूल्यांकन कवि की दृष्टि और कविता में व्यक्त भाव के आधार पर होगा। कवि चाहे परोक्षरूप से किसी भी दल और विचार से जुड़ा हो।

गणेश चन्द्र राही, ग्राम : डुमर, पो. : जगननाथ धाम, जिला : हजारीबाग-825317 (झारखंड)
मो. : 9939707851

✧ ✧ ✧

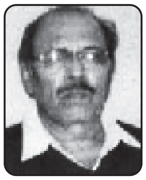

राष्ट्रीय चेतना के कवि : बालकृष्ण शर्मा नवीन

राजेन्द्र परदेसी

नवीन जी की कविताओं में जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान है, वहीं उनमें मानव-मन की सूक्ष्म प्रवृत्तियों का अंकन भी है। छायावादी युग में जन्म लेने के उपरान्त भी नवीन जी काव्य में कोरी कल्पना के घोर विरोधी थे। वे काव्य को यथार्थ की भूमि पर संचरित करने के पक्षधर थे। इसी प्रकार नवीन जी काव्य में दुरुहता के स्थान पर स्पष्ट कथन के अत्यधिक हिमायती थे। उन्होंने लिखा है- ''हमें इस बात का ख्याल रखना पड़ेगा कि हम अपनी अभिव्यक्ति में दुरुह न हो जाएँ। यदि हमारी अनुभूत में कोई विडम्बना नहीं है, तो हमारा वर्णन भी स्वच्छ एवं निर्धूम होगा। बौद्धिक उजबकथन भी एक बड़ा दोष है। हमारे वर्तमान बुद्धि-श्री-सम्पन्न कवियों में यह दोष आ गया है कि वे कल्पनाओं और रंगकेजियों के घटाटोप में असली बात छिपा जाते हैं।'' नवीन जी की कविताओं में लेशमात्र भी अभिव्यक्ति का दुरुहपन नहीं दृष्टिगोचर होता। वे राष्ट्रीय काव्य के प्रेरणाओं में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

राष्ट्रीय एवं सामाजिक आंदोलनों में अनेक साहित्यकारों ने योगदान किया है, उनमें से बालकृष्ण शर्मा नवीन के योगदान का विशेष उल्लेख है, इनकी कविता पर राष्ट्रीय आन्दोलनों, सामाजिक घात-प्रतिघातों, दार्शनिक अनुभूतियों स्वच्छन्दवादी काव्य एवं प्रगतिवाद के अनेक प्रभाव पड़े हैं किन्तु हिन्दी जगत में इनकी प्रतिष्ठा क्रान्तिकारी कवि के रूप में अधिक है, आरम्भ में इनके काव्य में छायावादी काव्य की जो प्रवृत्तियाँ उद्बुद्ध हुई थी, वह यथेष्ट रूप में विकसित न हो सकी।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म ग्वालियर राज्य के सुजानपुर परगने भयाना ग्राम में 8 दिसम्बर, 1897 ई. को हुआ था। उनके पिता जमुना प्रसाद शर्मा अत्यंत सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। वे पाखण्ड एवं अहंकार के घोर विरोधी थे, जिसका प्रभाव बालकृष्ण शर्मा पर भी पड़ा।

'नवीन' जी का जन्म ताऊ जी के गायों के बाँधने के एक बाड़े में हुआ था। पिताजी ने अपनी कृष्णानुरागी वृत्ति तथा बालक के गोशाला में जन्म लेने के कारण पुत्र का नाम 'बालकृष्ण' रखा। शर्मा जी का बचपन अत्यन्त आर्थिक कठिनाइयों में व्यतीत हुआ। शैशव अवस्था में उन्हें दुग्ध तक नसीब नहीं हुआ। माँ अपने हाथों से चक्की पीसकर

किसी प्रकार बालक के लिए दूध जुटा पातीं थी।

बालकृष्ण शर्मा जी की शिक्षा का प्रारम्भ ग्यारहवें वर्ष में 'शाजापुर' में हुआ। माँ ने अनाज पीस-पीस कर उन्हें पढ़ाया। शर्मा जी निर्धनता के कारण नंगे पाँव रहते थे। शाजापुर से अंग्रेजी मिडिल स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे हाई स्कूल की शिक्षा ग्रहण करने हेतु उज्जैन गए। वहाँ उन्होंने माधव महाविद्यालय से हाई स्कूल की परीक्षा सन् 1917 में उत्तीर्ण की।

इसके पूर्व नवीन जी का परिचय गणेश शंकर विद्यार्थी से हो गया था। अस्तु मैट्रिक करने के बाद वे कानपुर आए तथा विद्यार्थी जी के सहयोग से उन्होंने क्राइस्ट चर्च कॉलेज से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की। जिस समय वे बी.ए. द्वितीय वर्ष के छात्र थे, गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के कारण उन्होंने शिक्षा समाप्त कर दी। यहीं से नवीन जी के विद्यार्थी जीवन की इतिश्री हो गयी और सक्रिय रूप से स्वतंत्रता संग्राम एवं साहित्य-सृजन के काम में लग गए।

लखनऊ के एक आयोजन में जिन व्यक्तियों से शर्मा जी का परिचय हुआ था, उनमें प्रमुख थे - श्री माखनलाल चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी तथा मैथिली शरण गुप्त। इन तीनों का 'नवीन' जी के व्यक्तित्व निर्माण में यथेष्ठ प्रभाव पड़ा। चतुर्वेदी जी यदि उनके वन्दनीय रूप में समाहत हुए तो विद्यार्थी जी ने उनके जीवन का निर्माण किया। गुप्त जी उनके जीवन में अग्रज तथा 'दद्दा' के रूप में प्रसिद्ध हुए।

प्रारम्भ से नवीन जी के हृदय में माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं के प्रति एक विशेष आकर्षण था। नवीन जी जिस समय 'माधव कॉलेज उज्जैन में पढ़ते थे। उस समय उनकी काव्य प्रतिभा से सभी परिचित हो गए थे। सर्वप्रथम उनकी कविता 'तारा' सरस्वती पत्रिका में 'नवीन' उपनाम से प्रकाशित हुई। द्विवेदी जी ने इसे मुखपृष्ठ पर स्थान दिया था। इसके उपरान्त उनकी कविताएँ एवं कहानियाँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं में 'नवीन' के नाम से प्रकाशित होने लगी।

'विद्यार्थी' जी के सम्पर्क में आते ही यह मेधावी एवं प्रतिभा सम्पन्न कवि परिष्कृत हो उठा। कानपुर की 'प्रताप' पत्रिका के माध्यम से इनकी साहित्यिक कीर्ति प्रसारित होने लगी।

'विद्यार्थी' जी के बलिदान के उपरान्त 'नवीन' जी कानपुर के ही नहीं, सम्पूर्ण प्रांत के नेता के रूप में लोकप्रिय हो उठे, किन्तु 'नवीन' जी के कवित्व पर राजनीति कभी हावी नहीं हो सकी, यद्यपि वह विवादास्पद है, जैसा कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है- ''यह कहना मुश्किल है कि नवीन जी को राजनीति साहित्य क्षेत्र में ले आयी थी या उनकी साहित्यिक प्रतिभा उन्हें राजनीति में ले आयी। उनके लिए देश सेवा और साहित्य सेवा में फर्क नहीं था।

जिस समय 'नवीन' जी का अभ्युदय हुआ, देश में स्वतंत्रता संग्राम छिड़ चुका था। उस युग के प्रायः सभी कवि एवं साहित्यकार इससे अप्रभावित न रह सके। देश के कोने-कोने में नवजागरण के बोल फूट पड़े थे। देशवासियों ने स्वतंत्रता को अपना जन्म सिद्ध अधिकार स्वीकार

किया और उनकी सम्प्राप्ति में अपने प्राणों की उत्सर्ग करने के निमित्त वे क्रान्तिकारी पथ पर भी अग्रसर हो उठे, जिन्हें अनुप्रेरित करने वाले थे, राष्ट्रीय कवि माखनलाल चतुर्वेदी के अधोलिखित स्वर जन-जन के जागरण-गीत बन चुके थे-

''बलि होने की परवाह नहीं मैं हूँ, कष्टों का राज्य रहे।
मैं जीता, जीता-जीता हूँ माता के हाथ स्वराज्य रहे।

इसी समय 'नवीन' जी की रण-दुन्दुभी बज उठी-

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए,
एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये।
प्राणों के लाले पड़ जाए, त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाये,
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाए।
बरसे आग, जगत जग जाए, भस्मसात भूधर हो जाए,
नभ का वक्षस्थल फट जाए, तारे टूक-टूक हो जाए।

'नवीन' जी ने सक्रिय रूप से स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। अनेक बार कारागाह के सीकचों में वे बन्द किए गए। फलस्वरूप वह प्रखर अनुभूति ओजस्वी-स्वर में ललकार उठी-

प्राणों के तड़पाने वाली हुंकार से जल-थल भर दे,
अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित पलीता धर दे।

नवीन जी की कविताओं में जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान है, वहीं उनमें मानव-मन की सूक्ष्म प्रवृत्तियों का अंकन भी है। छायावादी युग में जन्म लेने के उपरान्त भी नवीन जी काव्य में कोरी कल्पना के घोर विरोधी थे। वे काव्य को यथार्थ की भूमि पर संचरित करने के पक्षधर थे। इसी प्रकार नवीन जी काव्य में दुरुहता के स्थान पर स्पष्ट कथन के अत्यधिक हिमायती थे। उन्होंने लिखा है- ''हमें इस बात का ख्याल रखना पड़ेगा कि हम अपनी अभिव्यक्ति में दुरुह न हो जाएँ। यदि हमारी अनुभूत में कोई विडम्बना नहीं है, तो हमारा वर्णन भी स्वच्छ एवं निर्धूम होगा। बौद्धिक उजबकथन भी एक बड़ा दोष है। हमारे वर्तमान बुद्धि-श्री-सम्पन्न कवियों में यह दोष आ गया है कि वे कल्पनाओं और रंगकेजियों के घटाटोप में असली बात छिपा जाते हैं।''

नवीन जी की कविताओं में लेशमात्र भी अभिव्यक्ति का दुरुहपन नहीं दृष्टिगोचर होता। वे राष्ट्रीय काव्य के प्रेरणाओं में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

नवीन जी के गीतों में जीवन दर्शन है - यह कहना यहाँ प्रासंगिक नहीं होगा। उन्होंने जहाँ राष्ट्रीयता के स्वर को निनादित किया है, वहीं वे मनुष्य के शाश्वत एवं चिरन्तन मूल्यों का भी विस्मरण नहीं कर सके। उन्होंने लिखा है- 'ये आपके कविगण, जिनका मखौल पुरानों और

नयों के सर्जनावादी, हालाप्यालावादी, रहस्यवादी, छायावादी एवं अर्थहीन बकवादी कहकर उड़ाया गया है, आपके साहित्य के आभूषण हैं। स्मरण रखिए भविष्य में इतिहासवेत्ता इस काल को प्रसाद, पंत, माखनलाल, महादेवी, भगवतीचरण, निराला, सुभद्रा, दिनकर, बच्चन, अज्ञेय आदि के नाम से भी स्मरण करेगा। इनका कसूर यह था और यह है कि इन्होंने गतानुगतिक परम्परा के बन्धनों का निरादर किया और व्यक्ति की समष्टि-मूलक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की। इनके पहले आपकी कविता क्या थी, जरा सोचिए तो।''

उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि नवीन जी साहित्य में न तो प्राचीन अभिव्यक्ति के कायल थे और न तथ्य के ही। वे मानव-मन की उस छटपटाहट की अभिव्यक्ति देने के पक्षपाती थे, जो आदर्शवादी के कटघरे में असहाय तड़प रही थी। इस प्रकार नवीन जी को हम राजनीति एवं साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में एक विद्रोही के रूप में देखते हैं।

राष्ट्रीय कविताओं के अतिरिक्त नवीन जी ने प्रणय-परक कविताओं की संरचना की है, किन्तु विप्रलम्भ उनका प्रधान गुण है। इनके गीतों में माँसलता के भी दर्शन होते हैं। यथा-

प्राण, तुम्हारी हँसी लचीली।
ग्रीव में वह तब मृदु भुजमाल,
स्मरण-कंटक बन आयी वाल।

इसके अतिरिक्त स्व प्रेम एवं छायावादी कविताएँ भी इन्होंने लिखी हैं, जिन्हें हिन्दी साहित्य की निधि स्वीकार किया जा सकता है। यथा -

''मेरी आराधना परिधि का केन्द्र बिन्दु सुकुमार सखी,
सहसा टपक पड़ा और आँखों की पुतली से उस वार सखी।
उत्कंठा ने सीमा को उल्लंघित करके किया प्रणाम,
कंपे अधर, रह गया सिसक कर हिय का विमल दुलार सखी।

नवीन जी की प्रकाशित कृतियाँ हैं। - 'कुसुम', 'रश्मिरेखा', 'अपलक', 'क्वासि', 'विनोबा-स्तवन', 'हमविषपायी जनम के'।

इसके अतिरिक्त इनके दो प्रबन्ध काव्य - 'उर्मिला' तथा 'प्राणार्पण' हैं। अपने काव्य लोक में विचार करते हुए पाँच सौ कविताओं का सृजन किया। आप उज्जैन, कानपुर, लखनऊ जेल, गाजीपुर जेल, रेलवे पथ-कानपुर इलाहाबाद, झाँसी रेलपथ, इलाहाबाद रेल पथ, चिरगाँव रेलपथ चरगाँव, कानपुर, उरई रेलपथ, हरदोई, लखनऊ, नैनी जेल, रेलपथ काशी से कानपुर, रेलपथ फफूँद से कानपुर, उन्नाव जेल, नई दिल्ली एवं रेल पथ, बम्बई स्थानों पर विभिन्न स्थानों पर रहकर अनेकानेक विषयों को अपने काव्य में संजोया है।

'कुसुम' में कवि की 38 कविताएँ संकलित हैं। इसका प्रकाशन काल 1939 है। इसमें कवि की देश-भक्ति-परक रचनाएँ ही अपना प्राधान्य रखती है। 'विप्लव-गायन' तथा 'पराजयगीत' इस संकलन की श्रेष्ठ कविताएँ हैं। इसके अतिरिक्त इसमें श्रृंगार प्रधान रचनाएँ भी संग्रहीत हैं। इससे कवि की काव्यधारा राष्ट्रीय तथा प्रेम के युगुल कूलों का स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती है। 'रश्मिरेखा' नवीन जी का दूसरा काव्य संकलन है, जिसका प्रकाशन 1951 में हुआ था। इसमें सत्ताइस कविताएँ संकलित हैं।

'अपलक' कवि का तृतीय संकलन है। इसका प्रकाशन अगस्त, सन् 1951 में हुआ। यह मूलतः गीत काव्य है। 'क्वासि' कवि नवीन का चतुर्थ काव्य संग्रह है। इसमें कवि की रहस्यात्मक कविताओं का संकलन है। 'विनोवास्तवन' कवि का अन्तिम प्रकाशित काव्य संग्रह है। इसमें जैसा कि नाम से स्पष्ट है विनोबा जी को श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है।

'उर्मिला' हिन्दी साहित्य की उत्कृष्ट कोटि की प्रबन्ध कृति है। इसका प्रकाशन सन् 1957 में हुआ था। इसके लेखन में लगभग बारह वर्ष लगे थे। उपेक्षिता उर्मिला के जीवन वृत्त को शब्द देकर 'नवीन' ने 'रामकथा' की परम्परा को एक नवीन आयाम प्रदान किया है।

नवीन जी का निधन अगस्त, सन् 1967 को हुआ था। उनके अन्तिम समय का जीवन अत्यन्त दुखों से घिरा रहा। उनके अन्तिम जीवन के क्षणों की झाँकी 'हम विषपायी जन्म के' काव्य कृति से सुबुद्धि लोग जान सकते हैं। उस समय उनकी वाणी रूद्ध हो गयी थी। तब वह गणेश शंकर के तिलक नगर निवास स्थान में रहते थे। जब उनका मन एकाकीपन से ऊबने लगता था। तब वे अपनी काव्य कृति 'हम विषपायी जन्म के' डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल के सम्मुख उस कृति की क्रचित कविताओं को खोलकर रख देते थे तथा सांकेतिक भाषा में उन कविताओं को सुनाने को कहते। जब डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल उनकी रचित कविताओं का पाठ करते जाते तो उनके नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगती।

राजेन्द्र परदेसी, वरिष्ठ साहित्यकार, 44- शिव विहार, फरीदीनगर, लखनऊ-226015
मो. : 9415045584, ई-मेल : rajendrapardesi66@gmail.com

✧ ✧ ✧

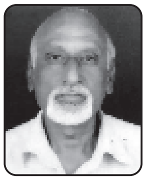

क्या वर्तमान साहित्य जगत ने भारतेंन्दु हरिश्चंद्र को भुला दिया है?

9 सितंबर को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 174वीं जयंती पर

राजेन्द्र सिंह गहलोत

चाय-पान के स्टाल से ढकी दीवाल के एक कोने से किसी तरह झांकती हुई भारतेन्दु भवन की पट्टिका तथा भारतेन्दु जी का चित्र किसी कदर नजर आ रहा था। भवन की ऊपरी मंजिल सामने से धूलधूसरित तथा टीन के छप्पर से ढकी नजर आ रही थी। उस पर कोई एक टूटा हुआ बोर्ड लगा हुआ था, जिसका ''प्रसाद एण्ड संस'' वाला हिस्सा दिखाई पड़ रहा था, अगला हिस्सा टूट कर अलग हो गया था। भवन के पहले कमरे में ''भारतेन्दु जी'' की पालकी उपेक्षित हालत में रखी हुई थी। सीढ़ी चढ़कर ऊपर जाने पर देखा कि ऊपर के कमरों में ताला लगा हुआ है। भवन में डॉ. गिरीश चन्द्र चौधरी से तो मुलाकात हो न सकी लेकिन आस पास के दुकानदारों ने भी किसी खास मौके (मसलन भारतेन्दु जयंती, पुण्यतिथि आदि) पर कोई विशाल आयोजन किए जाने की कोई जानकारी नहीं दी।

प्रतिष्ठित साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र के वृहद साहित्यिक योगदान के कारण सन् 1868 से 1900 तक के साहित्यिक काल को ''भारतेंन्दु युग'' के नाम से जाना जाता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितंबर, 1850 को हुआ था। मात्र 34 वर्ष 4 माह की अल्पायु में उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में जितना विपुल साहित्य सृजन किया, उतना शायद ही किसी साहित्यकार ने किया होगा। उन्होंने 5 वर्ष की बाल्यावस्था में ही यह दोहा लिखा -

''लै व्यौढा ढाड़े भये श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान।''

तथा अपने पिता बाबू गोपालचंद्र (उपनाम कविवर गिरिधर दास) से सुकवि होने का आशीर्वाद प्राप्त किया। उन्होंने सन् 1867 में 16 वर्ष की आयु में ''कविवचन सुधा'', सन् 1873 में ''हरिश्चंद्र मैगजीन'' (8 अंक के बाद उसका नाम ''हरिश्चंद्र चंद्रिका'' हो गया था) तथा सन् 1874 में स्त्रियों की शिक्षा के लिए ''बाला बोधनी'' नामक पत्रों का प्रकाशन किया। 20 वर्ष की उम्र में वे ''ऑनरेरी मजिस्ट्रेट'' नियुक्त किए गए तथा 6 वर्षों तक ''लॉ म्युनिसिपल कमिश्नर'' रहे। बाबू हरिश्चन्द्र की विद्वता एवं समाज सेवा से प्रभावित होकर 20 सितंबर, सन् 1880 ई. में ''सार सुधा निधि'' पत्र ने उन्हें ''भारतेंन्दु'' की पदवी देने का प्रस्ताव रखा तथा काशी के अन्य विद्वानों की सहमति से उन्हें ''भारतेन्दु'' की उपाधि दी गई तथा उसके बाद से वे अपने नाम

के आगे ''भारतेन्दु'' लिखने लगे। भारतेन्दु ने जिस समय साहित्य सृजन किया, उस समय भारत में फारसी एवं अंग्रेजी भाषा का बोलबाला था। उस समय हिन्दी भाषा को प्रतिष्ठित स्थान पर स्थापित करने के लिए राजा लक्ष्मण सिंह एवं शिव प्रसाद सितारे हिन्द प्रयासरत थे। लेकिन राजा लक्ष्मण सिंह जहाँ शुद्ध संस्कृतष्ठ हिन्दी भाषा के समर्थक थे, वहीं शिव प्रसाद सितारे हिन्द ''आम फहम और खास पसंद'' के फार्मूले पर बोलचाल की हिन्दी भाषा में उर्दू, अंग्रेजी सभी के मिश्रण को उचित ठहराते थे। वैसी स्थिति में भारतेन्दु ने मध्य मार्ग अपनाते हुए हिन्दी भाषा में खड़ी बोली को स्थापित किया तथा उन्हें आधुनिक हिन्दी का जनक माना गया। वे निज भाषा की उन्नति के पक्षधर थे। उन्होंने लिखा था-

''निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को सूल।''

भारतेन्दु ने साहित्य सृजन करते हुए 21 काव्य, 52 छोटे प्रबंध एवं मुक्तक रचनाएँ तथा ढेरों स्फुट कविताएँ लिखी, जिनमें गजल, सवैया, कवित्त, समस्यापूर्ति, मुकरी आदि है। जबकि गद्य में उन्होंने 24 नाटक, 50 निबंध, 20 धार्मिक रचनाएँ (जिसमें हिन्दी कुरान शरीफ भी शामिल है), एक आत्मकथा ''कुछ आपबीती कुछ जगबीती'' शीर्षक से, 9 हास्य व्यंग्य (प्रहसनात्मक) रचनाएँ, 7 यात्रा वृतांत (मध्यदेशीय यात्री के नाम से) तथा 4 विविध रचनाएँ लिखी थी। उन्होंने संस्कृत, प्राकृत, बांग्ला के कई नाटकों का हिंदी में अनुवाद किया तथा शेक्सपियर के नाटक ''मर्चेन्ट ऑफ वेनिस'' का ''दुर्लभ बंधु'' के नाम से हिन्दी में अनुवाद किया। वे अच्छे पत्र लेखक भी थे। उन्होंने राधाशरण, कविराज श्यामलदास, प्रेमधन, काशीराज ईश्वरी प्रसाद सिंह, ईश्वरचन्द्र, विद्यासागर, बंकिम बाबू आदि को पत्र लिखे थे। जबकि उन्होंने मेवाड़ यात्रा से लौटते वक्त अपने जीवन के अंतिम समय में जो पत्र अपने अनुज गोकुल चंन्द्र को लिखा था, वह उनकी वसीयत भी हो सकता है। उस पत्र का कुछ अंश इस प्रकार था। विदेश से लौट कर हम न आवें, तो इस बात का जो हम यहाँ लिख रहे हैं ध्यान रखना। ध्यान क्या अपने पर फर्ज समझना। किन्तु हम जल्द ही जीते जागते फिरेगें। कोई चिंता नहीं है। सिर्फ संयोग के वश हो कर लिखा है। यदि ऐसा हो तो दो चार बातों का अवश्य ध्यान रखना। यह तुम जानते हो कि तुम्हारी भाभी की हमको कुछ चिंता नहीं क्योंकि तुम्हारे ऐसा देवर जिनका वर्तमान है उसको और क्या चाहिए। दो बातों की हमको चिन्ता है। प्रथम कर्जे दूसरी मल्लिका की रक्षा। थोड़ी-सी डिगरी जो बच गई है उसको चुका देना और जीवन भर दीन-हीन मल्लिका की, जिसे हमने धर्मपूर्वक अपनाया है रक्षा करना।....... जो ग्रंथ हमारे या बाबू जी के बेछपे रह जाये वे छपे।...... इस पर हंसना मत दुखी मत होना, क्योंकि अभी तो अणु मात्र भी मरने की संभावना नहीं है। शारीरिक कुशल है तनिक भी चिंता न करना। - हरिश्चन्द्र

मल्लिका उनकी प्रेमिका थी, जिसका असली नाम ''आली जान'' था। उसकी शुद्धी करा कर भारतेन्दु ने उसका नाम ''मल्लिका'' रखा था। मेवाड़ यात्रा से लौटने के बाद से ही वे लगातार बीमार रहे। 2 जनवरी, 1885 को बीमारी काफी बढ़ गई थी। उस बीमारी के हाल में जब लोगों ने उनके सेवकों से उनका हाल पूछा, तो उन्होंने सेवकों से कहा -

''जा कर कह दो हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया छप रहा है। पहले दिन ज्वर का, दूसरे दिन दर्द, तीसरे दिन खांसी का सीन हो चुका है। देखो लास्ट नाइट कब होती है।'' धीरे-धीरे उनकी हालत बिगड़ने लगी और 6 जनवरी, सन् 1885 को रात्रि 1 बजे उनका स्वर्गवास हो गया।

पंडित रामशंकर व्यास ने उनकी जीवनी लिखते हुए लिखा था कि वह प्रायः कहा करते थे; अभी तक मेरे पास पूर्ववत् बहुत धन होता, तो मैं चार काम करता (1) श्री ठाकुर जी को बगीचे में पधार कर धूम-धाम से षट् ऋतु का मनोरथ करता (2) विलायत, फरासीस और अमेरिका जाता (3) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी की युनिवर्सिटी स्थापना करता (हाय रे हत्भागिनी हिन्दी, अब तेरा इतना ध्यान किसको रहेगा)

(4) एक शिल्प कला का पश्चिमोत्तर देश में कालेज करता।

(भारतेन्दु समग्र, पृष्ठ 1112, हिन्दी प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, पिशाचमोचन वाराणसी 221010)

क्या भारतेन्दु जी की तीसरी और चौथी अभिलाषा वर्तमान तक भी पूरी हो सकी?

खेद है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी जैसे इतने महान् साहित्यकार को वर्तमान साहित्य जगत ने भुला दिया है। यह आलेख मैंने पिछले वर्ष अगस्त माह के अंतिम सप्ताह में लिखा था, जबकि उसके अगले माह सितम्बर की 9 तारिख को भारतेन्दु जी की 172 वीं जयंती थी। लेकिन वर्तमान की किसी भी साहित्यिक पत्रिका का भारतेन्दु पर केन्द्रित विशेषांक के प्रकाशित होने की कोई भी सूचना उस वक्त सुनाई नहीं पड़ी और ना ही देश की किसी भी साहित्यिक संस्था द्वारा ''भारतेन्दु जी की जयंती'' पर कोई भी विशाल आयोजन करने की कोई घोषणा ही की गई थी तथा 6 जनवरी को उनकी पुण्यतिथि पर भी किसी आयोजन की चर्चा सुनाई नहीं पड़ी। वर्तमान 9 सितंबर सन् 2024 में उनकी 174वीं जयंती पड़ेगी, देखना है कि इस वर्ष भी साहित्यिक पत्रिकाएँ एवं संस्थाएँ क्या भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को याद करती है? इतना ही नहीं भारतेन्दु की जन्म एवं कर्म स्थली वाराणसी में वहाँ का आम आदमी भारतेन्दु जी तथा उनके भारतेन्दु भवन के बारे में कुछ जानता ही नहीं, यह दो वर्ष पूर्व वाराणसी यात्रा के दौरान मुझे महसूस हुआ। भारतेन्दु जी एवं उनके भवन के बारे में पूछने पर ऑटो ड्राईवर एवं अन्य आम व्यक्तियों ने अनभिज्ञता जाहिर की। बनारस के महान साहित्यकार आचार्य केशव प्रसाद मिश्र के भतीजे पं. श्यामनारायण मिश्र मेरे मित्र हैं उन्हें मोबाइल लगाया, तो पता चला कि वे इस समय दिल्ली में है फिर भी उन्होंने जानकारी दी कि भारतेन्दु भवन चौखंभा में ठठेरी बाजार की एक गली में स्थित है। जिस होटल में मैं रुका था, उसके मैनेजर से जब ठठेरी बाजार के बारे में पूछा, तो उसने प्रतिउत्तर में पूछा कि ''क्या आप सोने-चाँदी के व्यापारी है?'' तो मैं हतप्रभ रह गया। किसी तरह उसे समझाया कि हम साहित्य के सोना-चाँदी बल्कि अनमोल हीरा बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के भवन के दर्शन के अभिलाषी हैं, क्या उसे इस बाबत कुछ ज्ञात है? उसने कहा कि ठठेरी बाजार सोने-चाँदी का बाजार है; यह तो ज्ञात है लेकिन वहाँ भारतेन्दु भवन कहाँ है ज्ञात नहीं। भारतेन्दु भवन की तलाश में जब मैं निकला तो किसी ने मैदागिनी (शायद सही नाम मन्दाकिनी रहा होगा)

के भारतेन्दु विद्यालय भेजा तो किसी ने हरिश्चंद्र पार्क। अंततोगत्वा काफी भटकने के बाद ठठेरी बाजार की गली के अंतिम छोर पर स्थित भारतेन्दु भवन तक पहुँच ही गया।

दरअसल 5-6 वर्ष पूर्व मेरा एक आलेख ''स्थापित किए जाने चाहिए साहित्य के तीर्थ स्थल'' देशबंधु की सहयोगी पत्रिका ''अक्षर पर्व'' एवं कुछ अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ था, जिसमें मैंने यह मुद्दा उठाया था कि ऐसे प्रतिष्ठित साहित्यकार, जो अब इस दुनिया में नहीं है लेकिन जो अपने युग का साहित्य सृजन के क्षेत्र में प्रतिनिधित्व करते हैं, उनके जन्मस्थल एवं कर्मस्थल पर उनके स्मारक बनाए जाने चाहिए, उनके निवास के भवनों को संरक्षित किया जाना चाहिए तथा टूरिस्ट डिपार्टमेंट द्वारा ''लिटरेरी टूरिस्ट गाइड बुक'' प्रकाशित की जानी चाहिए, जिसमें देश एवं प्रदेश के इस तरह के सभी साहित्यकारों के स्मारकों का विस्तृत विवरण दर्ज हो। चित्रा मुद्‌गल जैसी प्रतिष्ठित साहित्यकार ने उस आलेख के लेखन हेतु मुझे फोन कर बधाई दी। लेकिन वाराणसी से डॉ. गिरीशचंद्र चौधरी जो कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के वंशज हैं ने पत्र लिख कर शिकायत की कि मैंने अपने उस आलेख में ''भारतेन्दु भवन'' का कोई जिक्र नहीं किया। दरअसल उस समय तक मैंने भारतेन्दु भवन नहीं देखा था। मैंने पत्र लिख कर उनसे वादा किया कि अब जब कभी वाराणसी जाना हुआ तो ''भारतेन्दु भवन'' के दर्शन करने अवश्य जाऊँगा। उसी वादे को निभाते हुए मैं इस बार जब वाराणसी गया तो ''भारतेन्दु भवन'' तक जा पहुँचा था। लेकिन भारतेन्दु भवन की दयनीय दशा देखकर हतप्रभ रह गया।

''भारतेन्दु भवन'' के प्रवेश द्वार की दीवाल से सट कर एक तरफ चाय-पान का स्टाल लगा हुआ था तो दूसरी तरफ कपड़ा प्रेस करने वाले की बड़ी टेबल दीवाल से सट कर लगी हुई थी। दोनों ही दुकानों के तिरपाल बेझिझक भारतेन्दु भवन की दीवारों में कील ठोक कर लगाए गये थे (फोटोग्राफ्स संलग्न है)। चाय-पान के स्टाल से ढकी दीवाल के एक कोने से किसी तरह झांकती हुई भारतेन्दु भवन की पट्टिका तथा भारतेन्दु जी का चित्र किसी कदर नजर आ रहा था। भवन की ऊपरी मंजिल सामने से धूलधूसरित तथा टीन के छप्पर से ढकी नजर आ रही थी। उस पर कोई एक टूटा हुआ बोर्ड लगा हुआ था जिसका ''प्रसाद एण्ड संस'' वाला हिस्सा दिखाई पड़ रहा था अगला हिस्सा टूट कर अलग हो गया था। भवन के पहले कमरे में ''भारतेन्दु जी'' की पालकी उपेक्षित हालत में रखी हुई थी। सीढ़ी चढ़कर ऊपर जाने पर देखा कि ऊपर के कमरों में ताला लगा हुआ है। भवन में डॉ. गिरीश चन्द्र चौधरी से तो मुलाकात हो न सकी लेकिन आस पास के दुकानदारों ने भी किसी खास मौके (मसलन भारतेन्दु जयंती, पुण्यतिथि आदि) पर कोई विशाल आयोजन किए जाने की कोई जानकारी नहीं दी। भवन की बगल की गली से निकल कर एक विदेशी युवक युवती का जोड़ा ''भारतेन्दु जी'' की गरिमा एवं भारतेन्दु भवन के बारे में पूर्णतः अनभिज्ञता के भाव लिए हुए निकल कर जा रहा था। संभवतः वह गली गंगा के किसी घाट तक जाती थी।

समृद्धशाली सेठ अमीचंद की पाँचवीं पीढ़ी में जन्मे बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जिस भवन में जन्म हुआ था, जिस भवन में प्रतिष्ठित साहित्यकार, रसिक, रईस भारतेन्दु जी की साहित्यिक एवं राग रंग की महफिलें जमा करती थी, आज वह भारतेन्दु जी का भवन उपेक्षित एवं

जीर्ण-शीर्ण हालत में है। देश एवं उत्तर प्रदेश में कई संस्थाएँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम से संचालित है। उनकी प्रेमिका ''मल्लिका'' को केन्द्र में रख कर, वर्तमान की एक महिला कहानीकार ने, बनारस में ही एक आयोजन में उपन्यास लिखने की घोषणा की थी। लेकिन ना ही किसी संस्था ने और ना ही वर्तमान के किसी साहित्यकार लेखक ने कभी भी यह आवाज बुलंद की कि बनारस में ठठेरी बाजार की उस गली जिसके अंतिम छोर पर ''भारतेन्दु भवन'' संरक्षित है का नाम ''भारतेन्दु पथ'' रखा जाए। भारतेन्दु भवन को साहित्यिक विरासत घोषित कर उसे संरक्षित एवं सुरक्षित किया जाए तथा भारतेन्दु भवन के सामने ''भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'' की एक प्रस्तर प्रतिमा स्थापित की जाए। भवन के विभिन्न कक्षों में भारतेन्दु के जीवन काल से संबंधित सामग्रियों को सुरक्षित ढंग से रख कर प्रदर्शित किया जाए तथा भवन की देख-देख के लिए एक केयर टेकर रखा जाए। ऐसा नहीं है कि उत्तर प्रदेश की सरकार साहित्यिक विरासतों को गौरवशाली ढंग से संरक्षित रखना नहीं जानती, उसने साहित्यिक विरासतों को सहेजने संभालने में दिल खोल कर खर्च किया है। इसका प्रमाण है कबीर प्राक्ट्य स्थल पर लगभग एक एकड़ भूमि पर बना हुआ ''कबीर स्मारक'' तथा सुरक्षित ढंग से प्रदर्शित लहरतारा तालाब जिसके किनारे शिशु कबीर मिले थे। साहित्यकारों की काफी माँग के बाद लमही में भी ''प्रेमचंद स्मारक'' संतोषजनक ढंग से स्थापित हो सका, साथ ही ''प्रेमचंद शोध संस्थान'' स्थापित हुआ। फिर ''भारतेन्दु भवन'' की ही यह उपेक्षित एवं दयनीय हालत क्यों? क्या वर्तमान साहित्य एवं साहित्यकारों ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं उनके साहित्यिक योगदान को भुला दिया है?

भारतेन्दु भवन की उपेक्षित हालत की तस्वीर

राजेन्द्र सिंह गहलोत, ''सुभद्रा कुटी'', बस स्टैण्ड के सामने, बुढार, जिला : शहडोल (म.प्र.) 484110
मो. : 9329562110

✧ ✧ ✧

पाँच मुट्ठी मिट्टी

डॉ. निरुपमा राय

उफ्! कितनी संवेदनाहीन भाव शून्य है यह आज की पीढ़ी..... अपने बुजुर्गों की कोमल भावनाओं का, सदियों से उनके मन में संचित अनुभूतियों का कोई मूल्य नहीं रहा इनके लिए.... बस एक अंधी दौड़ में सब भागे चले जा रहे हैं.... विनाश काले विपरीत बुद्धि.... सच कह गए हैं पुरखे। उम्र के अंतिम पड़ाव में क्या यही दिन देखना बाकी था? जब से होश संभाला है अमूल्य निधि की तरह उसे सहेजता आया हूँ..... अब क्या अपनी संवेदनाओं को मिट्टी में मिला दूँ? अरे! यह तो सरासर कुलदेवता का अपमान है, पुरखों का अपमान है..... फैसला करने वाले मेरे पोते और उनकी बहूएँ कौन होते हैं? जिस बात की कल्पना मात्र से सर्वांग सिहर उठता है उसे घटित हुए भला मेरी आँखें कैसे देखेंगी? घर में सब की बुद्धि भ्रष्ट हो गई हो, तो क्या स्वयं को ही संज्ञाशून्य मान लूँ।.... नहीं मेरे जीते जी ऐसा कुकृत्य असंभव है..... वे न जाने कब तक प्रलाप करते रहे।

''मेरे जीते जी यह नहीं हो सकता'' नब्बे वर्ष पार कर चुके गौरी शंकर जी का वृद्ध शरीर पीपल के सूखे पत्ते की तरह कांप उठा था। हाथ में पकड़ी छड़ी गिरते-गिरते बची थी झुर्रियों से भरा, अनुभवों से पगा चेहरा लाल होकर तमतमा उठा था।

''लेकिन दादा जी आप ठंडे दिमाग से एक बार सोच कर तो देखिए, समय परिस्थिति और बदलता परिवेश तो विचारधाराओं को बदल सकने में समर्थ होता है, ऐसे में किसी निर्जीव वस्तु के बारे में इतना चिंतन क्या ठीक है?''

''निर्जीव किसे कहा अखिल.....? तुझे क्या पता उससे जीवन्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है मेरे लिए।'' गौरी शंकर जी जोर से चीखे थे।

''दादा जी शांत हो जाइए पहले ही आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।''

पोते की बात बीच में ही काटते हुए वे जोर से बोले, ''हाँ! मैं बीमार हूँ..... उच्च रक्तचाप का रोगी..... जोड़ों के दर्द से बेहाल.. ... पर अभी मैं मरा नहीं हूँ समझे?''

''बाबूजी शायद अखिल ठीक ही कह रहा है, अब तक मौन होकर सुन रहे रामनिवास ने भी पिता को समझाना चाहा।

''दादाजी आज पहले जैसा वक्त नहीं रहा जमींदारी जा चुकी है, कमाई घटती जा रही है..... ऐसे में मॉडर्न जमाने के साथ ताल मिलाकर चलना ही उचित है। पुरानी बातें छोड़िए....।''

छोटे पोते निखिल ने कहा, तो वह बुरी तरह भड़क उठे, ''अब तू मुझे उचित-अनुचित का ज्ञान देगा? और थरथराकर पास ही रखी चौकी पर बैठ गए। ''बाबूजी 'रामनिवास ने उन्हें संभालना चाहा, तो वे फिर बिफर गए, ''अभी नहीं मारूँगा मैं.... कहे देता हूँ कान खोल कर सुन लो सब के सब जब तक मैं जीवित हूँ तुम लोगों को मनमानी नहीं करने दूँगा ।''

सब के चले जाने के बाद भी वह बहुत देर तक बड़बड़ाते रहे.... ''हे ईश्वर! क्या इसी दिन के लिए लंबी आयु दी है?''

इधर वह बुरी तरह व्यथित थे और उधर बैठक में मंत्रणा चल रही थी.....

''दादा जी किसी बात को इतना पकड़ कर क्यों बैठ जाते हैं पापा?'' अखिल ने क्रोध से पिता रामनिवास से पूछा।

''हाँ, पापा मैं भी समझ नहीं पा रही कि उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ना गलत, और कई पायदान नीचे फिसलना सही कब से हो गया?'' अखिल की पत्नी रीना भी चुप नहीं रह सकी। निखिल और उसकी पत्नी माया मौन स्वीकृति लक्षणम् के तहत चुप बैठे थे।

''बाबूजी की संवेदनाएँ उसके साथ जुड़ी हैं बचपन की मधुर यादें, आध्यात्मिक भावनाएँ बहुत कुछ.... इतना आसान नहीं है उन्हें इस कार्य के लिए मनाना।'' रामनिवास जी ने मायूस स्वर में कहा। एक ओर बेटों की बात आज के संदर्भ में सही लगती थी तो दूसरी ओर वृद्ध पिता की भावना का भी उन्हें ख्याल था। वह बेहद दुविधा में थे.... उधर अपने कमरे में बिस्तर पर लेटे गौरीशंकर जी मानो अंगारों पर लोट रहे थे।

उफ्! कितनी संवेदनाहीन भाव शून्य है यह आज की पीढ़ी..... अपने बुजुर्गों की कोमल भावनाओं का, सदियों से उनके मन में संचित अनुभूतियों का कोई मूल्य नहीं रहा इनके लिए.... बस एक अंधी दौड़ में सब भागे चले जा रहे हैं.... विनाश काले विपरीत बुद्धि.... सच कह गए हैं पुरखे। उम्र के अंतिम पड़ाव में क्या यही दिन देखना बाकी था? जब से होश संभाला है अमूल्य निधि की तरह उसे सहेजता आया हूँ..... अब क्या अपनी संवेदनाओं को मिट्टी में मिला दूँ? अरे! यह तो सरासर कुलदेवता का अपमान है, पुरखों का अपमान है..... फैसला करने वाले मेरे पोते और उनकी बहूएँ कौन होते हैं? जिस बात की कल्पना मात्र से सर्वांग सिहर उठता है उसे घटित हुए भला मेरी आँखें कैसे देखेंगी? घर में सब की बुद्धि भ्रष्ट हो गई हो, तो क्या स्वयं को ही संज्ञाशून्य मान लूँ।.... नहीं मेरे जीते जी ऐसा कुकृत्य असंभव है..... वे न जाने कब तक प्रलाप करते रहे।

रामनिवास जी की पत्नी विद्या रात्रि का भोजन लेकर ससुर के कमरे में आई और मेज पर थाली रखती हुई बोली, ''बाबू जी खाना खा लीजिए ठंडा हो जाएगा।''

''बहु! ईश्वर से प्रार्थना करो मेरी नश्वर देह भी अब ठंडी हो जाए।''

''ऐसा मत कहिए बाबूजी! हम बच्चों को समझा रहे हैं..... पर वे मानते ही नहीं, कहते हैं आज जमीन के भाव आसमान छू रहे हैं ऐसे में एक एकड़ जमीन अगर बेकार पड़ी हो.... तो वहाँ मिट्टी भरवा के फ्लैट बनाकर किराया लगाना चाहिए....''

बेकार पड़ी है? मैं भी तो बेकार पड़ा हूँ, कहीं से मुझे भी जहर लाकर दे दो सब... मैं हाथ जोड़ता हूँ। वह बेकल होकर रो पड़े थे। विद्या ससुर को हो रही मर्मान्तिक पीड़ा से अनजान नहीं थी, पर क्या कहती और क्या करती चक्की के दो पाटों के मध्य पिसते अनाज-सी विवश थी। कल तक जिस घर में हँसी गूँजा करती थी, वहाँ एक भयावह सन्नाटा पसर गया था। सुबह हुई तो नित्य की भांति गौरी शंकर जी घर से निकल कर धीमे कदमों से छड़ी टेकते हुए वही चल पड़े; जहाँ जाना पिछले पचासी वर्षों से उनकी आदत में रच बस गया था। वह धीरे-धीरे चल रहे थे और मस्तिष्क में विगत भी नन्हे-नन्हे कदम उठा रहा था.....

पंडित जनार्दन पाठक उनके दादाजी जिन्हें वो बाबा कहा करते थे, बहुत बड़े जमींदार थे सुख संपदा से उनकी झोली लबालब भरी थी। चार पुत्रियों के बाद जन्मे कुलदीपक वासुदेव उनकी दो आँखें थे, तो पोता गौरीशंकर मानो दूसरा प्राण। बाबा के बिना नन्हे गौरी का और नटखट गौरी के बिना बाबा का मन ही नहीं लगता था। बाबा का गौरवर्ण और भव्य आभामंडल, तेजस्वी व्यक्तित्व, चंदन मिश्रित सिंदूर का तिलक और भागलपुरी सिल्क का कुर्ता व ब्रेसलेट की धोती नन्हे गौरी के मन में अलौकिकता का संचार करते थे।

''बाबा जब मैं बड़ा हो जाऊँगा ना.... तब बिल्कुल आप जैसा बनूँगा....'' उसकी बाल सुलभ उत्सुकता छलक पड़ती।

''अच्छा? तू तो मुझसे भी बड़ा बनेगा गौरी बाबा का उल्लास मिश्रित विश्वास भी चरम पर होता।''

''मैं भी आप जैसे कपड़े पहन लूँगा.... तिलक भी लगाऊँगा.... लोगों पर रौब भी जमा लूँगा, रुपए गिन-गिन कर तिजोरी में रख लूँगा.... और सब पर खूब क्रोध करूँगा....।'' बाबा जोरदार ठहाका लगाते हुए कहते, ''हाँ एक काम और करना होगा तुम्हें याद रखना.... मेरे बाद मेरी जमीन्दारी के साथ-साथ तुम्हें नारायण पोखर की देखभाल भी करनी होगी।''

''बाबा वही पोखर जहाँ कमल उगते हैं? वहीं जहाँ हम रोज स्नान के लिए जाते हैं...?''

''हाँ वही गौरी, पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा और विष्णु का वास सरोवर में होता है।''

''पुराण क्या होते हैं?''

''हमारे धर्म ग्रंथ... इन ग्रंथों में हमारी संस्कृति और जीवन पद्धति का उल्लेख है, जिन्हें हमें जीवन में उतारना चाहिए तभी मानव जीवन सफल होता है।'' बाबा बताने लगते, तो गौरी के

समझ में कुछ नहीं आता पर हाँ, विशाल भव्य हवेली के पीछे एक एकड़ जमीन में फैला बड़ा-सा तालाब जरूर उसके आकर्षण का केंद्र बिंदु बनता गया था। वह प्रतिदिन बाबा के साथ तालाब के घाट पर स्नान करने के लिए जाता था....। तालाब के पश्चिमी तट को सीमेंट से चौड़ा बनवा कर तीन सीढियाँ तालाब में उतार दी गई थी। पानी में उतर कर नन्हा गौरी खूब अठखेलियाँ करता। बाबा ठठा कर हँसते, ''कैसा लग रहा है?''

''बहुत अच्छा बाबा'' वो खिलखिला उठता। जलाशय के प्रति गौरी की उत्सुकता समय के साथ ही उत्तरोत्तर वृद्धि पाने लगी थी। उसके पास प्रश्नों की श्रृंखला होती और बाबा के पास उत्तर की विराट थैली। जब से होश संभाला था, गौरी ने देखा था माँ बुआ दादी बहनें हर त्योहार या पूजा पाठ के दिन नारायण सरोवर के तट पर भी धूप, दीप, पुष्प और नैवेद्य चढ़ातीं। वह आँखें फाड़े सब कुछ देखता रहता मन में प्रश्न उमड़ने लगते, ''बाबा हम सरोवर की पूजा क्यों करते हैं?''

''हमारी विराट संस्कृति में जल को भी देवता माना गया है ना बेटा इसलिए... सोचो जरा अगर जल ही ना रहे दुनिया कितनी सूनी, वीरान, प्यासी और उजाड़ हो जाएगी...?''

''हाँ बाबा!'' वह मनोयोग से दोनों हाथ जोड़कर आँखें मूंदकर जल देवता को प्रणाम करता। उसके मन में सरोवर के प्रति एक सहज संवेदना का सृजन होता गया था। जैसे सरोवर जल का भंडार नहीं, प्रेम की कोई जीवन्त मूर्ति हो, जो मन में आस्था के फूल खिलाती हो। उम्र के साथ-साथ आस्था भी गहराती गई। आज कस्बे के बीचोंबीच स्थित भव्य विष्णु मंदिर की जब नींव पड़ी थी तब गौरी की उम्र मात्र दस वर्ष थी। उसकी आँखों ने मंदिर, सरोवर, बाबा और अपार जनसैलाब का अद्‌भुत तादात्म्य देखा था।

''बाबा! माँ कहती है, इस मंदिर में विष्णु भगवान की मूर्ति लगेगी।'' गौरी के प्रश्न पर बाबा ने अपनी रेशमी चादर से गर्मी से बेहाल पोते का चेहरा पोंछते हुए बहुत कुछ बताया था....

''बनारस से आ रही है भगवान चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति...।''

''अच्छा अच्छा कब लगेगी मंदिर में बाबा?''

''अरे अभी कहाँ मुन्ना! कल मूर्ति आएगी फिर सात दिनों तक उसे सरोवर में डुबा कर रखा जाएगा फिर आठवें दिन मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा होगी।''

''सात दिनों तक अपने सरोवर में... पर क्यों?'' गौरी की उत्सुकता सीमा का अतिक्रमण कर गई थी।

''यही नियम है गौरी, बाबा ने बताया था। बालमन कोरे कागज की तरह होता है, जो भी अंकित किया जाता है; वही प्रभावी हो जाता है, गौरी के मन में भी बचपन से ही सरोवर का एक प्रधान स्थान बनता गया था। पिता की असमय मृत्यु के बाद इसी तट पर उसने पिता की

आत्मा की मुक्ति हेतु श्राद्ध तर्पण किया था, तो मन में विश्वास की उत्ताल तरंगे थीं और इसी तट पर आह्लाद और उमंगों की फुहारें भी मन को भिगो गई थीं, जब अपनी जीवनसंगिनी को बाहुपाश में समेट कर उन्होंने अपने प्रेम को सरोवर की गहराई की तरह ही गहरा और पवित्र बताया था। तभी पांव में ठोकर लगी, आह! और गौरी शंकर जी वर्तमान की ओर लौटे। सामने ही सरोवर था। वे सरोवर के वीरान तट पर बैठ गए, जहाँ बचपन में चहल-पहल हुआ करती थी। जब तक स्वस्थ रहे परिवार की और संपत्ति की बागडोर उनके हाथ में रही... सब कुछ ठीक चलता रहा। पर भौतिकता और सुख-सुविधा के साधनों के समक्ष, मान्यताएँ और परंपराएँ माटी की भीत की तरह ढ़हती गई। आज भले ही इस सरोवर का जल सूखता जा रहा हो, ठीक से सफाई नहीं हो पा रही हो, जगह-जगह घास फूस उग आए हो.... सीढ़ियाँ टूट गयी हों, पर तब इसी सरोवर के किनारे बरगद पीपल और नीम के वृक्ष हुआ करते थे। सरोवर के जल पर महीन तन्तुओं से बनी चंदोवे-सी तनी चादर की तरह ठंडी शीतल छांव हुआ करती थी। प्रतिदिन वृक्षों के नीचे दीप जलाए जाते थे। बरगद का वृक्ष उस दिन विशिष्ट बन जाता, जब वट सावित्री का व्रत होता। माँ, दादी, बहनें दिनभर उपवास रखतीं, बट की पूजा करतीं, लाल डोर से बरगद के तने को लपेटतीं कितनी भव्य लगा करती थीं। पीपल और आम के वृक्ष भी कई नियमों और सांस्कृतिक परंपराओं के वाहक थे।.... आज तट वीरान... जनशून्य-सा पड़ा है, पेड़ काटकर बेच दिए गए हैं। हाँ, एक बूढ़ा नीम है पीली पत्तियों के रूप में आँसू बहाता। सब कुछ नष्ट भ्रष्ट हो गया। पहले वृक्ष अमूल्य निधि की तरह सहेजे जाते थे। स्मरण है उन्हें बचपन में एक बार उन्होंने बाबा से पूछा था ''बाबा पोखर के किनारे धुआँ क्यों है?''

''वहाँ सरसों की खल्ली का धुआँ किया जा रहा है गौरी।''

''क्यों बाबा?''

''धुआँ करते ही चूहे और अन्य जीव-जंतु भाग जाएँगे, किनारे पर बिल बनाकर मिट्टी तो कमजोर नहीं करेंगे ना.... जितना मजबूत किनारा... सरोवर उतना ही दीर्घायु होगा।'' बाबा ने बताया था। गौरी के पास तो प्रश्नों का अंबार होता था बाल सुलभ मोहक प्रश्नों का.... ''क्या पोखर की भी उम्र होती है बाबा?'' क्या जैसे लोग बूढ़े होकर मर जाते हैं एक दिन नारायण सरोवर भी मर जाएगा?''

बाबा गंभीर हो गए थे भीगी आँखों से पोते को देखते हुए बोल पड़े थे, ''आदमी तो बूढ़ा होकर मरेगा ही पर एक उपाय है जिससे नारायण पोखर बूढ़ा होने पर भी नहीं मरेगा।'' अच्छा वह क्या? ताली बजाता गौरी उछल पड़ा था।

''करना बस इतना है कि हम में से जो भी नहाने पोखर में जाए, बस पाँच मुट्ठी मिट्टी अंदर से निकाल कर बाहर किनारे पर रख दे.... अगर सब ऐसा करेंगे, तो पानी की सफाई भी होगी और सरोवर गहरा भी होता जाएगा। जिससे वर्षा के मौसम में और पानी बढ़ेगा और

नारायण पोखर कभी नहीं मरेगा।''

गौरी शंकर जी ने बाबा के एक-एक शब्द को तब ही मानो आत्मा की गहराइयों में संचित कर लिया था। नन्हीं मुट्ठियों से मिट्टी उठाना शुरू करने का सिलसिला आज बुढ़ापे में भी कायम है। आज भले ही घर में आधुनिक सुविधा संपन्न स्नानघर है फिर भी वह सरोवर स्नान ही करते थे। फिर नियम से पाँच मुट्ठी मिट्टी उठाकर टूटे-फूटे और जंगली घास से भरे घाट पर रखते थे। सरोवर की दुर्दशा दंश देती थी, पर मन में नियम निभाने का संतोष भी था।

''बाबूजी यहाँ बैठ कर क्या कर रहे हैं? चलिए नाश्ता ठंडा हो रहा है। ''बेटे ने पीछे से पुकारा तो उनकी तंद्रा भंग हुई।'' तू चल मैं स्नान करके आता हूँ। कहते हुए वह पोखर में उतर गए। पूरा दिन शांति से गुजर गया, वह अकेले कमरे में लेटे रहे। शाम को घर में कुछ गहमागहमी महसूस की, पर किसी से कुछ पूछा नहीं। सब की चुप्पी एक गूढ़ संदेश दे रही थी कि कहीं ना कहीं एक ज्वालामुखी दहक रहा है.... और फटेगा जरूर और ज्वालामुखी फटा था.... द्वेष और स्वार्थ का लावा, स्नेह.... प्रेम.... गरिमा.... अधिकार.... आदर और श्रद्धा को राख में बदल गया था।

''दादाजी एक एकड़ जमीन की कीमत करोड़ों में है आज.... और आप करोड़ों रुपयों को पानी से तौल रहे हैं?'' अखिल ने कहा आज पानी की भारी कमी के कारण विश्व प्यास से जूझ रहा है.... विश्व जल संरक्षण दिवस मना रहा है, ऐसे में लहराती जल राशि से भरा नारायण सरोवर तुम लोगों को महज जमीन की बर्बादी लग रहा है....? अरे मूर्खों! सरोवर के निर्माण से मानव जन्म सफल होता है। पुराणों की उक्ति केवल ज्ञान मात्र नहीं है विश्व कल्याण के लिए बनाई गई वैज्ञानिक परियोजना का एक अंग है, जो आज भी सत्य है। ''गौरी शंकर जी का सर्वांग क्रोध, हताशा और पीड़ा से थर्रा उठा था। सहसा कमरे में जैसे बम फटा.... अखिल चीखते हुए बोला, ''अब तो संपत्ति का बंटवारा ही एकमात्र उपाय है पापा.... हम दोनों भाइयों का हिस्सा देकर हमें अलग कर दीजिए.... अगर दादाजी नहीं चाहते हैं तो, यही सही..... हम मूर्ख नहीं जो परंपराओं की लाश ढोकर अपने कंधे झुका लें, हमें खुलकर जीवन जीना है। अपने बच्चों का भविष्य बेहतर बनाना है। कितने वर्ष जीवित रहेंगे दादाजी.... 2 वर्ष.... 5 वर्ष....? है ना, तो इतना मोह क्यों? क्या है उस तालाब में जहाँ वह मिट्टी भरने पर तैयार नहीं और खून के रिश्तों पर मिट्टी डालने पर आतुर हैं? बस, अब और नहीं.... कल मैंने वकील साहब को बुलाया है, फैसला हो जाएगा।''

रामनिवास और विद्या किंकर्तव्यविमूढ़ से बैठे थे और गौरी शंकर जी मानो संज्ञाशून्य से जड़वत् बैठे हुए थे.... काष्ठ प्रतिमा की तरह। उनकी भीगी आँखें कह रही थीं कि आज रुपया भावनाओं से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है। प्रैक्टिकल बनते जा रहे हैं लोग.... और धीरे-धीरे जड़ से उखड़ते जा रहे हैं। किसी दिन अंतिम सिरा भी टूट जाएगा.... और.....।

और पूरे घर में भयावह सन्नाटा व्याप्त हो गया था। रात हुई.... सुबह हुई.... वह प्रतिदिन की तरह कमरे से बाहर नहीं आए, तो विद्या ससुर के कमरे में आकर चुपचाप खड़ी हो गई। आहट पाकर उन्होंने पूछा, "कौन?"

"मैं हूँ बाबूजी..... आप ठीक तो है ना?"

विद्या ने चिंतातुर होकर पूछा, तो गौरी शंकर जी ने सपाट स्वर में कहा....

"बहु! मेरी बात ध्यान से सुनो, मेरे जीते जी इस घर में वकील नहीं आएगा.... बटवारा अदालत.... झगड़ा कुछ नहीं होगा। अरे! मैं क्या सब कुछ समेट कर ले जाऊँगा अंतिम यात्रा में....? सच ही तो कह रहा था मेरा पोता कि दो साल या ज्यादा ज्यादा पाँच साल.... सत्य कहता हूँ उम्र के इस पड़ाव पर मुझे किसी चीज से मोह नहीं है, बस रिश्तों के बंधन से मोह था, जो आज टूट गया.... पर.... एक प्रश्न पूछता हूँ, मेरे पोते क्या मेरी खुशी के लिए मेरी मृत्यु तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे?" ससुर की बात सुनकर विद्या सन्न रह गई थी। "जाओ बुला लो सबको, कह दो वह जो चाहे करें मुझे आपत्ति नहीं है।" वे मुँह घुमा कर लेट गए थे।

"दादा जी मुझे माफ कर दीजिए कुछ ज्यादा ही बोल गया। 'अखिल ने माफी माँग ली थी। "खूब तरक्की करो!" उन्होंने आशीष भी दे दिया था। घर में शांति थी पर गौरी शंकर जी के मन में मंथन चल रहा था। कुछ ही दिनों में मिट्टी भराई शुरू होने वाली थी। आखिरकार वो दिन आ ही गया, प्रतिदिन की भांति उस दिन भी गौरी शंकर जी प्रातः सरोवर स्नान के लिए गए.... अंतिम स्नान किया.... अंतिम पाँच मुठ्ठियाँ मिट्टी की तट पर रखीं.... पूर्वजों से क्षमा माँगी और अपने बिस्तर पर आकर चुपचाप लेट गए। कानों में कई शब्द पड़ रहे थे....

बहुत गहरा तालाब है.... सैंकड़ों ट्रेलर मिट्टी लगेगी.... बहुत खर्च आएगा.... कोलाहल कोलाहल.... कोलाहल.... ट्रेलर की आवाज और.... और.... एक बड़ा ट्रेलर मिट्टी सरोवर में... हे ईश्वर! उनके मन में ज्वार भाटा-सा उठा और सांस की डोर टूट गई। घर में कोहराम मच गया.... "बाबूजी नहीं रहे..." बचपन से ही जिस सरोवर से पाँच मुठ्ठी मिट्टी निकालते आए थे, उसी सरोवर में सैकड़ों ट्रेलर मिट्टी गिरते हुए उनकी आत्मा कैसे देख सकती थी। उनकी मृत्यु इस सत्य की साक्षी थी कि सरोवर की भी मौत होती है.... और जीवनदायी जल भी मरता है।.... जी.... व.... न.... द.... यी.... जल भी मरता है।

डॉ. निरुपमा राय, असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग, (पूर्णिया विश्वविद्यालय पूर्णिया), C/o श्री शंभूनाथ झा, उर्सुलाइन कान्वेंट रोड, रंगभूमि हाता, पूर्णियाँ-854301 (बिहार), मो. : 8002747533, 8340463730

✧ ✧ ✧

प्यार की धार

डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा 'मृदुल'

कॉफी हाउस में कॉफी सिप करते हुए राजेश की निगाह हॉल के दक्षिणी कोने में बैठे एक युवक और युवती पर पड़ी, जो डोसा खाते हुए हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। राजेश ने युवती को देखते ही पहचान लिया। वह रंजना थी, जिसने राजेश को इस प्रकार अपमानित किया था कि उस घटना की याद आ जाने पर राजेश आज भी ठीक से सो नहीं पाता है और घंटों अपने तथा रंजना के संबंधों के बारे में सोचता रहता है। रंजना से अपमानित होने के बाद उसने एच.सी. एल की नौकरी तो छोड़ ही दी थी, उसने एक अन्य मल्टी नेशनल कंपनी में कुछ कम वेतन पर नौकरी स्वीकार कर ली थी और नई नियुक्ति पर हैदराबाद चला आया था ताकि गुड़गाँव में रहते हुए कहीं सड़क पर भी उसका सामना रंजना से न हो जाए। मगर यह रंजना तो हैदराबाद भी पहुँच गई। अब वह क्या करे?

राजेश अपनी पत्नी मनोरमा के साथ सप्ताहांत मनाने के लिए सुबह आठ बजे ही ऊबर टैक्सी लेकर घर से निकल आया था। हैदराबाद में वह विगत तीन वर्षों से नौकरी कर रहा था, मगर हैदराबाद की प्रसिद्ध फिल्म सिटी उसने अभी तक नहीं देखी थी। पिछले माह जब वह अपनी नव-विवाहित पत्नी मनोरमा को लेकर हैदराबाद आया तो दो सप्ताह तो मनोरमा को अपनी गृहस्थी जमाने में ही लग गये थे। तीसरे सप्ताह राजेश के बहुत आग्रह पर मनोरमा भाग्य लक्ष्मी मंदिर और चारमीनार देखने गई थी और इस सप्ताह छुट्टी का आनंद लेने हेतु राजेश उसे बहुत आग्रहपूर्वक फिल्म सिटी दिखाने के लिए लाया था।

राजेश और मनोरमा पूरे दिन फिल्म सिटी में घूमते रहे। उन लोगों ने फिल्म की शूटिंग को बहुत निकट से देखा। दोपहर में लन्च भी उन्होंने फिल्म सिटी के अंदर ही खाया। फिल्म सिटी के अंदर खाने-पीने का सामान बहुत महंगा था, जिसे राजेश और मनोरमा ने डोसा और चाय की कीमत चुकाते हुए ही महसूस कर लिया था। इसीलिए मनोरमा ने राजेश को सलाह दी कि लन्च हम लोग फिल्म सिटी के बाहर चल कर ही लें, मगर राजेश ने उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसने मनोरमा के गाल पर हल्की-सी चपत लगाते हुए कहा- 'कौन यहाँ रोज-रोज आना हो पायेगा यार। आज यहाँ आये हैं तो पैसे का मोह छोड़ कर जितना मौज-मस्ती हो सके, कर लें।'

उन्हें घूमते हुए जब शाम हो गई और मनोरमा बहुत थक गई, तो उसने कहा- 'अब ज्यादा हीरो-हीरोइन को देखने के चक्कर में मत पड़ो, बहुत देर हो गई है। अब वापस घर चलो। घर चल कर मुझे खाना भी बनाना है।'

'क्यों भाई! होटल में क्या डिनर नहीं मिलता है जो घर चल कर खाना बनाओगी?' - राजेश ने लापरवाही का प्रदर्शन करते हुए कहा।

'नहीं नहीं..... बहुत हो गया। अब और पैसे फूंकने की जरूरत नहीं है। घर चल कर चाहे हम खिचड़ी ही बना पाएँ, मगर अब रात्रि भोज तो घर पर ही होगा।' - मनोरमा के स्वर में गृह स्वामिनी वाली खनक थी, जिसे महसूस करते हुए राजेश नाटकीय मुद्रा में अदब से सिर झुका कर बोला- 'जो हुक्म मालकिन।'

और उसकी इस नाटकीय मुद्रा पर मनोरमा खिलखिला कर हँस पड़ी।

घर लौटते समय रास्ते में एक कॉफी हाउस के सामने रुक कर जब राजेश ने कॉफी पीने का प्रस्ताव मनोरमा के समक्ष रखा तो मनोरमा थकावट के कारण उसके प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं कर सकी और मुस्कुरा कर काफी हाउस के गेट की ओर चल दी।

कॉफी हाउस में कॉफी सिप करते हुए राजेश की निगाह हाल के दक्षिणी कोने में बैठे एक युवक और युवती पर पड़ी जो डोसा खाते हुए हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। राजेश ने युवती को देखते ही पहचान लिया। वह रंजना थी, जिसने राजेश को इस प्रकार अपमानित किया था कि उस घटना की याद आ जाने पर राजेश आज भी ठीक से सो नहीं पाता है और घंटों अपने तथा रंजना के संबंधों के बारे में सोचता रहता है। रंजना से अपमानित होने के बाद उसने एच.सी.एल की नौकरी तो छोड़ ही दी थी, उसने एक अन्य मल्टी नेशनल कंपनी में कुछ कम वेतन पर नौकरी स्वीकार कर ली थी और नई नियुक्ति पर हैदराबाद चला आया था ताकि गुड़गाँव में रहते हुए कहीं सड़क पर भी उसका सामना रंजना से न हो जाए। मगर यह रंजना तो हैदराबाद भी पहुँच गई। अब वह क्या करे?

राजेश ने रंजना के साथ जिस युवक को एक ही टेबल पर डोसा खाते देखा था, उसे वह पहचान नहीं सका मगर उसे बार-बार ऐसा लग रहा था कि इस युवक को उसने कहीं देखा है।

राजेश इसी उधेड़ बुन में चुपचाप बैठा काफी पीता रहा और कनखियों से उस युवा जोड़े को देखता रहा। मनोरमा से उसकी यह खामोशी और चेहरे पर उलझन के चिह्न छिपे न रह सके। उसने राजेश से पूछा - 'यह अचानक चुप्पी क्यों साध ली? कोई परेशानी...या मुझसे कोई गलती हो गई?'

राजेश ने उसके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। जेब से मोबाइल निकाल कर उसने समय देखा और बोला - 'पौने सात बजे रहे हैं। अब हमें शीघ्र ही घर के लिए चल देना चाहिए।'

राजेश अपनी बात समाप्त कर जल्दी-जल्दी कॉफी पीने लगा। यह देख मनोरमा भी अपनी कॉफी शीघ्र समाप्त करने में लग गई और राजेश के साथ ही अपनी कॉफी समाप्त कर उठ

खड़ी हुई। रास्ते भर राजेश अपने अतीत में खोया रंजना के साथी को पहचानने का प्रयास करता रहा, मगर उसका सारा सोचना निष्फल ही रहा। घर पहुँचकर भी जब राजेश गंभीर ही बना रहा तो मनोरमा परेशान हो गई।

मनोरमा ने शीघ्र ही खिचड़ी बनाई और खीरे का रायता तैयार कर राजेश को खाना खाने के लिए बुलाया। भोजनोपरान्त जब वे दोनों सोने के लिए पलंग पर पहुँचे तो मनोरमा ने प्यार से राजेश का मस्तक सहलाते हुए कहा- 'तुमने काफी हाउस में ऐसा क्या देख लिया कि तुम्हारा मन अभी तक उद्विग्न है? मैं तुम्हारी अर्धांगिनी हूँ, आखिर तुम अपनी परेशानी मुझसे साझा नहीं करोगे, तो किससे साझा करोगे? और मैं ऐसे कैसे तुम्हारे सुख-दुख में सहभागिनी बन सकूँगी?'

मनोरमा ने यह बात इतने भोलेपन से कहीं कि सीधे राजेश के मर्म को छू गई। मनोरमा की ओर वह कुछ देर तक प्यार से देखता रहा, फिर बोला- 'मनोरमा! तुमसे विवाह के पूर्व मैं एक लड़की से बहुत प्यार करता था। उसका नाम रंजना है। मैंने बी.सी.ए. की पढ़ाई करते हुए हार्डवेयर का एक वर्ष का डिप्लोमा कोर्स भी किया था और उसी डिप्लोमा के आधार पर मुझे पाँच वर्ष पूर्व एच.सी.एल.की गुड़गाँव शाखा में नौकरी मिल गई थी। वहाँ पर यह लड़की रंजना प्रोग्रामर के पद पर कार्य कर रही थी। वह इंजीनियर थी और कंपनी में उसका पद मेरे पद की तुलना में बहुत बड़ा था।

संयोग से हम दोनों एक ही मोहल्ले में रहते थे। जब कार्यालय में हमारी जान-पहचान हुई और मैंने रंजना को पैदल ही कार्यालय से घर जाते देखा तो मैंने स्कूटर रोक कर उससे साथ चलने का आग्रह किया।

रंजना ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। रास्ते में उसने मुझे बताया कि उसके इकलौते बड़े भाई की रोड-एक्सीडेंट में मृत्यु हो गई थी। इसीलिए उसके माता-पिता ने उसे गाड़ी न चलाने की कसम दे दी थी और उसे स्कूटर चलाना नहीं सीखने दिया।

इसके बाद तो मैं रोज ही रंजना के साथ कार्यालय आने-जाने लगा। वह अक्सर मेरे लिए रात का खाना बना लेती थी। दिन में भी वह मेरे लिए घर से टिफिन लाने को कहती थी, मगर चूँकि कार्यालय की कैंटीन में मुझे लन्च मिल जाता था, अतः दोपहर में मैंने उससे अपने लिए खाना लाने को मना कर दिया था। हाँ, रात को मैं रोज ही उसके यहाँ खाना खाने लगा। उसके मना करने के बाद भी मैं कुछ न कुछ खाद्य सामग्री उसके घर ले जाता था और सब्जी छीलने, आटा गूंथने जैसे कार्य करके रसोई में उसकी मदद भी कर देता था।

उसका व्यवहार मेरे प्रति बहुत नम्र तथा उदार था। इसी कारण मैं उसके प्रति आकृष्ट होता चला गया। वह अक्सर बातचीत करते हुए मुझे यार कह कर संबोधित कर देती थी। इससे मैं यह समझने लगा था कि वह भी मुझे प्यार करती है। अतः मैंने एक दिन उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रख दिया।

मेरा प्रस्ताव सुन कर वह आग बबूला हो गई। उसने मुझे बुरी तरह से अपमानित करके अपने घर से निकाल दिया। अगले दिन उसने कार्यालय में अपनी सहेलियों से भी इस घटना का जिक्र करते हुए कहा कि इस दो टके के मैकेनिक को तो देखो, इंजीनियर के सिर पर बैठने चला है। हँस कर दो बातें क्या कर लीं, यह अपनी औकात ही भूल गया। मुझसे विवाह करने के सपने देखने लगा।

इस घटना के बाद मैं पूरे कार्यालय में हँसी का पात्र बन गया। मेरे सहकर्मी मेरे सामने ही मेरा मजाक उड़ाने लगे। इस तरह बार-बार अपमानित होने से बचने के लिए मैंने एच.सी.एल. की नौकरी छोड़ दी और वह शहर भी छोड़ दिया। हैदराबाद आकर मैंने इस कंपनी में नौकरी करते हुए एम.सी.ए. की पढ़ाई की और फिर मैं भी प्रोग्रामर के पद पर प्रोन्नति पा गया।

मैं रंजना और उसके द्वारा किए गए अपमान को कभी भूल नहीं सका। मगर इसके बाद तुमसे विवाह करके मैं प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा। मगर आज रंजना ने अपनी सूरत दिखा कर मुझे फिर अशान्त कर दिया है।

राजेश की कहानी सुनकर मनोरमा गंभीर स्वर में बोली - 'मेरे प्यारे पतिदेव! पहली बात तो यह है कि रंजना तुम्हें अपनी सूरत दिखाने के लिए हैदराबाद नहीं आई है। शायद उसे पता भी नहीं होगा कि आप भी हैदराबाद में मौजूद हैं। दूसरी बात यह कि रंजना आपको अपना दोस्त मानती थी और चाहती थी कि आवश्यकता पड़ने पर दोनों लोग यथा सामर्थ्य एक-दूसरे की सहायता करें। आपने उसके मित्रतापूर्ण व्यवहार को प्रेम समझ लिया, तो इसमें गलती आपकी है, रंजना की नहीं।'

मनोरमा की बात सुनकर राजेश भड़क गया और मनोरमा को क्रोध से डांटते हुए बोला - 'तुम मूर्खतापूर्ण बात कर रही हो। अगर वह मुझे अपना मित्र मानती थी तो मेरे द्वारा विवाह के प्रस्ताव पर उसे इस प्रकार सार्वजनिक रूप से अपमानित करना क्या उचित था?....वह संयम रखते हुए मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकती थी..... वह मुझे मेरी औकात बताने लगी और तुम उसे मेरी दोस्त बता रही हो। यदि दोस्त मानती तो क्या दो दोस्तों के बीच की व्यक्तिगत बातचीत को सार्वजनिक करती?'

'बस यही तो गलती उसने कर दी। रंजना की प्रतिक्रिया बहुत कड़ी हो गई थी, जो उसकी अपरिपक्वता को दर्शाती है। मगर भगवान जो करता है, अच्छा ही करता है। अगर उसकी प्रतिक्रिया इतनी कड़ी न होती तो तुम्हारे मन में उसके प्रति प्रेम के जो बीज अंकुरित हो गये थे, वे इतनी जल्दी समाप्त न होते और तुम आज मुझे अपनी बाहों में भर कर कह रहे होते -

यह विसंगति जिंदगी के द्वार सौ-सौ बार रोई।

बांह में है और कोई, चाह में है और कोई।।

मनोरमा की बात सुनकर राजेश ने हँसते हुए उसे अपनी बाहों में जकड़ कर कहा- 'तुम्हें तो वकील होना चाहिए था .....।' और फिर वे दोनों प्रेम के अथाह सागर में उतर गये।

अगले दिन जब राजेश सो कर उठा तो रंजना के प्रति उसकी खिन्नता बहुत कुछ कम हो गई थी, मगर यह प्रश्न उसे अब भी परेशान कर रहा था कि रंजना के साथ उस दिन जो युवक बैठा था, उसे पहले कहाँ देखा है? मगर उसकी स्मरण शक्ति उसका साथ नहीं दे रही थी।

राजेश कई दिनों तक उस युवक को पहचानने के लिए अपनी स्मरण शक्ति पर जोर देता रहा। एक दिन वह अपने कार्यालय से वापस लौट रहा था तो पेनड्राइव खरीदने के लिए वह कम्प्यूटर मार्केट की ओर चला गया। उसकी दृष्टि मुख्य सड़क पर स्थित एक दुकान पर गई। उस दुकान पर वही युवक मुख्य काउंटर पर बैठा था, जिसे राजेश ने कॉफी हाउस में रंजना के साथ देखा था। दुकान पर 'व्यंकटेश कम्प्यूटर शॉप' का बोर्ड लगा हुआ था। राजेश का स्कूटर उस दुकान से आगे बढ़ चुका था, मगर राजेश ने अपना स्कूटर वापस मोड़ा और धीरे-धीरे उस दुकान के सामने से पुनः गुजरा। वह युवक देखने से दुकान का मालिक लग रहा था। वह मस्तक पर लंबा टीका लगाये था तथा दाहिने हाथ में रक्षा सूत्र बंधा था। वह एक ग्राहक से हँस-हँस कर बातें कर रहा था तथा दो लड़के अन्य ग्राहकों को निपटाने में लगे थे।

अचानक राजेश को लखनऊ में गुजरा अपना अतीत याद आ गया, जब पढ़ाई समाप्त करने के बाद उसने कम्प्यूटर असेंबल करके बेचने का धंधा शुरू किया था। तब नाजा मार्केट (कम्प्यूटर का बाजार) में उसका आना-जाना लगभग रोज ही होता था। वहाँ लक्ष्मी कम्प्यूटर्स के मालिक सुशील कुमार से उसकी अच्छी दोस्ती हो गई थी।

उसे याद आया कि एक दिन शाम के समय वह सुशील कुमार की दुकान पर बैठा उससे बातें कर रहा था, तभी एक युवक सुशील की दुनिया पर आया। सुशील ने जब उससे पिछला कर्ज चुकाने के लिए कड़ाई से कहा तो वह भी अकड़ने लगा और स्थिति तू-तू-मैं-मैं पर आ गई।

उस युवक ने चाकू निकाल कर सुशील पर वार कर दिया, मगर सुशील बड़ी फुर्ती से पीछे हट गया था। अतः उस युवक का वार खाली गया। यह देख कर आस-पास मौजूद कुछ लोग उसे पकड़ने के लिए लपके, तो वह भाग गया। उसका चेहरा इस युवक से काफी मिलता-जुलता है। लेकिन वह तो मुसलमान था और चेहरे पर हल्की दाढ़ी रखता था।

यह सब सोचते हुए वह अपने घर लौटा। उसने घर पहुँच कर अपने मोबाइल पर सुशील कुमार का मोबाइल नंबर खोजा मगर उसे सुशील कुमार का मोबाइल नंबर नहीं मिला। उसने शायद सुशील कुमार का मोबाइल नंबर मिटा दिया था।

उसने काफी सोच-विचार कर अपने पुराने मित्र कैलाश को फोन किया, जो लखनऊ में उसके साथ कम्प्यूटर असेंबल करके बेचने का धंधा करता था। कैलाश ने राजेश के पूछने पर सुशील कुमार का मोबाइल नंबर बता दिया।

राजेश ने तुरंत ही सुशील कुमार को फोन किया और उसे अपनी याद दिलाते हुए कहा- 'सेठ जी, मैं राजेश बोल रहा हूँ। छः सात वर्ष पहले मैं कम्प्यूटर असेंबल करके बेचता था। लखनऊ में आपकी दुकान से ही सामान खरीदता था.....। याद आया?'

इतना कहते ही सुशील कुमार उसे पहचान गया। वह बोला- 'अरे वाह राजेश भाई, बहुत दिनों बाद तुम्हें मेरी याद आई। मैं तो अक्सर तुम्हारे विषय में कैलाश से पूछ-ताछ करता रहता था। उसने ही मुझे बताया था कि तुम किसी मल्टीनेशनल कंपनी में बहुत अच्छी पोजीशन पर लगे हो। आज तुमसे बात करके मुझे बहुत खुशी हो रही है।'

'अरे सेठ जी, पोजीशन-वोजीशन क्या....बस ईश्वर की कृपा से जिंदगी आराम से गुजर रही है।' - राजेश ने पुलकित स्वर में जबाब दिया।

'आजकल कहाँ हो भाई?'

'हैदराबाद में नौकरी कर रहा हूँ।'

'क्या लखनऊ आना-जाना नहीं होता? कभी लखनऊ आओ तो इधर भी दर्शन दो भाई।'

'जरूर... जरूर। अबकी जब भी लखनऊ आना हुआ तो आपसे जरूर भेंट करूँगा।... अच्छा, यह बताइए कि आपके जिस ग्राहक ने कर्ज चुकाने के लिए कहने पर चाकू से हमला कर दिया था, उसने कर्ज चुकाया?'

अरे, वह सादिक, वह तो भाई एक नंबर का धोखेबाज निकला। मेरी दुकान पर तो वह लौट कर कभी आया ही नहीं।..... उसने इन्डियन बैंक से दस लाख रुपए का ऋण लेकर कम्प्यूटर की दुकान खोली थी और तीन चार महीने बाद एक दिन सारा सामान रात के अंधेरे में समेट कर न जाने कहाँ भाग गया। आज तक बैंक वाले उसे खोजते घूम रहे हैं। पुलिस में भी रिपोर्ट दर्ज कराई गई है।

सुशील कुमार की बात सुनकर राजेश के ज्ञान चक्षु खुल गये। उसे विश्वास हो गया कि यह युवक सादिक ही है जो हिंदू बन कर हैदराबाद में छिपा हुआ है। राजेश ने जल्दी-जल्दी सुशील कुमार से वार्ता समाप्त की और फोन काट दिया।

कुछ देर वह एकांत में बैठा सोचता रहा कि शायद वह रंजना को छलपूर्वक अपने प्यार के भ्रमजाल में फंसा रहा है, अतः उसे यह बात रंजना को बता देना चाहिए। मगर फिर उसने खुद से कहा - 'अरे मूर्ख, वह तो बड़ी औकात वाली है। तुझे उसके बीच में पड़ने की क्या जरूरत है? इतना अपमान सहन कर भी तू उसकी चिंता क्यों कर रहा है?'

वह वैचारिक स्तर पर अजीब उलझन में फंसा था। उसने मनोरमा को बुलाकर कहा- 'उस दिन जो युवक रंजना के साथ कॉफी हाउस में बैठा था, उसका पता मैंने लगा लिया है। सादिक नाम का वह युवक बहुत बड़ा धोखेबाज और अपराधी प्रवृत्ति का है। वह लखनऊ के एक बैंक से दस लाख रुपए का ऋण लेकर भागा है और यहाँ आकर हिंदू वेष में रह रहा है।'

'मगर रंजना के साथ यह कैसे? कहीं यह रंजना के साथ भी तो छल नहीं कर रहा है?' - मनोरमा ने अपनी आँखें सिकोड़ कर धीरे से कहा।

'अरे भाड़ में जाए रंजना। उससे हमें क्या?'

'नहीं राजेश, यदि तुमने रंजना को सच्चे दिल से प्यार किया है तो तुम यह नहीं कह सकते कि तुम्हें उसकी कोई चिंता नहीं है। यह जो तुम कह रहे हो, यह उसके प्रति तुम्हारा गुस्सा बोल रहा है। प्यार का संबंध देह से नहीं, मन और आत्मा से होता है। प्यार की धार कभी भोंथरी नहीं होती है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि रंजना 'लव जिहाद' का शिकार हो रही है। यदि तुमने रंजना को सादिक की असलियत नहीं बताई और आगे चलकर वह अज्ञानता वश किसी हादसे का शिकार हो गई तो तुम अपने को कभी माफ नहीं कर सकोगे और जीवन भर पश्चाताप की आग में झुलसते रहोगे।'

'तो मैं क्या करूँ..... कहीं उसने फिर मुझे अपमानित किया तो?' - राजेश खीझ कर अपना माथा पीटते हुए बोला।

'तुम्हारे पास रंजना का मोबाइल नंबर है?'

'पता नहीं। देखना पड़ेगा।'

'तो देखो।' - मनोरमा ने आग्रहपूर्वक कहा।

'अरे! तुम बेमतलब में बात को आगे क्यों बढ़ा रही हो? रंजना को फोन करने पर उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी, तुम्हें इसका आभास नहीं है।'

'देखो राजेश, इन्सानियत भी कोई चीज होती है। यह एक युवती की जिंदगी का सवाल है। यदि उसकी जिंदगी के साथ कोई छल कर रहा है तो उसे सावधान कर देना हमारा फर्ज है' - मनोरमा ने दृढ़ता से कहा।

'देखो मनोरमा, मैं रंजना से बात नहीं करूँगा। तुम इसके लिए मुझे विवश मत करो।'

'ठीक है। तुम फोन नंबर मुझे दो। मैं उससे बात करती हूँ। अगर वह नाराज होगी तो मैं उससे क्षमा माँग लूँगी।'

मनोरमा की हठ के आगे राजेश को झुकना पड़ा। मनोरमा ने रंजना से मोबाइल पर संपर्क किया और बोली- 'रंजना जी, मैं मनोरमा बोल रही हूँ। मैं श्री राजेश कुमार की पत्नी हूँ, जो आपके साथ गुड़गाँव में एच.सी.एल. कंपनी में नौकरी करते थे।.... याद आया?'

'हाँ... हाँ, याद है। लेकिन मुझे क्यों फोन किया आपने?'

'हमने कुछ दिन पूर्व हैदराबाद फिल्म सिटी के पास एक कॉफी हाउस में आपको एक युवक के साथ देखा था.....वह व्यक्ति शायद व्यंकटेश कम्प्यूटर शॉप का मालिक है।'

'तो?'

'क्या आप उस युवक का नाम बता सकती हैं?'

'हाँ, बता सकती हूँ। मगर आप उनका नाम क्यों पूछ रही हैं?'

'आप बताइए तो प्लीज।'

'अनुराग नाम है उनका।'

'जी नहीं, वह सादिक है। वह आदमी इंडियन बैंक की लखनऊ शाखा से दस लाख रुपए का ऋण लेकर भागा है और यहाँ अपनी पहचान छिपा कर हिंदू युवक के वेष में रह रहा है।'

यह सुनकर रंजना के होश उड़ गए। उसे याद आया कि राजेश लखनऊ शहर का ही रहने वाला है। वह जरूर इसे जानता होगा। यह सोच कर रंजना बोली- 'कृपया राजेश से मेरी बात करा दीजिए।'

मनोरमा ने राजेश की ओर देखा, जो गुस्से से मनोरमा को घूर रहा था। अतः मनोरमा ने विवश होकर कहा - 'वह तो इस समय घर में नहीं हैं। मैं आपको वही बता रही हूँ, जो उन्होंने सादिक के विषय में मुझे बताया था।'

'आप लोग क्या हैदराबाद में ही रहते हैं?'
'हाँ।'
'कहाँ?....किस मोहल्ले में रह रहे हैं?'
'हम लोग लक्ष्मी नारायण सोसायटी में रहते हैं।'
'अरे, मैं भी उसी के पास पुरुषोत्तम एन्क्लेव में रहती हूँ। आपका फ्लैट नंबर क्या है?'
'डी-114'
'ओ.के. मैं शीघ्र ही आपसे मिलने आऊँगी। राजेश से मेरा नमस्ते बोल देना।'

रंजना ने जैसे ही फोन काटा, मनोरमा ने तुरंत राजेश को छेड़ते हुए कहा - 'नमस्ते बोला है आपको।... जल्दी ही आपसे मिलने भी आएँगी।...मगर कहीं फिर से चक्कर चलाने की कोशिश मत करना।'

राजेश ने भी मनोरमा को छेड़ने का अवसर नहीं छोड़ा और बहुत नाटकीय अंदाज में बोला - 'आप ने ही बताया था कि प्यार की धार कभी भोंथरी नहीं पड़ती.... अब दिल पर किसका जोर चलता है यार।'

इस पर मनोरमा हाथ नचा कर बोली - 'अच्छा, यह तो वही बात हुई कि होम किए हाथ जले।' और फिर पति-पत्नी दोनों ठहाका लगा कर हँस पड़े।

अगले ही दिन रात को साढ़े नौ बजे रंजना ऊबर टैक्सी से राजेश के घर पहुँची। वह बहुत घबराई हुई थी। राजेश उस समय खाना खाकर वास बेसिन में हाथ धो रहा था, तभी डोर बेल घनघना उठी। राजेश ने तौलिए में हाथ पोंछ कर दरवाजा खोला, तो रंजना ने राजेश से सामना होते ही उसके पैर पकड़ लिए और रोते हुए बोली - 'मुझे बचा लो राजेश। वह मुझे मार डालेगा।'

मनोरमा उस समय रसोई घर में बर्तन समेट रही थी। स्त्री का रुदन सुन कर वह शीघ्रता से रसोई के बाहर निकली। वह समझ गई कि आगन्तुक युवती रंजना ही है। उसने आगे बढ़कर प्यार से रंजना को गले लगा लिया और सांत्वना देते हुए कहा - 'धैर्य रखो बहन। डरने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। पहले आप साफ-साफ यह बताइए कि उस आदमी से आपका रिश्ता क्या है?'

'कुछ महीने पूर्व उसकी दुकान से मैंने एक लैपटॉप खरीदा था। उसने बिना कहे ही मुझे काफी डिस्काउंट दिया और व्यवहार भी बहुत अच्छा किया। उसने प्रयास करके मुझसे जान-पहचान बढ़ाई और अक्सर शाम को मुझसे मिलने लगा। वीकेंड पर वह कई बार आग्रह करके मुझे घुमाने भी ले गया। मुझे भी उसका रहन-सहन और व्यवहार अच्छा लगा। वह अक्सर अपने व्यापार के विषय में भी मुझे बताया करता था। फिर वह मुझसे प्यार का इजहार करने लगा। मुझे वह हर तरह से ठीक लगा, तो मैंने भी उसका प्रतिकार नहीं किया। वास्तव में, मैं भी उसके प्रति आकृष्ट होने लगी थी। मगर यह तो बहुत बड़ा धोखेबाज निकला।'

'क्या तुमने उससे पूछा कि तुम्हारा असली नाम सादिक है?' - मनोरमा ने पूछा।

'हाँ। मेरा प्रश्न सुनते ही वह क्रोध से पागल हो गया।.... असल में वह पिछले एक-डेढ़ महीने से मेरे पीछे पड़ा था कि मैं उसे भी अपने फ्लैट में रख लूँ। मगर मैं विवाह से पूर्व साथ रहने के लिए राजी नहीं हुई थी।... यह तो समय रहते आप लोगों ने मुझे उसके जाल में फँसने से बचा लिया.... अब वह कह रहा है कि तुम धोखेबाज हो, मुझसे शादी नहीं करना चाहती हो इसीलिए मुझे सादिक कह कर मुझसे पिंड छुड़ाना चाहती हो। मैं तुम्हें चीर डालूँगा और तुम्हारे टुकड़े करके चील-कौओं को खिला दूँगा...... मैंने डर कर फोन काट दिया। फिर मोबाइल स्विच ऑफ करके अपने घर में ताला लगाया और यहाँ भाग आई।.....मेरा इस शहर में इतना बड़ा हितैषी कोई नहीं है, जो मेरे लिए उससे दुश्मनी मोल ले। आपने चूँकि हमदर्दी दिखाते हुए सावधान किया तो कहीं कोई ठिकाना न पाकर आप लोगों की शरण में आ गई।'

राजेश चुपचाप बैठा उन दोनों का वार्तालाप सुनता रहा। फिर उसने अपने दो तीन सहकर्मी मित्रों से मोबाइल पर सलाह ली। उन सबकी सलाह पर राजेश ने रंजना को निकटवर्ती थाने में ले जाकर सादिक के खिलाफ एफ.आई.आर. लिखा दी। साथ ही, थाना प्रभारी को मौखिक रूप से यह भी बता दिया कि सादिक मूल रूप से लखनऊ का रहने वाला है तथा इन्डियन बैंक की लखनऊ शाखा से दस लाख रुपए का ऋण लेकर भागा हुआ है।

थाने में रिपोर्ट दर्ज करवा कर रंजना राजेश के साथ ही उसके घर आ गई और मनोरमा से हाथ जोड़कर बोली- 'मुझे एक-दो दिन अपने घर में रख लो बहन। मुझे अकेले अपने घर में रहने का साहस नहीं हो रहा है।'

मनोरमा ने उसे सांत्वना देते हुए कहा - 'तुम जब तक चाहो, हमारे साथ रह सकती हो। यह सुनकर रंजना ने भावातिरेक में मनोरमा को गले लगा लिया। रंजना ने राजेश के मोबाइल

फोन से अपने कार्यालय में सूचना दे दी कि उसकी जान संकट में है। अतः वह कुछ दिन कार्यालय नहीं आ सकेगी। स्थितियाँ सामान्य होते ही वह कार्यालय में उपस्थित होकर अवकाश हेतु आवेदन प्रस्तुत करेगी।

दो दिन बाद कार्यालय से लौटने पर राजेश ने रंजना को बताया कि सादिक की दुकान में ताला पड़ा है। यह देख कर मैं थाने चला गया। वहाँ पर उपस्थित हेड मुहर्रिर ने बताया कि हमारे पुलिस अधीक्षक महोदय ने लखनऊ के पुलिस अधीक्षक से बात की है और सादिक के खिलाफ इन्डियन बैंक द्वारा दर्ज कराई गई शिकायत के संबंध में जानकारी प्राप्त कर ली है। हम लोग उसे गिरफ्तार करने के लिए संभावित स्थानों पर लगातार दविश दे रहे हैं.... फिर कुछ देर रुक कर राजेश बोला - 'अब सादिक का पुलिस से बच पाना असम्भव है।'

यह सुनकर रंजना बहुत खुश हुई। वह पूर्व में किए गए अपने व्यवहार पर माफी माँगने लगी तो राजेश चुप ही रहा। यह देख मनोरमा बोल पड़ी - 'तुम्हें माफी माँगने की कोई जरूरत नहीं है बहन। उलटे मैं आपका आभार मानती हूँ कि आप यदि इनका प्रस्ताव स्वीकार कर लेती तो मुझे इतना प्यार करने वाला पति न मिल पाता।....इनको इस बात का दुख तो है कि आपने बहुत निर्ममतापूर्वक इन्हें अपमानित किया था, मगर इससे इनका भला ही हुआ। यदि आपके व्यवहार से इनके दिल पर इतनी गहरी ठेस न लगी होती तो न तो यह पुनः पढ़ाई शुरू करके एम.सी.ए. की डिग्री हासिल कर पाते और न नौकरी में इतनी प्रोन्नति इन्हें मिल पाती। इसीलिए कहावत है कि भगवान जो करता है, अच्छा ही करता है।'

मनोरमा की बात सुनकर रंजना की आँखें आश्चर्य से फैल गईं। वह राजेश के चेहरे पर दृष्टि जमा कर बोली - 'यार राजेश, तुम वाकई बहुत भाग्यशाली हो।... इतनी सुंदर, समझदार, संवेदनशील और सकारात्मक सोच वाली पत्नी मिलना बड़े नसीब की बात है।'

उसकी बात सुनकर राजेश गंभीर मुद्रा में बड़ी नाटकीयता से बोला - 'अब तुम कह रही हो तो मान लेते हैं।'

और फिर लक्ष्मी नारायण सोसायटी का फ्लैट नंबर डी-114 ठहाके से गूँज उठा।

डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा 'मृदुल', 569क/108/2, स्नेह नगर, आलमबाग, लखनऊ-226005
मो. : 9956846197

✧ ✧ ✧

बाल मनोविज्ञान के कुशल चितेरे - प्रेमचंद

पद्मा मिश्रा

कुत्ते की कहानी बाल/किशोर उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया, अपने कथ्य और शिल्प में अनूठा उपन्यास है, जिसे प्रेमचंद ने अपनी मृत्यु के कुछ समय पहले ही लिखा था। 14 जुलाई, 1936 को इसकी भूमिका में बच्चों से बात करते हुए उन्होंने लिखा- ''प्यारे बच्चों तुम जिस संसार में रहते हो वहाँ कुत्ते-बिल्ली ही नहीं पेड़-पत्ते और ईंट-पत्थर तक बोलते हैं, बिल्कुल उसी तरह जैसे तुम बोलते हो और तुम उन सब की बातें सुनते हो और बड़े ध्यान से कान लगाकर सुनते हो, इन बातों में तुम्हें कितना आनंद आता है। तुम्हारा संसार सजीवों का संसार है उसमें सभी एक जैसे जीव बसते हैं। उन सब लोगों में प्रेम है, भाईचारा है, दोस्ती है और जो सरलता साधु-संतों को बरसों के चिंतन और साधना से प्राप्त नहीं होती...... तुम देखोगे कि यह कुत्ता बाहर से कुत्ता होकर भी भीतर से तुम्हारे ही जैसा बालक है। वही प्रेम और सेवा तथा साहस और सच्चाई है, जो तुम्हें इतना प्रिय है।''

प्रेमचंद का बाल साहित्य बच्चों को भविष्य के एक संवेदनशील व्यक्ति के रुप में गढ़ता है, संवारता है।

बाल साहित्य का अर्थ उस साहित्य से है जो बालक और किशोरों के मानसिक स्तर के अनुरूप उनकी जरूरतों को ध्यान में रखकर उन्हें सामाजिक परिवेश के बारे में सजग करने के उद्देश्य से लिखा गया हो। श्रेष्ठ बाल साहित्य बच्चों का केवल मनोरंजन ही नहीं करता बल्कि वह उन्हें एक संवेदनशील मनुष्य के रूप में विकसित होने की चुनौती देता है। गलत एवं सही को समझने की सीख देता है। अतः आवश्यक है कि बाल साहित्य सैद्धांतिक विचारधारा से हटकर बाल मनोविज्ञान पर आधारित हो।

प्रेमचंद्र जी ने बच्चों के लिए जो भी कहानियाँ लिखीं, उसमें बच्चों के प्रति उनकी सोच स्नेह और भविष्य की फिक्र भी होती है। निश्चित ही उनकी वही सोच, उनकी बाल कहानियों में झलकती है। प्रेमचंद ने सन् 1930 में हंस पत्रिका का संपादकीय - 'बच्चों को स्वाधीन बनाओ' शीर्षक से लिखा था। इस लेख में उन्होंने बच्चों के प्रति अपने समकालीन विचार लिखे हैं। उन्होंने लिखा- 'बालक को प्रधानतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके। बालकों में इतना विवेक होना चाहिए कि वे हर एक काम के गुण-दोष को भीतर से देखें।'

उनका मानना था कि बच्चे आज्ञाकारी और अनुशासित तो हों परंतु माता

पिता के तानाशाह रवैए से मुक्त हों। उनका कहना था कि माता-पिता के रिमोट कंट्रोल से संचालित बच्चों का न विकास होता है और न वे जीवन में सफल हो पाते हैं। बच्चों में अंतर्निहित मौलिक सृजन एवं विचारों को सम्मान मिलना ही चाहिए।

यही कारण है कि प्रेमचन्द की कहानियाँ हमारे आसपास और दैनंदिन जीवन की हर छोटी-बड़ी घटनाओं से प्रेरित होती है, उनको पढ़ते समय यही प्रतीत होता है जैसे हमारे परिवेश से ही जुड़ी हुई है, विशेष रूप से बाल मनोविज्ञान से जुड़ी कहानियाँ, अपनी संवेदना, मार्मिकता, और भावनात्मक चित्रण में अपूर्व होती है और मन को उद्वेलित कर जाती है, इन्हीं कालजयी कहानियों में ईदगाह कहानी मुझे बेहद पसंद हैं, ईद पर जुड़ने वाले मेले का मनोहारी वर्णन हो या नन्हें हामिद का अंतर्द्वंद्व, मन को छू जाता है।

बाल मनोविज्ञान पर आधारित 'मुंशी प्रेमचंद' द्वारा लिखी गई ''ईदगाह'' कहानी एक अप्रतिम कहानी है, जो बाल मन को गहनता से दर्शाती है। इस कहानी को पढ़कर ज्ञात होता है कि परिस्थितियाँ उम्र नहीं देखती और एक छोटा-सा बालक भी विषम परिस्थितियों में समय से पहले परिपक्व हो जाता है, कहानी में हामिद, जो एक मात्र 8 वर्ष का बालक है, वह एक परिपक्व व्यक्ति की भांति किस तरह समझदारी का परिचय देता है और अपने दोस्तों के द्वारा तरह-तरह के खिलौने खरीदे जाने पर या चटपटी चीजें खाने का लालच देने पर विचलित तो होता है, पर मन पर संयम रखता है और अनेक बहाने बना कर मन को समझा लेता है, प्रेमचंद ने इसी बात को रोचकता से दर्शाया है, कहानी का मुख्य पात्र हामिद और उसकी दादी अमीना है, हामिद के माता-पिता इस संसार में नही हैं। वो अपनी बूढ़ी दादी के साथ रहता है, वे बहुत गरीब हैं, उसकी दादी छोटा-मोटा काम करके किसी तरह अपना और हामिद का भरण पोषण करती है, वो हामिद की सारी इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाती।

ईद का त्यौहार आता है, सब लोग मेले में घूमने जा रहे हैं, हामिद भी मेले में जाने के लिए उत्साहित है, हामिद की दादी किसी तरह थोड़े बहुत पैसे जोड़कर तीन आने हामिद को देती है, ताकि वो मेला घूम आये, बूढ़ी दादी को लगता है कि बेचारे हामिद के दोस्त मेले में मजे करेंगे तो वह तरसेगा, वह अपनी मेहनत के सारे पैसे हामिद को दे देती है, हामिद अन्य बच्चों के साथ मेला जाता है, यहाँ सब बच्चे अपने माँ-बाप द्वारा दिए पैसों से खिलौने, मिठाई आदि खरीदते हैं, लेकिन वह अपने मन पर नियंत्रण कर ये सब नहीं खरीदता। वह मेले में एक जरूरी चीज लेता है, वह जरूरी चीज है रसोई घर में काम आने वाला चिमटा!! हामिद देखता था कि कैसे उसकी दादी के हाथ रोटी बनाते समय जल जाते थे, क्योंकि उसके पास चिमटा नहीं था, हामिद को अपनी बूढ़ी दादी का यह कष्ट बराबर याद रहा और उसने अपनी इच्छाओं को तिलांजलि देते हुए अपनी बूढ़ी दादी के लिए एक उपयोगी वस्तु खरीदी, वह खिलौने के आगे हारा नहीं, खाने-पीने की चीजें देखकर ललचाया नहीं, बस केवल एक चीज याद रही, वह था कि दादी की उँगलियाँ जल जाती है, उसकी पीड़ा और दर्द को उस छोटे से बच्चे ने महसूस किया और चिमटा खरीद लिया और उसे बंदूक की तरह कंधे पर उठाकर बड़ी शान के साथ चल रहा था, उसकी कल्पना में वह चिमटा कभी बंदूक बन जाता कभी सिपाही जी का डंडा, तो कभी संगीत का साथी, फिर दादी के लिए चिमटा तो था ही, बस फिर क्या था, पांसा ही पलट गया, अब सारे दोस्तों को अपने खिलौने

हामिद के चिमटे के आगे फीके लगने लगे, सब उसे छू-छूकर देखना चाहते थे, कहानी का अंत बेहद मार्मिक और भावविभोर कर देता है, जब बूढ़ी अमीना पहले तो चिमटा देखकर नाराज होती है, फिर जार-जार रोती हुई हामिद को गले लगा लेती है, यहाँ बूढ़ी दादी हामिद बन गई थी और नन्हा हामिद अमीना, जो उसे चुप करा रहा था, यह है एक संवेदनशील कथाकार की जादूगरी, कलम के सिपाही की अभिव्यक्ति जो पाठक के मन के भीतर प्रवेश कर सकती हैं।

यह कहानी हामिद की मात्र 8 वर्ष की आयु में परिपक्वता को दर्शाती है, उसके अंदर की संवेदनशीलता को दर्शाती है। हामिद के रूप में एक बच्चे के मन को भली-भांति पढ़ने और बाल मनोविज्ञान की संवेदनशीलता को सार्थक रूप से प्रस्तुत करने में लेखक प्रेमचंद पूरी तरह सफल रहे। हिंदी बाल साहित्य लेखन की ऐतिहासिक परंपरा में 'पंचतंत्र' की कथाएँ बाल साहित्य का एक सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। इसके साथ 'हितोपदेश', 'अमर कथाएँ', एवं 'अकबर-बीरबल' के किस्से बच्चों के साहित्य में सम्मिलित है। प्रेमचंद जी की कहानियाँ इसी परंपरा की एक कड़ी हैं।

प्रेमचंद जी की कहानियाँ बच्चों के स्वभाव, खेल, शरारतों, भावनाओ से जुड़े बाल मनोविज्ञान को केंद्र में रखकर ही रची गई हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के अंतर्गत पश्चिमी संस्कृति के विरोध और स्वदेशी की भावना से प्रेरित रही हैं और हिंदी के साथ-साथ विभिन्न भाषाओं की रचनात्मक अनुभूतियों के साथ बच्चों को भी राष्ट्रीय भावना, स्वदेशी चेतना व सामाजिक नैतिक मूल्यों के विकास के लिए निरंतर प्रयासरत रहते थे। उनका बाल सृजन मानवीय संवेदनाओं के साथ-साथ सामाजिक आचार-विचार, न्याय - अन्याय, उचित-अनुचित का संदेश भी देता है।

बच्चों के साहित्य में ज्यादा महत्वपूर्ण यह होता है कि छोटी-सी-छोटी बात को सहज व आश्चर्यजनक बनाकर प्रस्तुत किया जाए ताकि इसी सहजता व आश्चर्य के सहारे ही हम उन्हें समाज, राष्ट्र, विचारधारा से जोड़ सकें। प्रेमचंद द्वारा रचित आरंभिक कृतियों में महात्मा शेखशादी तथा रामचर्चा की गणना की जाती है। रामचर्चा नामक पुस्तक पर उन्होंने भगवान श्री राम की कथा को सीधे-साधे शब्दों पर लिखकर उनके जीवन और आदर्श से बालकों का परिचय करवाया है। 'जंगल की कहानियाँ' संकलन में बच्चों के लिए 12 कहानियाँ हैं। जिसमें शेर और लड़का, 'पागल हाथी', 'मिट्ठू', 'पालतू भालू', 'मगर का शिकार' तथा 'जुड़वा भाई' आदि कहानियाँ प्रमुख है। 'दुर्गादास' नामक ऐतिहासिक उपन्यास वीर दुर्गादास राठौर के जीवन की संघर्षपूर्ण वीरगाथा है, जो अपनी मातृभूमि के लिए अपने बलिदान हेतु कृतसंकल्प था। वीर दुर्गादास के जीवन और आदर्शों के वर्णन द्वारा बालकों में देशप्रेम की भावना जागृत करना लेखक का उद्देश्य रहा। इसकी भूमिका में उन्होंने माना है कि - ''बालकों के लिए राष्ट्र के सपूतों के चरित्र से बढ़कर उपयोगी साहित्य कोई दूसरा नहीं है। इनसे उनका चरित्र ही बलवान नहीं होता है, उनमें राष्ट्रप्रेम और साहस का संचार भी होता है।''

कलम, तलवार और त्याग दो भागों में प्रकाशित इस रचना में लेखक ने राणा प्रताप, रणजीत सिंह, अकबर, विवेकानंद, गोपाल कृष्ण गोखले, सर सैयद अहमद खाँ आदि देश के विभिन्न महापुरुषों के प्रेरणादायक और उद्बोधक शब्दचित्र अंकित किए हैं। इन सभी

ऐतिहासिक और राजनीतिक नेताओं के चरित्रों के माध्यम से लेखक बच्चों में वीर, उत्साह और देशप्रेम की भावनाओं के साथ सच्ची लगन और अदम्य साहस का बीजवपन भी करना चाहता है जो केवल तत्कालीन समय ही नहीं वरन् आज के समय में भी आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त ईदगाह, बड़े भाई साहब, गुल्ली डंडा, दो बैलों की कथा, परीक्षा, कजाकी, मंत्र आदि कहानियाँ भी सम्मिलित की जाती है। इस रचना संसार में गाँव कस्बा, शहर, जाति-पाति, हर वर्ग व मानसिक स्तर के पात्र हैं, जो पाठक को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती है। वस्तुतः प्रेमचंद कथा कहते नहीं रचते हैं। प्रेमचंद की बाल कहानियाँ बाल पाठकों को अपनी-अपनी पाठ्य पुस्तकों में पढ़ाई जाती है, जिससे उनमें साहित्य की पठन रुचि की अभिवृद्धि हुई। लेखक की यह सभी कहानियाँ हमारे आस-पास के बाह्य जगत के साथ हमारे अंतर्जगत की भी अद्‌भुत सैर करवाती है। इनमें पशु-पक्षी, स्थावर-जंगम भी मनुष्य रूप में व्यवहार और बातें करते, अपना निर्णय व्यक्त करते दिखाए गए हैं। चाहे वह मिट्‌ठू कहानी का बंदर हो या पागल हाथी का मोती हाथी अथवा दो बैलों की कथा के हीरा-मोती जैसे यादगार चरित्र आज भी हमारे बाल पाठकों की पहली पसंद हैं।

कुत्ते की कहानी बाल/किशोर उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया, अपने कथ्य और शिल्प में अनूठा उपन्यास है, जिसे प्रेमचंद ने अपनी मृत्यु के कुछ समय पहले ही लिखा था। 14 जुलाई, 1936 को इसकी भूमिका में बच्चों से बात करते हुए उन्होंने लिखा- ''प्यारे बच्चों तुम जिस संसार में रहते हो, वहाँ कुत्ते-बिल्ली ही नहीं पेड़-पत्ते और ईंट-पत्थर तक बोलते हैं, बिल्कुल उसी तरह जैसे तुम बोलते हो और तुम उन सब की बातें सुनते हो और बड़े ध्यान से कान लगाकर सुनते हो, इन बातों में तुम्हें कितना आनंद आता है। तुम्हारा संसार सजीवों का संसार है उसमें सभी एक जैसे जीव बसते हैं। उन सब लोगों में प्रेम है, भाईचारा है, दोस्ती है और जो सरलता साधु-संतों को बरसों के चिंतन और साधना से प्राप्त नहीं होती...... तुम देखोगे कि यह कुत्ता बाहर से कुत्ता होकर भी भीतर से तुम्हारे ही जैसा बालक है। वही प्रेम और सेवा तथा साहस और सच्चाई है, जो तुम्हें इतना प्रिय है।''

मानव समाज की विसंगतियों पर सटीक व्यंग्य करता यह बाल उपन्यास केवल मनोरंजन कथा ही नहीं है बल्कि बच्चों के हृदय में जीव-जंतुओं के प्रति करुणा, सम्मान का भाव जागृत करना भी इसका उद्देश्य है। जीव-जंतुओं का यह जगत लेखक के ग्रामीण परिवेश का ही अटूट हिस्सा है। यह सच है कि पशु-पक्षियों का संसार बच्चों का प्रिय संसार है। इसलिए ऐसे पात्रों से बच्चे ज्यादा लगाव महसूस करते हैं। इस उपन्यास का नायक 'कल्लू' कुत्ता बच्चों में सहृदयता और संवेदनशीलता का बीजवपन करने में पूरी तरह समर्थ है। यहाँ लेखक समाज की विद्रूपताओं और भ्रष्ट व्यवस्था की पोल खोलता बताता है- ''चौधरी बोले- अजी पुलिस का ढकोसला बहुत बुरा होता है, अभी आकर कुछ न कुछ चूसते ही हैं। मैंने तो इतनी उम्र में सैकड़ों बार इत्तिलाएँ की, मगर चोरी गई हुई चीज कभी वापस न मिली।'' यह संवाद बताता है कि देश की पुलिस का चरित्र इतने बरस बीतने पर भी नहीं बदला।

तुलसीदास तो बहुत पहले कह गए थे 'पेट की अग्नि' सबसे बड़ी है। प्रेमचंद यहाँ इसे कुछ और स्पष्ट करते हुए कहते हैं- ''पेट भी क्या चीज है, इसके लिए लोग अपने पराए को भूल जाते हैं, नहीं तो अपनी सगी माता और अपना सगा भाई क्यों दुश्मन हो जाते।'' पेट की इसी

व्यवस्था के चलते लेखक बच्चों के खेलने में नैतिक मूल्यों, मानवीयता व संवेदनशीलता का स्त्रोत पर प्रवाहित करना चाहता है। श्रेष्ठ बाल साहित्य के बारे में धारणा यह है कि वह बच्चों को गुदगुदाए, उनका मनोरंजन करे। साथ ही उनकी समस्याओं और जिज्ञासाओं का समाधान उपदेश या यथार्थ से हटकर दें। दो अलग-अलग तरह के बाल मनोविज्ञान प्रस्तुत करती 'बड़े भाईसाहब' कहानी शिक्षण व्यवस्था पर व्यंग्य का तोता रटंत प्रणाली और परीक्षा पद्धति पर प्रश्न चिह्न अंकित करती है। कहानी को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने छोटे भाई को चुना। यहाँ बड़ा भाई परंपरावादी और सिद्धांतवादी है जबकि छोटा भाई समय व परिस्थिति के हिसाब से पढ़ता है और पास होता जाता है। अंत में बड़े भाई साहब लकीर का फकीर, किताबी कीड़ा और खोखली परंपरा की दीवारों को लांघकर छोटे भाई की कलाई थामे अपनी उमंगो और आकांक्षाओं के आसमान पर दौड़ने की ठानते हैं। यहाँ बड़े भाई की डांट व उपदेश तथा छोटे भाई की शरारतें और उसका भय पूरी तरह से बाल मनोविज्ञान को उजागर करता है- ''मैं फटकार और घुड़कियाँ खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता था।''

इसी प्रकार दो बैलों की कथा में मोती बदला लेना चाहता है, उस मालिक से जो उसे झूरी के यहाँ से जबरदस्ती ले आया है, लेकिन उसके मन में तुरंत ख्याल आता है, इससे तो वह बालिका अनाथ हो जाएगी, जो उसे रोटी खिलाती है।

यहाँ हीरा-मोती बैलों के जरिए लेखक अपने मालिक के प्रति वफादारी, आजादी की प्रतिध्वनि, मानवीयता और करुणा को सामने लाते हैं। इस कहानी में जीवों में निकृष्ट, मूर्ख, सीधा कहे जाने वाले गधे की प्रवृत्ति और मनोदशा का वर्णन करते हुए लेखक अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों के सद्‌गुणों के प्रति आदर भाव को विकसित करना चाहता है- ''उसके चेहरे पर विषाद अस्थाई रूप से छाया रहता है। सुख-दुख, हानि-लाभ किसी भी दशा में उसे बदलते नहीं दिखता। ऋषि-मुनियों के जितने गुण है, वे सभी उसमें पराकाष्ठा को पहुँच गए हैं पर आदमी उसे बेवकूफ कहता है। सद्‌गुणों का इतना अनादर।''

प्रेमचंद बाल कहानियों की रचना करते समय सदा सजग रहते हैं कि बाल साहित्य सैद्धांतिक विचार भूमि से हटकर सरल सहज बाल मनोविज्ञान पर आधारित हो। स्वयं उनके शब्दों में- ''तत्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले हो जाए, मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए मन के सुंदर भाव को जागृत करने के लिए कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं।''

पद्मा मिश्रा, जमशेदपुर, एल.आई.जी.-114, रो हाउस, आर. आई. टी. थाना के सामने, आदित्यपुर-2
जमशेदपुर-13, झारखंड, ई-मेल : padmasahyog@gmail.com

✧ ✧ ✧

हिंदी साहित्य लेखन में आधुनिक प्रवृत्तियाँ

डॉ. कविता विकास

युग के सबसे संक्रमणकारी दौर से हम गुजर रहे हैं, मूल्यों को एक कृत स्वरूप दे दिया गया है। पुराने लोग नयी मान्यताओं को नहीं मान रहे और नयी पीढ़ी पुरानी परम्पराओं को तूल नहीं देती। साहित्य में आधुनिकता के आगमन के साथ यह सम्भव हुआ कि साहित्य की कसौटियाँ सहृदय की अभिरुचियों से मुक्त होकर व्यापक समाज के अनुसार तैयार होने लगीं और उन पर बहसें आरम्भ हो गयीं। आज मनुष्य स्वयं पर कम से कम बंधन चाहता है। इक्कीसवीं शताब्दी को कुछ मायनों में हिंदी साहित्य का उन्नत युग माना जा सकता है, पर हमें यह भी मानना होगा कि आज का हिंदी साहित्य वर्तमान राजनैतिक गतिविधियों से पूरी तरह प्रभावित है। मध्य काल में यूरोपीय जातियाँ और फिर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ा। मध्य काल में यूरोपीय जातियाँ और फिर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ा। आधुनिक काल में अंग्रेजों ने सुशासन के लिए धर्म प्रचार को अपनाया और दस्तावेजों के साथ-साथ ईसाई धर्म-ग्रंथों को छपवाना शुरू किया, जिसने भारतीय भाषाओं के साथ-साथ साहित्य के विकास में भी योगदान दिया।

साहित्य किसी विशेष व्यक्ति, प्रदेश या भाषा से सम्बद्ध नहीं है। यह एक स्वतंत्र प्रक्रिया है, जिसने सुगमता से जीना सीख लिया, वह कहीं न कहीं साहित्य की पृष्ठभूमि से जुड़ा होता है। युग के हरेक कालखंड का प्रतिनिधित्व करने वाले मनीषियों ने अपने दौर का इतिहास लिख कर आने वाली पीढ़ी को न केवल एक समृद्ध समाज का उपहार दिया है बल्कि उनके ज्ञान को भी समृद्ध किया है। बाल कृष्ण भट्ट जी ने कहा है, 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है।' साहित्यिक आधार ही जीवन है। साहित्यकार समाज और अपने युग को साथ लिए बिना रचना कर ही नहीं सकता क्योंकि सच्चे साहित्यकार की दृष्टि में साहित्य ही अपने समाज की अस्मिता की पहचान होता है। यह मानव जीवन को परिवर्तन के साथ आपस में जोड़ता है। सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता। यह मन की अभिरुचियों से निकल कर समाज की अभिरुचियों से जुड़ता है। जब हम आधुनिक साहित्य की बात करते हैं तो प्राचीन से एक तुलनात्मक अध्ययन स्वाभाविक हो जाता है।

तुलसीदास के दो प्रिय पद थे, मंगल और विवेक। 'मंगल करनि कलिमल हरनि।' 'बिनु सत्संग विवेक न होई।' यह मंगल ही विवेक की कसौटी है, जो बात जन साधारण के हित में नहीं है, वह त्याज्य है। जिस कवि का मानसिक क्षितिज जितना विस्तीर्ण होता

है, जीवन का जितना बड़ा अनुभव प्रसंग उसकी संवेदना का अंग होता है, उसका साहित्यिक महत्त्व भी उतना ही अधिक होता है। उसकी कला निर्दोष न हो, तो भी कलात्मक दृष्टि से केवल कला के लिए लिखी जाने वाली रचना बहुत जल्द ही अपना महत्त्व खो देती है। साहित्य लेखन में कला और जीवन के संबंध और अनुपात को समझना विवेक है। यह विवेक कैसे हमसे काम करवाता है, एक लघुकथा से देखिए।

एक जंगल में कुछ उपद्रवी जानवरों ने आग लगा दी। विवेकशील जानवरों के समूह ने आग बुझाने के यथासम्भव प्रयास किए। सभी पास के पोखर से पानी ला-लाकर आग बुझाने लगे। एक चिड़िया भी स्थिति की भयावहता को देख कर अपने चोंच में पानी भर कर लाती और आग में दो बूँद पानी गिरा कर दुबारा पानी लाने चली जाती। उसकी इस गतिविधि को एक शैतान लोमड़ी बड़ी देर से देख रहा था। उससे नहीं रहा गया। उसने कहा, 'तुम्हारी चोंच में पानी ही कितना आता है जो तुम आग बुझाने के प्रयत्न में देर से व्यर्थ लगी हुई हो, चुपचाप मेरी तरह बैठ क्यों नहीं जाती हो?' चिड़िया ने कहा, 'मुझे पता है मेरे दो बूँद पानी से आग नहीं बुझ सकती, लेकिन आज का इतिहास जब भी लिखा जाएगा तो मेरा नाम आग बुझाने वाले में लिया जाएगा, न कि आग लगाने वालों में।'

यह संसार मनीषियों से मुक्त कभी नहीं हुआ है। साहित्य सदा आग बुझाने का प्रयास करने वालों से समृद्ध रहा है और आग लगाने वालों को सही राह दिखाने में भी सफल रहा है।

युग के सबसे संक्रमणकारी दौर से हम गुजर रहे हैं, मूल्यों को एक कृत स्वरूप दे दिया गया है। पुराने लोग नयी मान्यताओं को नहीं मान रहे और नयी पीढ़ी पुरानी परम्पराओं को तूल नहीं देती। साहित्य में आधुनिकता के आगमन के साथ यह सम्भव हुआ कि साहित्य की कसौटियाँ सहृदय की अभिरुचियों से मुक्त होकर व्यापक समाज के अनुसार तैयार होने लगीं और उन पर बहसें आरम्भ हो गयीं। आज मनुष्य स्वयं पर कम से कम बंधन चाहता है। इक्कीसवीं शताब्दी को कुछ मायनों में हिंदी साहित्य का उन्नत युग माना जा सकता है, पर हमें यह भी मानना होगा कि आज का हिंदी साहित्य वर्तमान राजनैतिक गतिविधियों से पूरी तरह प्रभावित है। मध्य काल में यूरोपीय जातियाँ और फिर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ा। आधुनिक काल में अंग्रेजों ने सुशासन के लिए धर्म प्रचार को अपनाया और दस्तावेजों के साथ-साथ ईसाई धर्म-ग्रंथों को छपवाना शुरू किया, जिसने भारतीय भाषाओं के साथ-साथ साहित्य के विकास में भी योगदान दिया। भारतीय पूँजीवादी समाज में हमेशा हिंदी साहित्य को अनुत्पादक की दृष्टि से देखने की परम्परा रही है।

अधिकतर लोगों का कहना है कि कुछ काम नहीं होने पर लोग साहित्य की ओर मुड़ जाते हैं। सरकारें भी यही सोचती हैं। पूँजीवादी समाज हिंदी साहित्य की जितनी भी उपेक्षा कर ले, हमारे प्रगतिशील साहित्यकार कभी भी साहित्य रचना में पीछे नहीं हटेंगे क्योंकि जिस दिन साहित्यिक आलोचक किसी भी समाज या सरकार की आलोचना करना छोड़ देंगे, उस दिन उस समाज या देश की सरकार में भ्रष्ट लोगों का वर्चस्व कायम हो जाएगा।

साहित्य रचना के मार्ग में रचनाकारों को आज बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, फिर भी हिंदी साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन में भी इजाफा हुआ है। बड़े शहरों में रचनाकारों को अपनी पहचान बनाने की जितनी सुविधाएँ प्राप्त हैं, उतनी छोटे शहरों एवं गाँवों में बसे रचनाकारों को नहीं मिल पाती। उन्हें राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनाओं के प्रकाशन की सुविधा नहीं मिल पा रही है। इसके अभाव में प्रतिभावान साहित्यकार अपनी पहचान भी नहीं बना पा रहे हैं। इसके कारण हिंदी साहित्य को जितने पायदान ऊपर चढ़कर बुलंदी पानी थी, उतनी वह नहीं पा सका है। बड़ी विडम्बना यह है कि हिंदी भाषा जिस तबके के लोगों को रोजी-रोटी दे रही है, उनमें से अधिकांश को हिंदी भाषा की तरक्की, खुशहाली और चमक से कुछ लेना-देना नहीं है। वे सिर्फ उतना ही जानते हैं एवं जानना चाहते हैं, जितना उन्हें अपने पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ने और पढ़ाने के लिए जरूरी होता है। दरअसल विकास और रूपांतर आसानी से उपलब्ध होने वाली चीजें नहीं होतीं और न ही अकादमिक जगत की मोहर का ही मोहताज होती हैं। उन्हें बाजार की माँग के मुताबिक गढ़े हुए उत्पादों की तरह बेचा-खरीदा भी नहीं जा सकता। श्रेष्ठ साहित्य एवं साहित्यकार रचनाधर्मिता के तल पर समर्पण और आत्मत्याग की जिस जमीन पर अंकुरित होते हैं ठीक उसी प्रकार वह पाठकों की चेतना में पूरी निष्ठा और संघर्ष की माँग करते हैं।

साहित्य क्या है, क्यों है और किसके लिए रचा जाता है, इस बात को लेकर अगर लेखक ही अनभिज्ञ हैं तो वह समाज की जरूरतों को समझ नहीं सकेगा। रचनाकार जब तक समाज की समस्याओं को हृदय से महसूस नहीं करेगा तब तक अपने साहित्य के द्वारा समाज में व्याप्त समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त नहीं कर पाएगा। साहित्य में निरंतरता होनी चाहिए। एक-दो किताब निकाल कर खुद को बड़ा साहित्यकार का दर्जा देने का यत्न करके और गुटबाजी करके दूसरों में कमियाँ कोई निकाले, तो ऐसी प्रवृत्ति भी साहित्यिक लेखकों के लिए घातक है। ऐसा करने वाले लेखक कभी साधारण पाठक के मन को नहीं जीत पाएँगे।

आज समाज को जरूरत है कि हिंदी साहित्य के नयी और पुरानी पीढ़ी के साहित्यकार आपस में समानता एवं आदर का भाव लाएँ एवं एक-दूसरे का सहयोग करें। चूँकि शब्द और संवेदना भी साहित्यकार के पास ही हैं, इसलिए सामाजिक-मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए वे ही गति प्रदान कर सकते हैं। साहित्यकार प्रकृति से ही प्रगतिशील और विवेक स्वातंत्र्य की चेतना से सम्पन्न और स्वाधीन होता है। वह किसी खूँटे से बँधकर नहीं रह सकता। अतः मनुष्य की संवेदना चिंता और चिंतन के लिए साहित्यकार को आगे आना ही होगा। परंतु आज का साहित्यकार गुटबंदी और राजनीतिक दलों में बँट गया है। साहित्य तो मात्र साहित्य है, वह दलित, वामपंथी, दक्षिणपंथी, जनवादी और न जाने किन-किन खेमों में बँट कर अपने मूल उद्देश्य से दूर होता जा रहा है।

एक प्रश्न यह भी उठता है कि आज तकनीकी विस्तार और इंटरनेट की पहुँच से हिंदी साहित्य समाज से विमुख तो नहीं हो गया? नहीं, गौरतलब है कि इन माध्यमों से यह दूर-दराज

क्षेत्रों तक पहुँच कर वहाँ के छिपे साहित्यकारों को भी प्रकाश में ला रहा है। सोशल साइट्स ने साहित्य को नयी पीढ़ी के सामने रखा है, जो अब तक उपलब्ध नहीं था। इसी बहाने अनेक नए-पुराने साहित्यकारों के बीच सामंजस्य बन चुका है। हिंदी साहित्य का विस्तार आज भारत तक ही नहीं सीमित है, यह विश्व तक फैल चुका है। इससे जुड़े लोगों ने विदेशों में भी अपनी संस्थाएँ खोली हैं, जहाँ समय-समय पर सेमिनार एवं सम्मेलन होते रहते हैं। आज की तारीख में पुस्तकों के प्रकाशन एवं साहित्यिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने के क्रम में विभिन्न साहित्यिक वेब साइटों ने व्यापक भूमिका निभायी है। हिंदी साहित्य को विकसित देशों के साहित्य के साथ स्वस्थ प्रतिस्पर्धा करनी होगी। उनकी नीतियों और समर्पण से सीख लेनी होगी। ऐसा नहीं है कि हमारे साहित्यकार इस क्षेत्र में जागरूक नहीं हैं। उन्होंने भी अनेक मंचों से इसके विकास के लिए प्रयत्न किया है और करते भी रहेंगे। बस जरूरी है कि हम दलीय राजनीति और गुटबाजी से बाहर निकलें।

भारत जैसे बहुभाषी और बहु संस्कृति वाले देश में हिन्दी संवाद सेतु की तरह कार्य करती है। मातृभाषाओं के साथ ही हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

समय के साथ हिन्दी का प्रयोग तेजी से बढ़ा है। डिजिटल प्लेटफार्म पर हिंदी सामग्री की उपलब्धता और उपयोग में तेजी से वृद्धि हुई है। मातृभाषाओं के साथ ही हिंदी का भी समान महत्व है। भाषा के क्षेत्र में करियर बनाने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थियों को उसमें प्रवीणता हासिल करने के साथ ही अपना शब्द भंडार बढाने का प्रयास करना चाहिए। भाषाएँ सिर्फ संवाद का माध्यम ही नहीं भावनाओं, संस्कृति और परंपराओं की वाहक भी होती है। अपनी जड़ों से जुड़े रहने के लिए मातृभाषाओं को सीखना चाहिए।

जो बच्चे मातृभाषा नहीं सीख रहे, वे हिन्दी भी नहीं सीख रहे। ऐसे बच्चे अँग्रेजी सीख रहे हैं। हिंदी देश के विभिन्न हिस्सों और भाषाओं को जोड़ने वाली भाषा है। दैनिक कार्यों में इसका अधिक से अधिक प्रयोग करने का प्रयास करना चाहिए। हिंदी अथवा कोई भी भाषा पुस्तक, लाइब्रेरी, कोष अथवा व्याकरण का विषय नहीं है। भाषा और नदी, दोनों घेरदार, घुमावदार, स्वच्छन्द बह कर ही स्वयं को संस्कारित, परिष्कृत और विकसित करते हैं।

विद्वानों के अनुसार, भाषा अध्ययन-मीमांसा से अधिक यात्राओं से समृद्ध होती है। सर्वाधिक समृद्ध भाषा पद यात्री की होती है और सर्वाधिक दरिद्र भाषा विमान यात्री की। विमान यात्री दूसरों के सम्पर्क में सिर्फ कुछ देर के लिए आता है और वह भी औपचारिक। वह अपनी अकड़ और फर्जी करेक्टर की वजह से किसी से संवाद नहीं करता। सिर्फ विमान के डावांडोल होकर गिरने की स्थिति में हाय-हाय करता है। अन्यथा झूठ-मूठ अखबार में मुंडी घुसाए रखता है, जबकि पदयात्री को चूल्हा जलाने वास्ते लकड़ी माँगने, ठौर माँगने, नमक माँगने और आगे का रास्ता पूछने वास्ते स्थानीय लोगों से सम्पर्क करना ही होता है।

इसीलिए हिंदी के पुरोधा कोई प्रोफेसर या स्कोलर नहीं रहे, बल्कि कोई खंजड़ी बजा कर गाने वाला अंधा, करघे पर बैठ चादर बुनता जुलाहा, कठौती में चमड़ा सिझाता रैदास चमार

अथवा राजपाठ त्याग पैदल यात्रा करती मीरा आदि रहे हैं। व्याकरण तिजोरी में रखे धन की तरह है, जो सिर्फ एक आश्वासन है, जबकि व्यवहार में बरती जाने वाली भाषा राहुल गाँधी के टी शर्ट अथवा केजरीवाल के मफलर की तरह है। जो सतत् उपयोग में भी है और चर्चा में भी।

आम नागरिक के जिम्मे व्याकरण को सहेजने का काम नहीं है। वह पाणिनि, आद्य शंकराचार्य या मुझ जैसे पुरुषों पर छोड़ दो, जिन्होंने अनेक भाषाओं को धमन भट्ठी में पिघला कर उनका सत जमा किया है।

जन सामान्य को अनार का शोधन कर उसे ग्लूकोज बनाने का नुस्खा सीखने की आवश्यकता नहीं। उसके लिए इतना ही अभीष्ट है, कि वह अनार खाए, और जरूरत पड़ने पर ग्लूकोज की सुई लगवाए। भाषा का व्याकरण जाने बगैर भी आप उसके प्रसारक हो सकते हैं, जैसे गाँधी थे। एक आचार्य के लिए भी पुस्तकों से निकल कर समय-समय पर यात्राएँ कर भाषा का विन्यास करना आवश्यक है।

भाषा हमारी अंतिम शरण है। जब हमारी सरकार और हमारे परिजन भी हमें त्याग देते हैं, तब हमारी भाषा ही हमें जीवित रखती है। दान, पुण्य, सत्कर्म सब यहीं छूट जाते हैं। अंत समय में केवल हमारी भाषा ही हमारे साथ जाती है।

अदिति माहेश्वरी गोयल ने एक साक्षात्कार में कहा था, जैसा कि मैंने अपने पिछले उत्तर में कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2022 के चलते, पहली पाँच कक्षाओं में भारतीय भाषाओं को शामिल करने से युवा पाठकों के बीच अपनी मातृ-भाषा के प्रति सकारात्मक बदलाव आयेगा। यह इसलिए जरूरी है, क्योंकि युवा पाठक कहीं-न-कहीं अंग्रेजी के दबाव में आकर अपनी मातृ-भाषा से दूर होते जा रहे।

वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक पटल पर कहूँ तो मातृ-भाषा से दूरी के चलते युवा छात्र आत्मविश्वास विकास में पीछे रह गए हैं। भारत में कौशलसिद्ध और बौद्धिक छात्रों की कोई कमी नहीं हैं, लेकिन अंग्रेजी के बोल-बाले के चलते वे अपनी बौद्धिकता और कुशलता को पूर्ण रूप में न ही समझ पाते हैं, न ही प्रयोग में ला पाते हैं। जब क्षेत्रीय भाषाओं को कक्षा में आदरपूर्ण जगह मिलेगी तब हमारे युवा छात्र जीवन भर अपनी मातृ-भाषा से जुड़े रहेंगे। ध्यान दीजिए कि महानगरों में आज भी ऐसे कई स्कूल हैं, जो अंग्रेजी में न बोलने पर और हिन्दी बोलने पर छात्रों को दण्डित करते हैं। इन सभी बदलावों की आज सबसे ज्यादा आवश्यकता है।

हम भारतीयों का सपना था कि आजादी के बाद लोक-व्यवहार और राजकाज में भारतीय भाषाओं का प्रयोग होगा। दुर्भाग्यवश यह सपना कभी सच नहीं हो पाया। आजादी के बाद संविधान बनाने का उपक्रम शुरू हुआ। संविधान का प्रारूप अंग्रेजी में बना, संविधान की बहस अधिकांशतः अंग्रेजी में हुई। यहाँ तक कि हिंदी के अधिकांश पक्षधर भी अंग्रेजी भाषा में ही बोले। अगर हिंदी को लेकर हमारे संविधान निर्माता संजीदा होते तो हिंदी की यह हालत नहीं होती। साधनविहीन जन की भाषा अंग्रेजी न तो पहले थी और न अब है। करोड़ों लोगों के देश में

अंग्रेजी न जनभाषा हो सकती है और न राजभाषा। विभिन्न रूपों में यह स्थान हिंदी को ही लेना है। अब तक जो भी चेष्टा की गयी, वह ठीक तरह से किया गया है यह कहना संशयात्मक है। जो सत्ता के केंद्र में हैं, व्यवस्था के अंग हैं या सामाजिक स्तर से मजबूत हैं वे अपनी दुनिया में रमे हुए हैं। ऐसी कोई पार्टी नहीं है जो हिंदी के प्रश्न पर डटी रहे और हिंदी के लिए लड़ती हुई दिखाई दे। लोकतंत्र के महत्वपूर्ण अंग विधायिका में हिंदी समेत अन्य भारतीय भाषाओं की हालत पर कभी बहस नहीं होती है। देश की संसद में अभी तक हिंदी को वह दर्जा नहीं मिल सका है जो एक राष्ट्रभाषा को मिलना चाहिए। हमारे देश में अंग्रेजी ऐसी विभाजन रेखा है, जो तय करती है कि किसी को जिंदगी में कैसा कैरियर और सुख-सुविधाएँ मिलेंगी। अंग्रेजी बोलना-लिखना-पढ़ना समाज में बेहतर स्थिति और रोजगार की बहुत बड़ी योग्यता है। ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा, राजनीति, शासन, पत्रकारिता जैसे क्षेत्रों में अंग्रेजी जाननेवालों का अधिकारयुक्त स्थान है।

आधुनिक प्रवृतियों में जिस आधी आबादी की धमक भी साहित्य के गलियारों से आ रही है, उनके जिक्र के बिना यह विषय अधूरा रह जाएगा। पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए स्त्रियाँ रच रही हैं। साहित्य की साधना में अंदर के चैतन्य भाव एवं संकल्प चेतना को जगाने के लिए निरंतर प्रयास करना होता है। स्त्रियों के लिए यह प्रयास नया नहीं है। जहाँ अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए भी प्रयास करना पड़े, वहाँ कोई अन्य प्रयास में यह वर्ग कभी पिछड़ नहीं सकता है। हिंदी वह समर्थ भाषा है, जो पूरे देश को एक प्रेम के धागे से जोड़ सकती है। हिंदी विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। राजनीतिज्ञ और नीति निर्माता हिंदी के जिस महत्व को नहीं समझ पाए, बाजार ने फौरन समझ लिया। हिंदी आज बाजार की भाषा बन गयी है। फिल्म, टी.वी., विज्ञापन और समाचार हर जगह हिंदी का वर्चस्व है। इंटरनेट और मोबाइल ने हिंदी को और विस्तार दिया। हिंदी बढ़ रही है लेकिन इसके सरोकार लगातार घट रहे हैं। जब हिंदी बाजार की भाषा हो सकती है तो रोजगार, शिक्षा और लोक व्यवहार की भाषा क्यों नहीं? यह समझ से परे है कि हमारे देश में अंग्रेजी को इतना महत्व क्यों दिया जा रहा है। दुनिया के लगभग सारे मुख्य विकसित व विकासशील देशों में वहाँ का काम उनकी भाषाओं में ही होता है।

सामाजिक चिंतन और साहित्य सृजन प्रवाहमान और परिवर्तनगामी होने के बाद भी दीर्घकालीन प्रभाव वाली प्रक्रियाएँ हैं। इसमें चिंतन, मनन और सृजन का उद्देश्य ही मुख्य है जिसका बढ़ावा वैयक्तिक स्तर पर हर साहित्यकार कर सकता है।

डॉ. कविता विकास, फ्लैट नं.-टी/1801, सेक्टर - 121, होम्स - 121, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश)
मो. : 9431320288, ई-मेल : kavitavikas28@gmail.com

✧ ✧ ✧

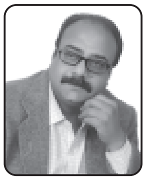

बदल रहा है प्रेमचंद का लमही गाँव

लमही से लौटकर सुशील स्वतंत्र

प्रेमचंद जयंती (31 जुलाई) पर विशेष

सुशील स्वतंत्र

गाँव में घुमने पर आपको आज आधुनिक घर भी देखने को मिलेंगें और फूस की झोंपड़ी भी, जिसे स्थानीय लोग मड़ई कहते हैं। कुछ खपरैल मकान अब भी यहाँ दिख जाते हैं। गाँव में प्रवेश करते ही रोज सुबह लगने वाली स्थानीय सब्जी मंडी दिखेगी और कुछ दूर चलते ही आएगा मुंशी जी का पोखरा यानी तालाब। इसी पोखरे के पास दिखाई देगा मुंशी प्रेमचंद का पैतृक आवास, जहाँ से उन्होंने न जाने कितनी कालजयी कृतियों की रचना की। आज इस स्थान पर मुंशी प्रेमचंद स्मारक और पुस्तकालय का परिसर बना है, जिसमें कुछ पुस्तकें रखी गई हैं और प्रेमचंद की एक पाषाण प्रतिमा लगाई गई है। लंबी प्रतीक्षा के बाद गाँव में मुंशी प्रेमचंद शोध एवं अध्ययन केंद्र की इमारत भी बनकर तैयार हो गया है। आमतौर पर साल भर यहाँ सन्नाटे जैसा माहौल रहता है।

आज अगर आप प्रेमचंद के गाँव लमही जाते हैं तो गाँव में प्रवेश करने से पहले ही प्रेमचंद स्मृति स्वागत द्वार पर आपको उनकी कहानियों के चर्चित पात्रों घीसू, होरी, माधो और धनिया की प्रतिमाएँ अपने किरदार वाली मुद्राओं में आपका स्वागत करते हुए मिल जाएँगीं। लमही गाँव कितना बदला है या गाँव की हकीकत प्रेमचंद की कहानियों के गाँव से कितनी जुदा है, यह सब आपको लमही में घूमने से पता चल जाएगा। गाँव में आज भी एक तरफ प्रेमचंद की कहानियों की सामाजिक विषमता की झलक देखने को मिल जाएगी, तो दूसरी तरफ आधुनिकता की बयार भी आपको छूते हुए गुजर जाएगी। उत्तर प्रदेश सरकार ने लमही को बनारस जिले का पहला ई-विलेज घोषित किया था। सरकार का दावा था कि लमही में हर परिवार का पूरा विवरण डाटा बैंक में होगा। आय, जाति, निवास प्रमाण पत्र हो या खसरा-खतौनी जैसे अन्य सरकारी दस्तावेज के लिए किसी बुधिया, होरी, धनिया, घीसू, माधो को तहसील और कलेक्ट्रेट का चक्कर नहीं काटना पड़ेगा। सारी सुविधाएँ ग्राम पंचायत भवन से ही उनको मिल जाएँगी। इसके लिए वहाँ जाकर सिर्फ अपना नाम बताना होगा और तुरंत सारा विवरण प्रिंट करके और हस्ताक्षर करके तत्काल उपलब्ध करा दिया जाएगा। सरकारी दावों पर यकीन करें, तो लगता है कि अब लमही के दिन भी फिरने वाले हैं।

गाँव में घुमने पर आपको आज आधुनिक घर भी देखने को मिलेंगें और फूस की झोंपड़ी भी, जिसे स्थानीय लोग मड़ई कहते हैं। कुछ खपरैल मकान अब भी यहाँ दिख जाते हैं। गाँव में प्रवेश करते ही रोज सुबह लगने वाली स्थानीय सब्जी मंडी दिखेगी और कुछ दूर चलते ही आएगा मुंशी जी का पोखरा यानी तालाब। इसी पोखरे के पास दिखाई देगा मुंशी प्रेमचंद का पैतृक आवास, जहाँ से उन्होंने न जाने कितनी कालजयी कृतियों की रचना की। आज इस स्थान पर मुंशी प्रेमचंद स्मारक और पुस्तकालय का परिसर बना है, जिसमें कुछ पुस्तकें रखी गई हैं और प्रेमचंद की एक पाषाण प्रतिमा लगाई गई है। लंबी प्रतीक्षा के बाद गाँव में मुंशी प्रेमचंद शोध एवं अध्ययन केंद्र की इमारत भी बनकर तैयार हो गया है। आमतौर पर साल भर यहाँ सन्नाटे जैसा माहौल रहता है। इस पूरे परिसर की देखभाल और रख-रखाव एक समर्पित प्रेमचंद प्रेमी सुरेश चन्द्र दुबे नाम के सज्जन करते हैं। अगर वे न हों, तो प्रेमचंद स्मारक में कोई आने-जाने वाला भी न बचे। प्रेमचंद स्मारक की गतिविधियों को लेकर सुरेश चन्द्र दुबे का साक्षात्कार अनेक चैनलों, अखबारों और वेब पोर्टल्स पर प्रकाशित हो चुका है।

पूरे लमही में आमतौर पर कायम रहने वाला साहित्यिक सन्नाटा साल में एक दिन उत्सव में बदल जाता है। वह विशेष दिवस होता है 31 जुलाई, मुंशी प्रेमचंद जी की जयंती। इस दिन लमही में मेला लगता है। इस भव्य मेले में देश-दुनिया से साहित्यकार, रंगकर्मी, गायक, कवि, पत्रकार, चित्रकार, बुद्धिजीवी और शोधकर्ताओं की भारी भीड़ जुटती है। इस दिन लमही में महानुष्ठान जैसा माहौल होता है। प्रेमचंद जयंती पर लमही में रंगकर्मियों का भी विशेष मजमा लगता है। कलाकार और साहित्यकार अपने प्रिय कथाकार को याद करने के लिए नाटक, गोष्ठी और परिचर्चाएँ आयोजित करते हैं।

उस एक दिन के बाद फिर लमही को पूरे साल उसी के हाल पर छोड़ दिया जाता है। यह एक रवायत की तरह पिछले कई वर्षों से चला आ रहा है। यह कहा जा सकता है कि तमाम घोषणाओं के बावजूद मुंशी प्रेमचंद का घर और गाँव आज भी उपेक्षा का शिकार है। मुंशी जी की जयंती पर उनके पात्र होरी, माधो, धनिया, घीसू की गहरी संवेदना से जुड़े कलाकार नाटक के जरिए उन्हें

याद कर करते हैं और सरकारी महकमों द्वारा फर्ज अदायगी के लिए टेंट भी लगा दिया जाता है लेकिन जयंती के बाद लमही के लोगों की सुध लेने कोई नहीं पहुँचता है। एक बार तो प्रेमचंद जयंती के चार दिन पहले ही प्रेमचंद जी के घर की बिजली इसलिए काट दी गई क्योंकि चौदह साल से बिल का भुगतान नहीं हुआ था। जब यह खबर मीडिया में आई तो आनन-फानन में बिजली जुड़वा दी गई। कोई विभाग इसकी जिम्मेदारी नहीं ले रहा था। पहले यह मकान और प्रेमचंद जी का स्मारक नागरी प्रचारिणी सभा के पास था। फिर उसने नगर निगम को दे दिया। नगर निगम ने भी बाद में यह भवन वाराणसी विकास प्राधिकरण को देकर अपना पल्ला झाड़ लिया। अब जब यह विवाद सामने आया है तो इसे जिलाधिकारी ने इस परिसर को संस्कृति विभाग को सौंप दिया। अब इस गाँव को गोद लेकर इसे देश के बड़े फलक पर लाने की योजना बनाई जा रही है।

मड़ई (फूस की झोपड़ी) और पोखर (तालाब) वाली लमही में दो-तीन मंजिला मकानों और दुकानों ने भी अपनी जगह बना ली है। घरों में मार्बल और टाईल्स के फर्श बनने लगे हैं। पांडेपुर से लमही तक की सड़क पर नजर डालें, तो बाजारवाद के पसराव (फैलाव) का आभास हो जाता है। गाँव में लिट्टी-चोखा और गोलगप्पे के साथ-साथ चाउमीन, मोमोज और एगरोल के फूड स्टाल भी खूब फल-फूल रहे हैं। एक महान साहित्यकार की जमीन से साहित्य की कोई कलकल धारा आज फूट रही हो, ऐसा लमही में घूमने से महसूस नहीं होता है। वहाँ के निवासियों के बीच साहित्य बातचीत और विमर्श का केन्द्रीय बिंदु नहीं है और न ही नई पीढ़ी में कोई लिखने-पढ़ने वाला साहित्यकार लमही की उर्वरक जमीन से अंकुरित हो पाया है। वहाँ बच्चों को प्रेमचंद के बारे में बहुत ही सतही जानकारी है और बहुत कम बच्चों ने प्रेमचंद के समृद्ध साहित्य को पढ़ा

है। लमही के आस-पास अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय खुल गए हैं। लमही नाम से ही हिंदी की एक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन होता है लेकिन इसका प्रकाशन, मुद्रण और सम्पादकीय कार्य लमही से नहीं होता है।

लेखन-पठन के क्षेत्र में अब लमही में कोई क्रांतिकारी या आशान्वित करती हुई तस्वीर नजर नहीं आती है। नया लमही बाजारवाद और चमकदार भौतिकतावाद के गहरे प्रभाव से ग्रसित दिखता है। युवाओं में साहित्य को लेकर सामान्यतः अरुचि ही देखने को मिलती है। बहुत ढूँढने पर एक असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. रीता गौतम के बारे में पता चला, जो लमही गाँव की ही निवासी हैं। वे 'बेड़ियाँ तोड़ती औरतें' शीर्षक से एक पुस्तक का लेखन कर रही हैं, जिसमें साधारण महिलाओं की असाधारण उपलब्धियों की कहानियों को संकलित किया जा रहा है। उन्होंने बातचीत के दौरान कहा - ''वर्तमान में लमही में कोई साहित्यिक समूह सक्रिय नहीं है। एक प्रेमचंद जी के आवास से संचालित पुस्तकालय है जो नियमित तौर पर खुलता है; बस, इसके अलावा कहीं कोई विशेष साहित्यिक हलचल गाँव में देखने को नहीं मिलती है।''

बहरहाल, जिस मिट्टी ने दुनिया के महान कथाकार को गढ़ा, वहाँ की आबोहवा में साहित्य की खुशबू फैल पाती, तो आज लमही एक तीर्थ से कम न होता। सरकारी प्रयास सिर्फ सड़क, भवन और स्वागत द्वार बनाने तक सीमित न होकर नई पीढ़ी में साहित्य के प्रति जिज्ञासा और रुचि पैदा करने तक जाते, तो लमही अपने वास्तविक अर्थ को हासिल कर पाती। सरकारी प्रयासों के साथ-साथ देश के साहित्य जगत की भी जिम्मेवारी है कि लमही को साहित्य का तीर्थ कैसे बनाया जाए, इस दिशा में मंथन एवं सार्थक प्रयास हो। कम से कम लमही तो एक ऐसा गाँव जरुर बन सकता है, जहाँ हर घर में किताबों की अलमारियाँ हों, हवाओं में साहित्य का रस घुला हो और जहाँ की मिट्टी से कलम के नवांकुर फूटते हुए दृष्टिगोचर हों।

सुशील स्वतंत्र, राँची रोड, रामगढ़, झारखण्ड - 829117

मो. : 9811188949

✧ ✧ ✧

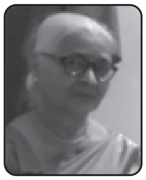

संस्मरण

मन की बात

सुधा गोयल

जहाँ मन होता जमीन पर चटाई बिछाकर लेट लेते। दिन में चारपाई या पलंग बिछने का रिवाज नहीं था। अलगनी पर कपड़े टंगे रहते। पहले कपड़े भी गिनती के होते थे। कोई भी किसी के कपड़े पहन लेता था। हर बार बदल कर पहनना भी आवश्यक नहीं था। जूते चप्पल भी दो जोड़ी एक स्कूल के लिए एक घर के लिए। स्कूल के कपड़े प्रेस करके आलमारी के एक खाने में रख लेते। न अपनी क्रीम पाउडर, न बाडी लोशन, ऐसा कुछ सोच में भी नहीं था। सादा खाना, सादा पहनना, घर में कोठा दालान, दो कोठरी, एक आंगन, बाहर बैठक और चबूतरा, चबूतरे पर कुआँ जिस पर मौहल्ले भर का पानी भरा जाता। दस प्राणी आराम से समाए रहते। ससुराल आई, तो ऐसा कुछ लगा ही नहीं कि मायके में कुछ छूट गया है।

कुछ बातें अचानक याद आ जाती है, जबकि वक्त के साथ वे अपना वजूद खो देती हैं। जिनके विषय में सोचने की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि तब ऐसा चलन नहीं था। आज अचानक मायके का घर याद आया और बहुत-सी बीतीं बातें भी। हालांकि अब वह घर नहीं रहा। दो बीघे के करीब जमीन बेच दी गई। न तब कोई गिला रहा और न अब है। उस घर को छोड़े पचपन साल हो गए। बहुत कुछ बदल गया। लेकिन आज भी मन जब चाहे उन गलियों में टहल आता है।

आज भी ऐसा ही हुआ। आज कल घरों में बड़े छोटे सबके कमरे अलग-अलग, सबकी प्राइवेसी अलग। मुझे लगा कि मेरा कुछ उस घर में ऐसा क्या था न अपना कोई कमरा, न अपनी कोई आलमारी, सब कुछ साझा। ऐसा भी कुछ नहीं जिसे छुपाया जाए। पूरे घर में गिनती की तीन खाने वाली पाँच आलमारियाँ, जिनमें से दो पर मैंने और मेरी छोटी बहन ने कब्जा जमाया हुआ था और एक भाई की। एक आलमारी में माँ रसोई का सामान रखतीं और दूसरी में उनकी गृहस्थी रहती।

पता नहीं भाई अपनी आलमारी में ऐसा क्या रखते थे कि ताला लगाने की जरूरत पड़ती थी। ताला भी चोर ताला जो चाबी के बिना अंकों के संयोजन से खुलता। जब भाई

बाहर होते तो हम उसे खोलने का प्रयास करते और एक दिन सचमुच अंक मिल गये और ताला खुल गया। अब अलमारी की तलाशी शुरू हुई। ऐसा कुछ खास नहीं मिला, हाँ कुछ किताबें जरुर थी, जिन्हें शायद खाली समय में पढ़ते होंगे। उनकी किताबों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी। जैसे आलमारी खोली वैसे ही बंद भी कर दी।

हम दोनों बहनों की आलमारी में अपनी-अपनी किताब, कॉपी, डायरी, पैन, पेंसिल, कलर बॉक्स तथा थोड़ा कसीदे का सामान भी रहता। यह कमरा भी सबका साझा था। हम दोनों बहनें वहाँ बैठकर पढ़ाई करतीं, भाई सुबह-सुबह वर्जिश करते, शाम को पिताजी की राजनीतिक मित्र मंडली जमती। कोई रिश्तेदार आ जाता, तो वह भी वही टिकता। इस साझा कार्यक्रम में किसी को कोई परेशानी नहीं थी। हम घर में किसी भी कोने में बैठकर पढ़ लेते। हाँ, घर की लड़कियाँ भी यहीं दिखाई जाती।

जहाँ मन होता जमीन पर चटाई बिछाकर लेट लेते। दिन में चारपाई या पलंग बिछने का रिवाज नहीं था। अलगनी पर कपड़े टंगे रहते। पहले कपड़े भी गिनती के होते थे। कोई भी किसी के कपड़े पहन लेता था। हर बार बदल कर पहनना भी आवश्यक नहीं था। जूते चप्पल भी दो जोड़ी एक स्कूल के लिए एक घर के लिए। स्कूल के कपड़े प्रेस करके आलमारी के एक खाने में रख लेते। न अपनी क्रीम पाउडर, न बाडी लोशन, ऐसा कुछ सोच में भी नहीं था। सादा खाना सादा पहनना, घर में कोठा दालान, दो कोठरी, एक आंगन, बाहर बैठक और चबूतरा, चबूतरे पर कुआँ जिस पर मौहल्ले भर का पानी भरा जाता। दस प्राणी आराम से समाए रहते। ससुराल आई तो ऐसा कुछ लगा ही नहीं कि मायके में कुछ छूट गया है।

छूटीं थीं तो कुछ किताबें, जो आलमारी में बंद थी, जिन्हें माँ ने बिना पूछे रद्दी वाले को बेच दिया। अफसोस तो बहुत हुआ। बस मुट्ठी भर प्यार, अंजुरी भर स्थान, यही अपनी पूँजी रही। लौट कर कौन से चिह्न ढूँढ़ती, जो दो चार कपड़े छूट गये थे उन पर छोटी बहन का अधिकार।

सोचती रही हूँ कि अब लड़कियाँ मायके आती हैं, अपने कमरे में सिमटती हैं, आलमारी खोलकर अपना सामान सहलातीं हैं। उनका कमरा ऐसे ही रहता है जैसा छोड़ कर गईं थीं। कोई छेड़छाड़ नहीं होती।

खुद को उधेड़ती हूँ कि क्या मेरी आँखों में भी कोई सपना आया था। ताज्जुब होता है कि मेरी जिंदगी में इतना खालीपन क्यों था? सपने देखने को किसने मना किया था। मेरे सपनों पर किसी का क्या अधिकार था? शायद सपने देखने का वक्त ही नहीं मिला।

झूठ नहीं है ये सब। सपने साझा नहीं होते। अपने, केवल अपने, शायद इसीलिए नहीं देख पाई। खैर वह वक्त भी मुट्ठी में बंद रेत-सा फिसल गया। शेष जीवन में थमने और सपने देखने का वक्त नहीं मिला। कब सुबह हुई कब रात, इसी का पता न चला। जो शुरू से सपने देखते हैं सपने भी उन्हीं को आते हैं।

कागज काले करने और कलम चलाने का कोई सपना नहीं होता। ऐसे लोग पागल या सनकी कहलाते हैं। अक्षरों का क्या है तैरते हुए कलम में आ गये, सपने ऐसे नहीं आते।

पीछे लौटकर देखने, चाहने और आहें भरने जैसा कुछ था ही नहीं। जो वक्त ने दिया सिर झुका कर मान लिया। आज भी मानती आ रही हूँ। औरत कभी आजाद नहीं होती। वह चाहे स्वयं को कितनी ही आजाद समझ लें लेकिन उसके जीवन में रहने वाला पुरुष-पिता, भाई, पति, पुत्र उसके दिल दिमाग पर शासन करते रहते हैं। इसीलिए मैं किसी भ्रम में नहीं जीती।

शासक और शासित का रिश्ता शिद्दत से निभा रही हूँ।

सुधा गोयल, 290-ए, कृष्णा नगर, डॉ. दत्ता लेन, बुलंद शहर - 203001

मो. : 9917869962, ई-मेल : sudhagoyal0404@gmail.com

✧ ✧ ✧

रचनाकारों से अनुरोध

- **प्रेषित रचनाएँ मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए।**
- **रचनाएँ ए-4 आकार के पेज पर टंकीत होना चाहिए।**
- **रचना क्रुतिदेव 010 फॉन्ट में ही भेजें।**
- **रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय तथा अपना एक पासपोर्ट आकार का फोटो भी भेजें।**
- **रचनाएँ किसी भी स्थिति में लौटाना संभव नहीं है। अतः रचनाकार रचना की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें।**
- **रचनाएँ** sahityayatra@gmail.com **पर ही भेजें।**
- **ई-मेल भेजने के क्रम में विषय अवश्य लिखें।**
- **साहित्य यात्रा में प्रकाशन हेतु रचनाएँ प्रधान संपादक को भेजने के वजाय साहित्य यात्रा के ई-मेल पर ही भेजें।**

ब्रेड एण्ड बुक (संस्मरण) श्री रामकिशोर उपाध्याय

डॉ. जमुना कृष्णराज

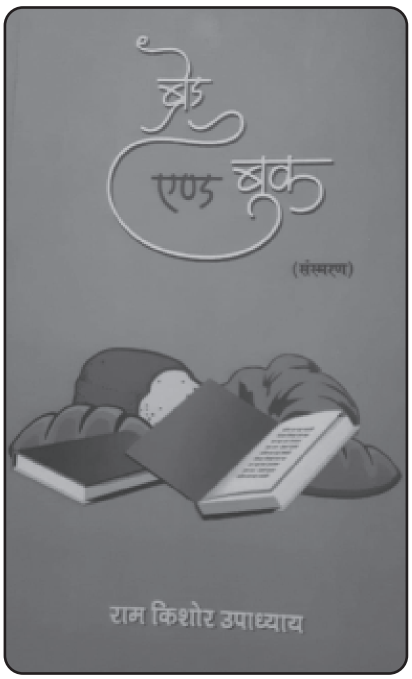

पुस्तक - ब्रेड एंड बुक

लेखक - श्री रामकिशोर उपाध्याय

प्रकाशक - शब्दांकुर प्रकाशन

मूल्य - 300/-

श्री रामकिशोर उपाध्याय की पुस्तक 'ब्रेड एण्ड बुक' उनके जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करती मानवीय संवेदनाओं का एक दस्तावेज सदृश है। इसमें लेखक के गहन अनुभूतियों, आत्मीयता के अद्‌भुत क्षणों और उनके परवरिश के समय के अनुशासित जीवन की एक झलक पाठकों को मिलती है। चूँकि यह कृति आत्मकथा न होकर मात्र संस्मरण है, यह क्रमबद्ध नहीं बल्कि अनेक कालखंडों की याददाश्तों के विभिन्न पलों के रंग-बिरंगे पुष्पगुच्छ-सी प्रतीत होती है। लेखक के अनुसार 'ब्रेड एण्ड बुक' संस्मरण संग्रह में उन व्यक्तियों और घटनाओं का वर्णन है, जिन्होंने उनके जीवन को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया। ''अतीत के बक्से में काफी कुछ ऐसा होता है जिसे याद रखा जाता है। हर व्यक्ति को किसी से पहली मुलाकात........ हमेशा याद रहती है और व्यक्ति चाहकर भी उन्हें भूल नहीं पाता।'' यह उनके जीवन के बिखरे अंश हैं, जिन्हें वे इस जगत से साझा करना चाहते हैं, 'जहाँ मेरी मुस्कान मिलेगी, वहीं मेरे डबडबाए नेत्र भी दिखेंगे।'

लेखन में उनकी अभिरुचि आरंभ से ही रही है। अतः वे कहते हैंः 'यूँ तो मैं पिछले कई वर्षों से लिखता आ रहा हूँ, लेकिन वर्ष 2010 में बनारस में नियुक्ति मिलने पर मेरे लेखन को पंख और परवाज दोनों मिले।'

अपनी सेवा निवृत्ति के बाद दो नावों पर सवार न होकर वे समर्पित भाव से लेखन कार्यरूपी साहित्य के नाव में उतर गए हैं।

प्राण जाई पर वचन न जाई नामक प्रथम संस्मरण में ही पाठक को बांध रखने की क्षमता है जहां अपने वचनों का पक्का, नेक और विश्वसनीय रिक्शावाले का चित्रण है। वह शो के अंत तक इंतज़ार कर जोर की बारिश में भी भीगते हुए लेखक को गंतव्य तक वापस पहुँचाता है। कुंभ मेले के दौरान जब उनका परिवार अटक जाता है और लेखक के मार्गदर्शन में आखिर जब वे अपने रिश्तेदार के यहाँ सही सलामत जा पहुँचते हैं तो लेखक का निष्कर्श है कि 'आशा ही ऐसा पंछी है, जो हमारी आत्मा में निवास करता है और यही एकमात्र शक्ति हमें विकट चुनौतियों से पार करने में मदद करती है।'

इसमें आध्यात्मिक पक्ष की ओर प्रेरित करने वाले स्वामी रुद्रानंद से मुलाकात का भी उल्लेख है, जिन्होंने लेखक को उपनिषद व शंकर भाष्य पढ़ने की सलाह दी। यही नहीं, स्वामी जी का मानना था कि कविता में यदि आनंद की अभिव्यक्ति हो तो वह अवश्य कालजयी बन जाएगी। 'जब जीवन आनंद का उत्सव है तो कविता में भी प्रेम, आनंद और अध्यात्म का समावेश होना चाहिए।'

स्वयं लेखक के व्यक्तित्व की एक झलक हमें जहाँ-तहाँ मिल जाती है, जब वे लिखते हैं-'' पिताजी मुझे इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्ज बनाना चाहते थे। लेकिन मेरी इच्छा डॉक्टर बनने की थी। मगर मैं न अपनी और न पिताजी की इच्छा पूरी कर सका। अब इसको लेकर मन में कोई खेद या विषाद नहीं है। जो मिल गया उसी में रम गया और सेवाकाल के अंत तक उसी में भक्ति भाव से आनंदित रहा। कितना सफल हुआ, यह सोचना बेमानी है। पिताजी मेरी प्रगति से संतुष्टि का भाव लेकर शिवलोक गमन कर गए, यही मेरे लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है। ''अन्यत्र उनका मानना है कि ''यह जीवन एक समर ही है जिसे मैं हर पल लड़ रहा हूँ आज भी!''

यह संस्मरण कई स्थलों पर ज्ञानवर्धक भी बन पड़ा है। उदाहरणार्थ हमें मेरठ के पौराणिक पक्ष की जानकारी प्राप्त होती है, जब वे लिखते हैं कि 'एक किंवदंती के अनुसार रावण के वसुर मय दानव के नाम पर इसका नाम मयराष्ट्र पड़ा...यही मयराष्ट्र कालांतर में मेरठ कहलाने लगा। मेरठ अशोक मौर्यकाल में एक प्रसिद्ध बौद्ध धर्म का केंद्र था। यहाँ की खादी, कंबल और गजक, रेवड़ी और कैंची पूरे विश्व में जानी जाती है।'

विडंबना है कि रेल विभाग के उच्च अधिकारी बने लेखक की जवानी में ऐसा भी अवसर आया जब पाँच पैसे के अभाव में उन्हें बिना टिकट के भयभीत होकर कभी यात्रा करनी पड़ी। पाँच पैसे किसी से माँगने पर उन्हें खूब अपमानित होना पड़ा। उस सहयात्री के शब्द ''अच्छे घराने के लगते हो और भीख माँगते हो। शर्म नहीं आती तुम्हें?'' सुनकर लेखक आत्मग्लानि से भर गए और बिना टिकट ही ट्रेन में बैठ गए। उनके शब्दों में ''मैं बिना टिकट बैठ गया और मेरठ छावनी तक भगवान से यही प्रार्थना करता रहा कि कोई टिकट चेकर न आ जाए। उस दिन मेरे सौभाग्य

से उस गाड़ी में मेरठ से कोई टिकट चेकर चढ़ा ही नहीं.......तो मेरे जान में जान आई।''

मानवीय मूल्यों की ही नहीं, प्राणियों के प्रति लेखक की सहानुभूति और सौहार्द श्लाघनीय है। पार्क में सैर करते समय नव प्रसूता गाय की दयनीय स्थिति देख जहाँ उनका मन पसीज जाता है, वहीं बचपन में अपने घर में पाले कुत्ते की स्नेहाभिव्यक्ति और उसकी वफादारी की सुंदर स्मृतियों से वे आह्लादित होते हैं।

उनका काव्य भाव यदा-कदा उभरता है और घूँघट और मास्क दोनों की तुलना में लेखक कई रोचक बात कह देते हैं। आज घूँघट पहनने की रीति में बदलाव आया है, पर वे पूछते हैं कि आज भी स्त्री का बिना घूँघट के बदली में चाँद जैसे मुखड़े का दीदार कैसे संभव होगा? प्रेम का पूरा संसार अधूरा रहेगा जैसे सुगंध के बिना फूल या फिर फूलों की सेज पर पति के बिन सुहागिन। ग्रामीण परिवेश में अपनी पैदाइश के कारण वे कोरोना काल में पहने मास्क को मुचका कहते हैं जबकि मुचका पशुओं के मुँह पर बांधा जाता है। कोरोना काल में इस मुचका को पहने रखने के विषय में हास्य पुट के साथ-साथ सलाह देते हुए वे कहते हैं, ''घूँघट निकालना या मुचका पहनना मात्र लाज और हया दिखाने का प्रमाण नहीं रह गया है बल्कि यह एक रक्षा कवच बन गया है। जबतक सरकार मना न करे, मुचका लगा रखने में ही भलाई है।''

वृंदावन के भ्रमण के दौरान जब वे प्रेम मंदिर का दर्शन करते हैं तो उनको अचरज होता है कि इसका नाम प्रेम मंदिर कैसे पड़ा। उनके अनुसार यह बड़ा अटपटा नाम है, अतः संस्थापक इसका अन्य कोई नाम भी रख सकते थे। पर इसके दर्शन कर खूब प्रभावित होते हैं। अवसर मिलने पर फिर आने की प्रतिज्ञा लेते हैं और प्रेम के संदेश को शाश्वत करने के लिए 'प्रेम जिंदाबाद' का घोष करते हैं।

लेखक अपने आत्मीय मित्रों के सुख-दुखों में भागीदार होते हैं और उनके संकट के समय चट्टान की तरह खड़े होकर उनकी यथासंभव सहायता करते हैं। जिस तरह वे अपने विभाग के वरिष्ठ अनुभाग अधिकारी और सगे मित्र बने नृपेन्द्र कुमार जी की निजी संकट को अपना संकट मान उन्हें बचाने का भरसक प्रयास करते हैं, यह उनके सत्गुणों का ही द्योतक है।

फेसबुक पर उनका विचार है कि जहाँ यह बुरी बातों के लिए बदनाम हैं, वहीं इसने अंग्रेजी, हिंदी और कश्मीरी भाषा के वरिष्ठ साहित्यकार बने त्रिभुवन कौल जैसे बहुत से अच्छे मित्र दिए।

सच्ची मित्रता के लक्षण को प्रदर्शित करते हुए अपनी आर्थिक संकट के समय अपने दीर्घकालीन मित्र श्री चमन सिंह की बिन मांगे ही सही समय पर सहायता प्रदान करने पर वे अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करना नहीं भूलते। न ही राजकुमार शर्मा नामक सहकर्मी को, जिन्होंने वास्तविक रूप में एक पिता समान संरक्षक की भूमिका निभाई। चौधरी महेंद्र सिंह टिकैत को भी, जिन्होंने भीड़ भरी ट्रेन में लेखक की पत्नी एवं बच्चों को खुद खड़े होकर बैठने की जगह दी।

अपने सहपाठी भारत भूषण शर्मा की समाज सेवा के प्रशंसक बने लेखक उन्हें 'असाधारण कार्य करनेवाला साधारण व्यक्ति' मानते हैं क्योंकि उनके विचार में आज जहाँ आदमी जाति और धर्म को लेकर एक-दूसरे की हस्ती मिटाने पर तुला है, वहीं भारत भूषण जैसे लोग 'रेगिस्तान में अमृतजल के अजस्र झरने की तरह मानवता को जिंदा रखने की कोशिश में, बिना किसी प्रचार की चाह में जुटे हैं।' अन्यत्र श्रीमती भारत भूषण शर्मा की भी लेखक यह कहते हुए उनकी खातिरदारी की तारीफ के पुल बाँधते हैं कि 'ये महिलाएँ प्रेम और स्नेह की बदौलत कितना कुछ कर लेती हैं। पता नहीं इन्हें कहाँ से शक्ति मिलती है।'

लेखक के साहस का भी हमें परिचय प्राप्त होता है जब अपने मित्र को किसी विरोधी के रिवाल्वर के हमले से बचाते हैं। पर उनका मानना है कि उस दिन उनका दुस्साहस खतरनाक सिद्ध हो सकता था। वे कहते हैंः ''इसके बाद सेवा काल में भी कई बार ऐसी ही दुरात्माओं से पाला पड़ा और उन्हें सही सबक देने में सदा सफल हुआ। इसमें कोई ईश्वरीय शक्ति का अदृश्य हाथ हो सकता है, पता नहीं।''

फिल्म अभिनेता प्राण को वे अपनी प्रेरणा के पुँज मानते हैं 'जिन्होंने अभिनय से दर्शकों के मन पर अमिट छाप छोड़ी। अपने साक्षात्कार के दौरान जो बातें प्राण ने कही, उनसे लेखक खूब प्रभावित हैं, यथाः ''जब भी जीवन में सफलता की सीढ़ी पर चढ़ो तो अपने से छोटे हर व्यक्ति को सलाम करते चलो।...... क्योंकि शिखर पर कोई लंबे समय तक नहीं टिकता।''

वर्ष 2019 में मॉरीशस से पधारे साहित्यकार रामदेव धुरंधर से हुई अपनी मुलाकात उनके अनुसार अविस्मरणीय है। रामदेव धुरंधर को अपनी भाषा से खूब लगाव है। उनका विश्वास है कि अपनी भाषा में जो आगे जाएगा, वही आगे रहेगा। हिंदी भाषा में लेखन का कार्य मॉरीशस में वे बड़ी शिद्धत से कर रहे हैं। इसे वे अपने ऊपर ऋण चुकाने का कार्य मानते हैं। उनकी लेखनी और मेधा में अपार शक्ति निहित है।

सुरेंद्र कुमार नामक एक मैजिस्ट्रेट से ट्रेन में मुलाकात लेखक के लिए अविस्मरणीय बन जाती है। उन्होंने दूसरों के सम्मान की अनेक अमूल्य बातें कहीं। जीवन में तीन व्यक्तियों का सम्मान करें, जो आपसे आयु,पद या रिश्ते से बड़े हों- भले ही वह गरीब, कम पढ़ा-लिखा या पद/प्रतिष्ठा से कमतर क्यों न हो। उनका आशय था कि किसी व्यक्ति को ज्ञान, अनुभव और रिश्तों का सम्मान हृदय से करना चाहिए। व्यक्तित्व निर्माण के लिए विनम्र होना आवश्यक है। हाल में समाचार पत्र में इन्फोसिस के चेयरमेन नारायणमूर्ति को उद्योगपति रतनटाटा के पैर छूने का चित्र छपा तो इसे देख लेखक का मानना है कि उनकी इसी अहंकार विहीनता के कारण ही वे मूल्य आधारित व्यवसाय को प्राथमिकता देते हुए अपने क्षेत्र में शिखर पर हैं और अनेक लोगों की प्रेरणा भी हैं। अहंकार रहित जीवन के लिए लेखक अहंभाव से भरे राजा भतृहरि का उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं, जिनकी मुलाकात गुरु गोरक्षनाथ से हुई और उन्होंने भिक्षा स्वरूप राजा से उनकी मुट्ठी भर अहंकार अपने खप्पर में डालने को कहा। इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान प्राप्ति

के लिए गुरु के सम्मुख निरहंकारी बन जाना होगा। राजा को गुरु के समक्ष झुकने पर ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति हो गई। लेखक कहते हैं, ''भतृहरि के प्रसंग से शिक्षा लेकर मैं भी अहंकार न करने की सदा कोशिश करता रहा हूँ।''

वर्ष 1978 में हुई एक हादसे से बाल-बाल बचे लेखक ने इसका वर्णन अपने संस्मरण में शीर्षक 'जान बची और लाखों पाए' में करते हैं, जो रोचक ही नहीं रोमांचक भी है। देर रात में कोई यातायात का साधन न पाकर और लाचार होकर वे एक कोयले भरे ट्रक में चढ़ जाते हैं, जो कुछ ही दूरी पर लोहे के सरिए लदे एक बैलगाड़ी से टकरा जाता है। डर के मारे जब चालक कूद कर भाग जाता है, अपनी मनःस्थिति का वर्णन कर लेखक हमें उस घटना को हमारी आँखों के सामने चित्रपट-सा बिछा देते हैं। यथाः ''बिन ड्राइवर का ट्रक गड्ढों में कभी इधर झुकता तो कभी उधर झूलता और इसके साथ मेरा वजूद भी झूल रहा था। उस समय मेरा मस्तिष्क बिल्कुल संज्ञा शून्य हो गया था। यदि ट्रक पलटा तो मैं कोयले के नीचे दब जाऊँगा। मृत्यु बिल्कुल सामने खड़ी थी। तभी मानो चमत्कार हुआ। डोलता हुआ ट्रक अचानक रुक गया। मैं तुरंत कूदकर नीचे आ गया। ट्रक के ब्रेक फेल हो गये थे। यह कोई अदृश्य शक्ति थी ...जिसने मुझे.... बचाया।''

इस हादसे से बचने पर लेखक बहुत प्रसन्न होते हैं, जो उनके शब्दों में स्पष्ट दृष्टिगोचर है। यथाः''उस घटना के बाद मुझे लगा कि जीवनदान मिल गया है। गहरी काली अंधेरी रात में मानो धूप निकल आई हो। गहरे सन्नाटे में मेरी सांसों में जीवन का एक सुंदर संगीत बज रहा था। मन खुशी से हिरन की तरह कुलांचे भर रहा था।..... संभावित मृत्यु की काली छाया कोट और पेंट पर पड़े काले दागों की तरह धुल गई थी। जिंदगी फिर पहली जैसी बेफिक्री से मुस्कुरा उठी।''

गाँधी जी के आदर्शों पर चलते अपने पिता के आचरणों से लेखक खूब प्रभावित हैं। अपने पिताश्री के बारे में उनका कहना है, ''वे पहनावे और विचार में गाँधी जी से बहुत प्रभावित थे।.... अपने जीवन में खादी, अनुशासन, सादगी, नैतिकता और सच्चरित्रता के प्रबल पालक बने रहे। पिताजी बड़े स्पष्टवादी थे। उनके पास मेहनत का गुण था। समर्पण की शक्ति थी। वे एक दृढ़ निश्चयी और उच्च चरित्र के व्यक्ति थे। अनुशासन का पालन उनका जुनून था। पिताजी एक सच्चे योगी की तरह स्थितप्रज्ञ थे। उनके सभी गुणों को तो मैं आत्मसात् नहीं कर पाया। लेकिन उनको ग्रहण करने का प्रयास मैं आज भी कर रहा हूँ।''

लेखक याद करते हैं कि उनके पिताजी ने बचपन में ही उन्हें पत्र लिखना सिखा दिया। सामान्य सूचना के लिए 'अत्र कुशलम् तत्रस्तु' लिखना हो या मृत्यु की सूचना के कार्ड का कोना काटना आदि। विवाह के कार्ड भी हाथ से लिखे जाते थे। वे कहते हैं कि ''इन्हीं चिट्ठियों में मेरा बचपन कुलांचा भरता है। मेरी जवानी धड़कती है। मेरे संगी-साथी खेलते हैं। मेरे पूर्वज इन चिट्ठियों से ही प्रश्न पूछते हैं। मुझे उत्साहित करते हैं और मुझे डांटते हैं। आज भी इन चिट्ठियों में मेरे अग्रजों का स्नेह स्पंदित होता है और मेरे दोस्तों का चुलबुलापन उफनता है। ये चिट्ठियाँ

अपने वक्त का दस्तावेज हैं।''आजकल फेसबुक और ट्विटर के दौर में चिट्ठी लेखन की प्रथा लुप्तप्राय हो चुकी है।

अपने बचपन में पोलियो रोग से पीड़ित होने पर उन्हें बचाने के प्रयास में जिस तरह उनके माता-पिता ने कोई कसर न छोड़ी और पूर्ण रूप से स्वस्थ कर दिया, इसके लिए उनके प्रति लेखक अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहते हैं, ''पिताजी ने कम वेतन मिलने के बावजूद खर्च की परवाह नहीं की। मैंने भी अपने ऊपर पिताजी का स्नेह अपेक्षाकृत अधिक अनुभव किया। यह जंग मैंने नहीं लड़ी, बल्कि मेरे माता-पिता ने अधिक लड़ी और जीती। माता-पिता का यह विशेष ऋण मेरे ऊपर रहा, उससे मैं कैसे उऋण हो सकता हूँ।''

बचपन में उनके बाल सुलभ मन में मिठाई खाने की इच्छा होती थी और हलवाई की दुकानों को देखते ही उनका जी मचलता था- इसका जिक्र भी उन्होंने अपने संस्मरण में किया है। 'तबेले से मंदिर तक 'शीर्षक के संस्मरण में लेखक ने अपनी स्कूली शिक्षा के दौरान आर्थिक तंगी की अपनी पारिवारिक स्थिति के कारण आवास की व्यवस्था में आई कठिनाइयों का वर्णन किया है, जहाँ मंदिर के धर्मशाला में रहते हुए उन्हें अपनी पढ़ाई पूरी करनी पड़ी। ''पंडित जी मुझे सुबह-सुबह चार बजे उठा देते थे। मंदिर के कुएँ से पानी निकालकर मैं मंदिर की सफाई करता। सफाई के बाद आरती और भोग लगाने के लिए पंडित जी बता देते थे। यहाँ तक कि उनकी अनुपस्थिति में मैं बारह-तेरह साल का बालक अपनी पढ़ाई के साथ-साथ धर्मशाला का काम संभालने लगा। मुफ़्त में रहने के कारण मेरे लिए यह काम जरूरी भी था। किंतु इसमें पंडित जी का प्रेम ही ज्यादा नज़र आया।'' पंडित हीरालाल जी से लेखक इतने प्रभावित थे कि कई वर्षों के बाद वे अपनी पत्नी को उनसे मुलाकात करवाए और उनसे ढेर सारा आशीर्वाद पाया।

अपने बचपन का जिक्र करते हुए लेखक कहते हैं कि ''जवानी ठीक से आई भी नहीं थी कि शादी कर दी गई और फिर नौकरी पर दूर जाना पड़ा। परिवार और पत्नी के बिना मन तो नहीं लगता था। एकांत खलता था। विरह के दंश रात भर शूल की तरह चुभते थे। जोधपुर में डेढ़ साल के प्रवास ने इश्क के कम से कम पचास पत्र तो लिखवा दिए। पत्नी भी उत्तर देती थी। जब बच्चे बड़े होने लगे तो एक दिन चुपचाप मुझे बिना बताए उसने जला दिए।''

उनके ज़माने में लड़के को दहेज में घड़ी,साइकिल और रेडियो भी देते थे। लेखक अपने पिताजी की पुरानी साइकिल की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि ''उस साइकिल ने मेरी आर्थिक स्थिति के विकास में अहम भूमिका निभाई। 2004 तक मैंने साइकिल चलाने का आनंद लिया। सब्जी लानी हो या घर का राशन ढोना हो, साइकिल ने खूब साथ दिया। साइकिल चलाने में पसीना खूब निकलता था, इसलिए किसी भी वर्क आउट या व्यायाम की जरूरत नहीं समझी।'' दहेज में मिली अपनी साइकिल के बारे में वे कहते हैं कि उस साइकिल ने मुझे पूरी दिल्ली की सैर करा दी। उनके अनुसार साइकिल आज सबसे भरोसेमंद वाहन है। कोरोना काल में कई मज़दूर अन्य यातायात के साधनों के अभाव में इन्हीं साइकिलों के सहारे अपने ठिकाने जा पहुँच सके।

पुरानी और अनुपयोगी साइकिल को कबाड़ी को बेचना ऐसा लगा जैसे बूढ़ी गाय को किसी कसाई को थमा दिया हो।

मध्यम वर्ग के लोगों में यही खूबी होती है कि वे छोटी-छोटी चीजों या बातों से संतुष्ट हो जाते हैं। यही हुआ जब लेखक ने सर्वप्रथम उशा सीलिंग फैन खरीदा। वे कहते हैंः 'यह हमारी गृहस्थी की खरीदी जाने वाली बड़ी वस्तु थी। इसे पाकर ऐसी खुशी हो रही थी कि मानो कोई अलभ्य वस्तु मिल गई हो।'

विभिन्न प्रतिभाओं के धनी उपाध्याय जी का गायन और कव्वाली जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों, विशेषकर नाटक के प्रति रुझान से भी पाठक अवगत होते हैं, जब रेलवे में अपने कार्यकाल के दौरान हास्य नाटक में अभिनय कर दर्शकों को हंसाने में वे कामयाब होते हैं। यही नहीं, विश्व विख्यात शायर सुरेंद्र चतुर्वेदी से मिलकर वे फूले न समाते।

प्रकृति प्रेमी बने लेखक जब पर्यटन के लिए कोटद्वार को मित्रों के संग निकलते हैं तो वहाँ की रमणीय प्रकृति से खूब आकृष्ट होते हैं और उन्हें ऐसा प्रतीत होता है, मानो यह प्रकृति मानव को अनेक सीख दे रही है। यथाः ''बहती पवन मानो कह रही हो कि हे युवक! थको मत, चलते रहो। पक्षी अपने कलरव से जैसे कह रहे हों, हे पथिक! ऊँची उड़ान भरना, परन्तु अपने मूल से जुड़े रहना। शिला कह रही हो जैसे मैं मात्र कण भी हूँ, शिला भी हूँ। कभी शिवलिंग और कभी शालिग्राम। जितना स्वयं को तराशोगे वैसा ही आकार ग्रहण करोगे।'' वे मानते हैं कि इस पर्यटन के दौरान सिद्धबलि मंदिर के दर्शन और उनके आशीर्वाद के कारण ही भारतीय रेलवे में उन्हें अपनी नौकरी प्राप्त हुई।

अपने शिमला के पर्यटन के दौरान भी प्रकृति ने उन्हें ज्ञानवर्धक सीख दी कि जब-जब कोई कष्ट देनेवाला आता है तब-तब उस कष्ट को हराने वाला भी प्रकृति पैदा करती है। बिच्छू बूटी ने डंक मारी, तो जंगली पालक को रगड़कर लगाने से उन्हें राहत भी मिली। इसलिए लेखक का निष्कर्ष है कि हमारा जीवन इस प्रकार के युग्मों में ही बीत जाता है। वे कहते हैं कि जब-जब किसी ने कष्ट या पीड़ा दी तब-तब कोई न कोई देवदूत बनकर मेरा दर्द निवारण कर ही गया।

रेलवे स्टाफ कॉलेज, बड़ौदा में अपने प्रशिक्षण के दौरान बिताए गए पलों को लेखक अविस्मरणीय मानते हैं। प्रताप विलास महल में संचालित इस कॉलेज को तत्कालीन बडौदा के राजा गायकवाड से रेलवे ने खरीद लिया। पचपन एकड़ में फैला यह भवन आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित है। पूरे परिसर की हरियाली एक मनोरम दृश्य है।

राजनेताओं पर व्यंग्य कसते हुए वे कहते हैं कि राजनीतिज्ञों को 'भूत' से बड़ा प्रेम होता है क्योंकि अपनी कुर्सी से उतरते ही 'भूतपूर्व' मंत्री लिखना अपनी शान समझते हैं। भूत के अस्तित्व को नकारने के लिए लेखक ने अपने बचपन में कभी अकेले कब्रिस्तान को पार किया था। उनके अनुसार संसार में मनुष्य को कई तरह के भय सताते हैं। पर गीता को आत्मसात् कर

हम भी अर्जुन की तरह निर्भीक बन सकते हैं,फिर अदृश्य भूत तो किस खेत की मूली!

पुस्तकों के इतिहास पर लेखक पाठक को अनेक महत्वपूर्ण जानकारी देकर उसका ज्ञानवर्धन करते हैं। यथाः 'पुस्तकों का इतिहास चार हज़ार वर्ष पुराना है। 'पुस्तकें बहुत बार जलाई गईं, नष्ट हुईं, लेकिन समय की कसौटी पर वे हमेशा खरी उतरी हैं। पढ़ने की संस्कृति ने भारत की वैचारिकता को प्रखर किया है। पुस्तकें हमारी पथप्रदर्शक और मनुष्य को जागृत करने की शक्ति से ओत-प्रोत होती हैं।'

इस संस्मरण के माध्यम से पाठक को यह जानकारी प्राप्त होती है कि महाराष्ट्र के सतारा जिले के भिलार नामक एक गाँव को 'पुस्तक गाँव' घोषित किया गया है। यही नहीं, केरल राज्य के कोल्लम जिले के कोट्टारकरा कस्बे के पास के गाँव पेरुंकुलम् को भी 'पुस्तक गाँव' घोषित किया गया है। इसका लाभ यह है कि यहाँ के लोग आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं और न ही मदिरापान करते हैं। यहाँ पुस्तकालय हेतु लोगों ने अपने घरों में सरकार को मुफ़्त में जगह दी है। इन कदमों से भाषा के उत्तरोत्तर विकास के साथ पर्यटन में बढ़ावा और देश को आत्मनिर्भरता की दिशा में बढ़ने की गुंजाइश है।

अपने इस संस्मरण के शीर्षक 'ब्रेड एण्ड बुक' को सार्थक करते हुए लेखक कहते हैं कि हमें रोटी से पहले पढ़ने को किताब दो, किताब पढ़कर हम रोजी-रोटी कमा लेंगे और अपनी बोली और भाषा को भी समृद्ध करेंगे। इस पुस्तक के गाँव को देखकर लेखक के अनुसार हमें जो सबक मिलती है, वह है-रोटी से पहले किताब!

अपने विभागीय प्रशिक्षण के अंत में हुई परीक्षा के प्रति दार्शनिक होते हुए लेखक कहते हैं- जिंदगी तो घड़ी-घड़ी परीक्षा लेती रहती है.... ये कभी खत्म ही नहीं होती।

अपने शैक्षणिक भ्रमण के दौरान लेखक सोमनाथ मंदिर, दीव टापु के सेंट पॉल चर्च, ऐतिहासिक किला, खुखरी स्मारक और शैल ग्रंथालय जैसे दर्शनीय स्थलों का चित्रण करते हैं।

हैदराबाद के एक साहित्यिक कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित होने पर लेखक वहाँ के चिल्कुर बालाजी मंदिर के दर्शन का वर्णन करते हैं। यह मंदिर वीसा दिलानेवाला मंदिर भी कहा जाता है। इसलिए लोग यहाँ हवाई जहाज का खिलौना चढ़ाते हैं। मान्यता है कि भक्तों की नौकरी की मन्नतें भी यहाँ पूर्ति होती है।

आदमी चाहता है कि उसके जीवन से वसन्त कभी न जाए और पतझड़ कभी न आए, किंतु ऋतु-चक्र कभी रुकता नहीं। कोरोना के शिकार बने अपने पूरे परिवार ने जिस प्रकार इस दंश से संघर्ष किया था, इसका चित्रण करते हुए लेखक अत्यंत भावुक हो उठते हैं। उनके जीवन के अभिन्न अंग बनी उनकी पत्नी को इस जंग से हारना पड़ा। स्वयं भी कोरोना से पीड़ित लेखक विवश होकर देखते रह गए और उसे बचा न पाए। यह दुख उन्हें आज भी खलता है। वे कहते हैंः ''मेरी आँखें खिड़की से एंबुलेंस निकलने तक पत्नी को देखती रहीं। मैं उस समय कितना अवश

और विवश था, बता नहीं सकता। जीवन में पहली बार ऐसा हो रहा था कि सुख-दुख में मेरे साथ कंधे से कंधे मिलाकर खड़ी रहनेवाली पत्नी अशोक कुमारी को जब मेरी सबसे अधिक जरूरत थी, मैं उसके साथ नहीं था। उसके बाद तो यूँ ज़माने को दिखाने के लिए हँसता भी हूँ। घर की दीवार पर लगी फोटो से मैं क्या कहता हूँगा, अनुमान लगाया जा सकता है। जिसे श्मशान में खुद अग्नि को समर्पित कर आया वह अब कहाँ मिलेगी? लेकिन फिर भी दिन के उजाले और रात के अंधेरों में उसे खोजता ही रहता हूँ कि कहीं वह मिल जाए। उसके अंतिम शब्द, बिताए गए पलों की लंबी दास्तां और उसकी-मेरी चार संतानें अब मेरी शेष जमा पूँजी है।''

सपने के विषय में लेखक का मानना हैं कि ''रात्रि का घोर अंधकार हो या चाँदनी रात, नींद में बिन बुलाए मेहमानों की तरह आ धमकने वाली शय को शायद स्वप्न ही कहते हैं। लेखक कहते हैं कि औरों की तरह मुझे भी स्वप्न आते हैं। मैंने उन्हें साकार होते देखा है। मुझे कई बार स्वप्न में महत्वपूर्ण घटनाओं की सूचना अग्रिम रूप में प्राप्त हुई। ये अतीन्द्रिय अनुभव भी हो सकते हैं।''

अपनी सेवा निवृत्ति पर उनकी विदाई के पल भी उनके लिए अविस्मरणीय बन गए हैं क्योंकि स्नेह और प्रशंसा हर मनुष्य को पुलकित करती है। इस अवसर पर अनेक अधिकारियों ने अपनी शुभकामनाओं से उनकी झोली भर दी और लेखक ने भी अपने सहकर्मचारियों के प्रति उनके सहयोग के लिए अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। राजभाषा विभाग के अतिरिक्त प्रभारी के रूप में कार्यरत होकर विभिन्न कार्यशालाओं और संगोष्ठियों में आमंत्रित होकर भाषण देना उनके लिए एक सुखद अनुभव रहा, जिसके लिए भी उन्होंने अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

एक सफल रेलवे अधिकारी के अतिरिक्त एक उत्कृष्ट साहित्यकार के रूप में उभरे लेखक में प्रकृति चित्रण हो या भावानुभूति हो-इनकी जो अभिव्यक्ति की कुशलता है, वह सराहनीय है क्योंकि यह हर पाठक के मन पर सीधा और गहरा प्रभाव छोड़ने की क्षमता रखती है। 'ब्रेड एण्ड बुक' इन्हीं तथ्यों को प्रतिपादित करती हैं। ऐसी एक उत्तम कृति पाठकों को सौंपने के लिए श्री रामकिशोर उपाध्याय जी को साधुवाद और भविष्य में भी अपनी लेखनी को सक्रिय रखने की शुभकामनाएं!

डॉ. जमुना कृष्णराज, 39/3, अनुग्रहा अपार्टमेंट्स रामस्वामी गार्डन स्ट्रीट, अरुणाचलपुरम,
अडयार, चेन्नई-600020, मो. : 9444400820, ई-मेल : jamunakrishnaraj@gmail.com

✧ ✧ ✧

डॉ. यायावर की सजलों में नवगीत के तत्व

कृष्ण कुमार 'कनक'

हिंदी साहित्य में गीत का वह नवीनतम स्वरूप नवगीत है, जो सामाजिक जीवन के यथार्थ, मानवीय मूल्यों व संवेदनाओं, राष्ट्रीय वैचारिकी, वैश्विक चिंतन, सर्वव्यापी सरोकार, वैयक्तिक प्रोन्नति, सामाजिक विकृतियों व विसंगतियों आदि को नवीन बिंबों व प्रतीकों के माध्यम से नवीन शिल्प व लयात्मक स्वरूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार इस संपूर्ण अवलोकन के पश्चात् ज्ञात होता है कि नवगीत के महनीय तत्वों के रूप में नवीन बिंब, नवीन प्रतीक, नवीन वैचारिकी, नवीन सामाजिक चिंतन, सामाजिक विकृतियों तथा विडंबनाओं का यथार्थ चित्रण आदि को प्रमुखता से स्थान प्राप्त हुआ है। इस आधार पर यदि डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों का मूल्यांकन किया जाए तो उनकी सजलों में ये सभी नवगीत के प्रमुख तत्व सहज ही खोजे जा सकते हैं।

शोध-सारांश :- गीत, नवगीत और सजल, ये तीनों ही विधाएँ काव्य के क्रमिक विकास एवं विकास क्रम के विस्तार-पथ की अनुगामिनी विधाओं के रूप में दृष्टिगत हैं। जहाँ एक ओर गीत मानवीय संवेदना के आदि इतिहास से संबद्ध है, वहीं नवगीत में वर्तमान की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए मानव मूल्य, मानवीय संवेदना, सामाजिक विषमताओं व विद्रूपताओं, मौलिक यथार्थ की अभिप्रेरणा, वैश्विक चिंतन, सर्वव्यापी सरोकार तथा मानव मात्र के कल्याण की भावना तथा गीत के नवीन शिल्प सौंदर्य की नवता के तत्वों जैसे भाव, भाषा, कथ्य आदि के नवत्व को धारण कर उस मानसिक वक्रता को प्रतिहत किया, जिसका मंतव्य यह हुआ करता था कि गीत कभी भी उस वैचारिक पृष्ठभूमि पर नहीं स्थापित हो सकता जिस पर नई कविता उतर कर सोचती है। इस दौर में जहाँ नई कविता के आतंक ने गीत को कविता की श्रेणी से बाहर करने का कुप्रयास किया, वहीं नवगीत ने अपनी सामर्थ्य के बल पर गीत की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित किया। इसी क्रम में जब उर्दू की प्राचीन विधा गजल हिंदी कवियों के मन-मस्तिष्क पर इस प्रकार प्रभावी हुई कि हिंदी कवि अपनी स्वयं की प्रतिष्ठा को खूँटी पर टांग कर गजल के सृजन के नाम पर अपमानित होते रहने पर भी स्वयं को

गौरवान्वित ही अनुभव करते दृष्टिगत हुए; तब बलवीर सिंह 'रंग', दुष्यंत कुमार, शिशुपाल सिंह 'निर्धन' जैसे महनीय कवियों ने अपने स्वाभिमान को जीवित रखते हुए हिंदी गजलों का सृजन किया। यहाँ ध्यातव्य तथ्य यह भी है कि वे अपनी रचनाओं को 'गजल' न कहकर 'गजल' यानी कि नुक्ताविहीन ही रखते थे अर्थात् इन कवियों ने प्रथमतया तो नाम का ही हिंदीकरण किया। इस क्रम में कालांतर में गीतिका, मुक्तिका, नागरी गजल, तेवरी आदि कई नाम आए किंतु यहाँ केवल नामों का ही परिवर्तन हुआ, शिल्प-विधान में कोई प्रामाणिक अंतर स्थापित न हो सका, परिणामस्वरूप हिंदी के एक से एक धुरंधर गजलकारों पर उर्दू उस्तादों की नकचढ़ी जस की तस बनी रही। कुछ एक हिंदी कवियों ने अपने नाम का इस्लामीकरण करके अवश्य ही प्रतिष्ठा पा ली किंतु अपने मूल नाम के साथ कोई भी हिंदी का गजलकार स्वयं को गजलकार के रूप में स्थापित न कर सका। ऐसे में गजल के आकर्षण व उस के स्वरूप बंध के समानांतर वर्ष 2016 में विकसित हुई। हिंदी की मौलिक विधा 'सजल' ने इस भ्रम को तोड़ा कि गजल के लावण्य को हिंदी में लाना संभव नहीं है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि जब भारतेंदु हरिश्चंद्र जी अपने युग में काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली हिंदी का पक्ष रख रहे थे, उस समय भी अनेकानेक विद्वानों का यही मत था कि खड़ी बोली में वह लावण्य कभी नहीं आ सकता जोकि ब्रजभाषा में है किंतु कालांतर में यह भ्रम भी टूटा। वर्तमान समय में कोई भी ऐसा पारंपरिक छंद नहीं, जो खड़ी बोली हिंदी में अपनी पूरी गरिमा के साथ न आया हो। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध गीतकार स्व. श्री देवल आशीष जी का एक कवित्त छंद दृष्टिगत है-

प्यार के बिना भी उम्र काट लोगे मित्र किंतु,
कहीं तो अधूरी जिंदगानी रह जाएगी।
यानी रह जाएगी न मन में उमंग न तो,
देह में सनेह की निशानी रह जाएगी।
रह जाएगी तो बस नाम की नहीं तो फिर,
और किस काम की जवानी रह जाएगी।
यानी रह जाएगी उमंग न तरंग न,
कबीर-सी चदरिया पुरानी रह जाएगी।

उपर्युक्त छंद खड़ी बोली हिंदी का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसी प्रकार 'सजल' विधा की रचनाएँ भी अपने यौवन की ओर शीघ्रातिशीघ्र अग्रसर हो रही हैं। इस परिप्रेक्ष्य में एक सजलकार के रूप में डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की प्रथम एकल कृति 'तृषा का आचमन' तथा द्वितीय कृति 'जलती रेत : दहकता मरुथल' प्रकाशित हुई हैं। डॉ. यायावर की सजलों में नवगीत के वे सभी तत्व उपस्थित हैं, जिनके कारण नवगीत की अपनी साहित्यिक प्रतिष्ठा है।

बीज शब्द :- नवाचार, तथ्यान्वेषण, प्रतिष्ठा, मौलिक चिंतन, लोकाभिव्यक्ति।

भूमिका :- डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' मूल रूप से नवगीतकार हैं। यही कारण है कि डॉ. यायावर जी द्वारा सृजित प्रत्येक विधा में नवगीत के तत्वों को सहज ही खोजा जा सकता है। एक कटु यथार्थ यह भी है कि जो व्यक्ति जिस क्षेत्र विशेष में महारत रखता है, तो उसका प्रभाव उस व्यक्ति विशेष द्वारा किए जाने वाले प्रत्येक कार्य पर अवश्य ही परिलक्षित होता है। परिणाम स्वरूप डॉ. यायावर जी की प्रत्येक काव्यात्मक रचना में नवगीत के तत्व विराजमान रहते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ. यायावर जी की प्रथम सजल कृति 'तृषा का आचमन' तथा द्वितीय सजल कृति 'जलती रेत : दहकता मरुथल' में भी नवगीत के तत्व विराजमान हैं।

मूल शोध-पत्र :- नवगीत को विशेष रूप से हमारे देश के तात्कालिक परिवेश तथा परिस्थितिजन्य स्थितियों के परिणाम के रूप में स्वीकार किया गया है। हिंदी साहित्य के अनेक युगों तथा आंदोलनों की भांति ही नवगीत अपने नाम से ही पूरी काव्य - धारा के मौलिक स्वरूप को स्पष्टता प्रदान नहीं करता बल्कि वह तो केवल संकेत मात्र ही करता है। वास्तविकता में तो

नवगीत के उदय की संभावित परिस्थितियों पर विचार करते हुए सुप्रसिद्ध समालोचक आचार्य श्री नरेश शाण्डिल्य जी लिखते हैं - 'कविता में जैसे महाकवि निराला ने छंद को तोड़ा और एक नए छंद की उत्पत्ति की - 'मुक्त छंद', ये कदापि 'छंद मुक्त' नहीं था, जैसा कि कुछ कवियों ने उसे बना दिया। ठीक उसी प्रकार 'नवगीत' की विधा सामने आई। इसमें नए-नए विमर्शों, नए-नए प्रतीकों, नए-नए बिंब-विधानों की उत्पत्ति और उनका विकास हुआ। पारंपरिक गीतों में अधिकतर प्रेम गीत और श्रृंगार गीत रचे जाते थे, जिनमें सौंदर्य, अलंकार, छायावाद आदि का बोलबाला था। इसी के समानांतर (विरोध में नहीं) नवगीत विधा का प्रादुर्भाव हुआ।

नवगीत को मूल रूप से गीत के स्वरूप में ही स्वीकार करना होगा क्योंकि जिस प्रकार गीत में लय और छंद उसके अस्तित्व के अनिवार्य तत्व हैं, ठीक उसी प्रकार नवगीत में भी इन दोनों की उपस्थिति उतनी ही अनिवार्य है। यह बात भिन्न है कि नवगीत संगीत की रूढ़ तथा कठोर शास्त्रीय परिपाटी के साथ दृढ़ता से आबद्ध नहीं है। परंतु ध्यातव्य तथ्य यह भी है कि नवगीत किसी अवास्तविक अर्थलय में अपना विश्वास प्रकट नहीं करता।

नवगीत आधुनिकता तथा युग-बोध की एक ऐसी अभिव्यक्ति है, जिसे युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में बड़ी ही स्पष्टता और सहजता से पहचाना जा सकता है। नवगीत के प्रतिस्थापन व उत्थान के संदर्भ में 'पाँच जोड़ बाँसुरी' नवगीत संकलन के संपादक चंद्रदेव सिंह लिखते हैं - 'नई कविता के समर्थकों ने गीत पर इसलिए भी बार-बार आक्रमण कर उसे पुराना, घिसा-पिटा और पिछड़ा कहा, ताकि हिंदी कविता को नई दृष्टि दे सकें, जो वैज्ञानिक चेतना को

आत्मसात कर सके, ताकि छंद, लय, गेयता, रागात्मकता से कविता को मुक्ति दिला सकें, जिससे वह आधुनिक जीवन-बोध को यथार्थ रूप में व्यक्त करने की शक्ति से भरपूर हो उठे। आधुनिक युगबोध की उपलब्धि, अनास्था, कुंठा, पराजय, विघटन का प्रकटीकरण गीत के माध्यम से संभव हो सकेगा'-1 यहाँ स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि भले ही नई कविता के समर्थक यह मानते हैं कि गीत में वह क्षमता नहीं जो नई कविता में है, किंतु वास्तविकता में गीत उन सभी तथ्यों को अभिव्यक्ति प्रदान कर सकता है, जिनके लिए विशेष रूप से नई कविता जैसी विधा विशेष को विशिष्ट माना जाता है।

नवगीत के उदय की संभावित परिस्थितियों पर विचार करते हुए सुप्रसिद्ध समालोचक आचार्य श्री नरेश शाण्डिल्य जी लिखते हैं - 'कविता में जैसे महाकवि निराला ने छंद को तोड़ा और एक नए छंद की उत्पत्ति की - 'मुक्त छंद', ये कदापि 'छंद मुक्त' नहीं था, जैसा कि कुछ कवियों ने उसे बना दिया। ठीक उसी प्रकार 'नवगीत' की विधा सामने आई। इसमें नए-नए विमर्शों, नए-नए प्रतीकों, नए-नए बिंब-विधानों की उत्पत्ति और उनका विकास हुआ। पारंपरिक गीतों में अधिकतर प्रेम गीत और श्रृंगार गीत रचे जाते थे, जिनमें सौंदर्य, अलंकार, छायावाद आदि का बोलबाला था। इसी के समानांतर (विरोध में नहीं) नवगीत विधा का प्रादुर्भाव हुआ। नवगीत में यथार्थ, सामाजिकता, विचार और समष्टिवाद को तरजीह दी गई। भाव और विचारों का सामंजस्य पैदा किया गया'-2 यहाँ लेखक का आशय यह है कि 'नवगीत' वास्तविकता में गीत का ही विकसित स्वरूप है, जिसने अपने भीतर उन सभी महनीय तथ्यों को समाहित किया, जिनके माध्यम से साहित्य को आधुनिक समाज की मूलभूत संरचना के लिए उपयोगी सिद्ध किया जा सके। इस प्रकार 'नवगीत' एक ऐसे विकल्प के रूप में सामने आया, जो गीत की उपादेयता को बनाए रखते हुए साहित्य जगत् में अपनी उपस्थिति की अनिवार्यता का साधन सिद्ध हुआ।

'नवगीत एकादश' नामक कृति में संकलित ग्यारह नवगीतकारों में सबसे पहले क्रम पर प्रकाशित जगदीश श्रीवास्तव जी के वक्तव्य में नवगीत के संदर्भ में कहा गया है, 'नवगीत भीड़ भरे सूनेपन की ईमानदार अभिव्यक्ति है। वह कल्पना के पंख लगाकर हवा में नहीं उड़ाता, वह धूप तपी नंगी चट्टानों पर नंगे पांव चलता है। माटी की गंध, ग्रामीण परिवेश, खपरैलों से निकलता धुआँ, बादलों की परछाइयाँ, मौसम के बदलते रंग, महानगरों का संत्रस व मानवीय संवेदनाओं ने नए छंदों, नए प्रतीकों व बिंबों से नवगीत को नवचेतना से संवारकर, गीतों की धारा को मन की गहराई तक पहुँचाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। बदलते परिवेश में शाश्वत मूल्यों को भाषा की रोचकता से संजोया व संवारा है।

नवगीत के शिल्प में जहाँ बिंब व प्रतीकों का प्रयोग हुआ है और जिनमें अंतर्वर्त्ती लय का समावेश है, उन गीतों में ही सशक्त अभिव्यक्ति प्रस्फुटित होती है।'- 3 अर्थात् गीत जब राष्ट्र व समाज की मूलभूत अवधारणा के सापेक्ष खड़ा होकर अपनी बात अपने नवीनतम स्वरूप में

प्रस्तुत करता है, तो वह नवगीत कहलाता है। इसी संदर्भ को व्याख्यायित करते हुए डॉ. शंभुनाथ सिंह जी 'नवगीत अर्द्धशती' नामक नवगीत संकलन की भूमिका में 'नवगीत विकास यात्रा' शीर्षक में लिखते हैं - 'नवगीत किसी अंग्रेजी शब्द का अनुवाद है या कि अंग्रेजी के किसी काव्यांदोलन या काव्य प्रवृत्ति का अनुकरण है, ऐसा नहीं माना जा सकता। निष्कर्ष यह है कि नवगीत नई कविता की तरह पश्चिम से आयातित काव्य प्रवृत्ति नहीं है, न तो वह हिंदी की नई कविता के वजन पर गढ़ा हुआ शब्द है। नई कविता के प्रारंभ से बहुत पहले ही नए ढंग से गीतों की रचना प्रारंभ हो गई थी, उसका नामकरण 'नवगीत' भले ही बाद में हुआ।

नवगीत भारतेंदु युग से चली आती उस गीत परंपरा की संज्ञा है, जो प्रारंभ से ही लोक जीवन से संपृक्त थी और युगीनबोध से उत्तरोत्तर परिपुष्ट होती रही।'-4 इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि नवगीत समय की धारा में प्रवाहित होते हुए गीत का नया स्वरूप है, जो वर्तमान समय की माँग को पूरा करने में पूरी तरह से समर्थ, सक्षम तथा सशक्त है।

इस प्रकार नवगीत के आचार्यों के मंतव्यों की विवेचना के पश्चात् ज्ञात होता है कि हिंदी साहित्य में गीत का वह नवीनतम स्वरूप नवगीत है, जो सामाजिक जीवन के यथार्थ, मानवीय मूल्यों व संवेदनाओं, राष्ट्रीय वैचारिकी, वैश्विक चिंतन, सर्वव्यापी सरोकार, वैयक्तिक प्रोन्नति, सामाजिक विकृतियों व विसंगतियों आदि को नवीन बिंबों व प्रतीकों के माध्यम से नवीन शिल्प व लयात्मक स्वरूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार इस संपूर्ण अवलोकन के पश्चात् ज्ञात होता है कि नवगीत के महनीय तत्वों के रूप में नवीन बिंब, नवीन प्रतीक, नवीन वैचारिकी, नवीन सामाजिक चिंतन, सामाजिक विकृतियों तथा विडंबनाओं का यथार्थ चित्रण आदि को प्रमुखता से स्थान प्राप्त हुआ है। इस आधार पर यदि डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों का मूल्यांकन किया जाए, तो उनकी सजलों में ये सभी नवगीत के प्रमुख तत्व सहज ही खोजे जा सकते हैं।

सजल के संबंध में अपनी आलोचनात्मक कृति 'तीसरी आँख और सजल' में युवा कवि एवं सुप्रसिद्ध साहित्यालोचक कृष्ण कुमार 'कनक' लिखते हैं कि - सजल हिंदी साहित्य की गीतिकाव्य-धारा की नवीन विधा है, जोकि उर्दू की गजल के समकक्ष कही जा सकती है; उर्दू गजल से प्रभावित या उससे उत्पन्न नहीं। इस विधा के प्रस्तोता आचार्य डॉ. अनिल गहलोत हैं। वे एक व्हाट्सएप ग्रुप पर थे, जिसका नाम था, 'गजल है जिंदगी'। उस ग्रुप पर लोग गजल के समान ही देवनागरी लिपि में रचनाएँ करते थे। कुछ गजलें तो पूरी तरह से गजल के व्याकरण तथा मानकों पर खड़ी उतरती थीं; बस उनकी विशेषता यह होती थी कि वे नागरी लिपि में थी, शेष रचनाएँ वे थीं, जिन्हें 'पूर्णिका' कहा जाना ही उचित और समीचीन है। गहलोत जी को गजल के व्याकरण का अच्छा ज्ञान था और उनके देवनागरी लिपि में लिखी हुई शुद्ध उर्दू गजलों के दो संकलन भी प्रकाशित हो चुके थे। गजल के ज्ञाता विद्वान होने के कारण गहलोत जी का उस समूह के सभी सदस्यों पर अच्छा-खासा प्रभाव भी था। अगस्त 2016 में एक दिन उस समूह पटल पर

किसी ने 'हिंदी दिवस' पर चर्चा छेड़ दी, तो उस समूह के अन्य विद्वानों ने भी उत्साह से उस चर्चा में भाग लिया और चर्चा बढ़ते हुए गजल तक आ पहुँची। डॉ. अनिल गहलोत ने तभी प्रस्ताव रखा कि क्यों न हम हिंदी में किसी ऐसी विधा का विकास करें, जो गजल के समकक्ष हो, उसका अपना व्याकरण, शिल्प, भाषा और विधान हो; जोकि हिंदी कवियों को गजल के आकर्षण से बचा सके, साथ ही अपनी मौलिकता के लिए हिंदी साहित्य जगत् में सम्मानजनक स्थान भी प्राप्त कर सके। गहलोत जी के इस विचार ने हिंदी के विद्वानों और कवियों तथा समीक्षकों में एक सकारात्मक ऊर्जा का संचार किया, साथ ही सबकी निगाहें उन्हीं पर आकर टिकीं। एक दिन, दो दिन या फिर चार-छः दिन नहीं, बल्कि पूरे एक माह तक विचार-मंथन चला। एक माह के सघन विचार-मंथन के उपरांत सहमति बनी 'सजल' विधा के नाम पर तथा 'सजल' के अंग-उपांगों के हिंदी नाम पर सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया। 'सजल' की भाषा, व्याकरण और शिल्प के मानक भी सुनिश्चित किए गए। उसके उपरांत 5 सितंबर, 2016 को उस ग्रुप पर 'सजल' विधा के हिंदी साहित्य में पदार्पण की घोषणा की गई और ग्रुप का नाम बदलकर 'सजल सर्जना' कर दिया गया। 'सजल' विधा के उद्भव के संदर्भ में डॉ. महेश दिवाकर 'डी.लीट.' लिखते हैं - डॉ. अनिल गहलोत जी के राष्ट्रवादी दृष्टिकोण, हिंदी के प्रति उनके समर्पण और भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी सुनिष्ठु प्रज्ञा ने 'सजल' जैसी हिंदी गीतिकाव्य की इस नई विधा को संज्ञानित किया। अपनी इस शाश्वत संकल्पना के मूल में डॉ. अनिल गहलोत ने 'सजल' के रूप-बंध को लेकर भाषा और शिल्प के स्तर पर नवीन मौलिक प्रस्थापनाएँ कीं हैं। सजल को विशुद्ध रूप से हिंदी काव्य की विधा मानते हुए उन्होंने इसे दोहा और मुक्तक की सहगोत्री बताया है, साथ ही हिंदी की नई कविता और नवगीत की भाँति ही इसे भी स्वतंत्र विधा माना है।'-5 इस लेखांश में 'पूर्णिका' शब्द का प्रयोग हुआ है, उसे समझना भी परम आवश्यक है क्योंकि एक बड़ा प्रश्न यह उठा कि जो रचनाएँ उर्दू गजल के मानकों पर खरी उतरती हैं, वे तो उर्दू गजल कहलाएँगी और जो सजल के मानकों पर खरी उतरती हैं वे सजल, किंतु इस पूरे कालखंड में इन दोनों के गुणों को लिए हुए जो रचनाएँ हुईं उन्हें क्या माना जाए? या फिर ऐसी रचनाएँ जो गजल और सजल दोनों के गुणों से युक्त होंगी, वे क्या कहलाएँगी? तो इस प्रश्न के सहज उत्तर की खोज डॉ. सलफनाथ यादव 'प्रेम' जी ने की। उन्होंने कहा कि जो रचनाएँ न तो पूरी तरह से गजल हैं और न पूरी तरह से सजल, किंतु वे काव्यमय एवं स्वयं में पूर्ण रचनाएँ तो हैं ही; अतः उन्हें 'पूर्णिका' कहा जाना चाहिए। डॉ. सलफनाथ यादव 'प्रेम' जी का यह कथन इस दृष्टि से भी उचित है कि इस प्रकार की रचनाओं को हिंदी गजल, गीतिका, मुक्तिका, तेरी, नागरी गजल आदि अनेक नाम दिए गए, किंतु उनका कोई सुनिश्चित व्याकरण न होने के कारण उन्हें विधा के रूप में स्वीकार किया जाना संभव न हो सका। अतः इन रचनाओं के लिए 'पूर्णिका' शब्द का प्रयोग अधिक समीचीन है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 'सजल' हिंदी गीतिकाव्य परंपरा में सम्मिलित होने वाली एक ऐसी नवीन विधा है, जिसका विकास हिंदी के द्विपंक्तिक पारंपरिक छंदों से हुआ है। इस विधा के विकास का मूल उद्देश्य हिंदी कवियों को उर्दू गजल के आकर्षण से बाहर निकालने के साथ ही हिंदी में उर्दू

गजल के समानांतर एक ऐसी विधा की स्थापना करना है, जो देवनागरी लिपि के मानक स्वरूप का संरक्षण करे और हिंदी भाषा के प्रचलित स्वरूप के प्रयोग से पाठक को वही आनंद प्रदान करे, जिसकी खोज में वह उर्दू गजल की ओर आकर्षित होता है। यहाँ यह बात भी समझ लेना आवश्यक है कि 'सजल' का उद्देश्य यह नहीं कि उर्दू या किसी अन्य भाषा का विरोध किया जाए, अपितु हिंदी भाषा की मौलिकता को संरक्षित करने के सद्प्रयास का नाम ही 'सजल' है। अर्थात् 'सजल' के माध्यम से यह कहने का प्रयास नहीं किया गया है कि 'सजल' में उर्दू अथवा अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग पूरी तरह से वर्जित कर देना ही अनिवार्य है, अपितु यह निवेदन किया गया है कि जब तक हिंदी शब्दकोश में आपके भावों को प्रकट करने हेतु सटीक शब्दों का अभाव न हो तब तक आप किसी अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग सायास कदापि न करें। अर्थात् 'सजल' में हिंदी भाषा के प्रचलित स्वरूप को स्वीकार्यता प्रदान की गई है, किंतु अनावश्यक रूप से किसी अन्य भाषा के शब्दों के प्रयोग की वर्जना है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'सजल' विधा हिंदी भाषा तथा व्याकरण दोनों की संपोषक है।

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी उन सजलकारों में से हैं, जिनके एकल सजल-संग्रह सबसे पहले प्रकाशित हुए। डॉ. यायावर जी के अब तक दो सजल-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, 1- तृषा का आचमन, 2- जलती रेत : दहकता मरुथल। इन कृतियों में से 'तृषा का आचमन' कृति को सजल विधा के प्रथम एकल संग्रह के रूप में स्वीकार किया गया। डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों में नवगीत के वे सभी तत्व विराजमान हैं, जो नवगीत विधा के मूल तत्व हैं। इन तत्वों को डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों में अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है।

नवगीत का सबसे प्रमुख तत्व है, यथार्थ चित्रण। इस बिंदु पर विमर्श करने से ज्ञात होता है कि साहित्य में जिस आदर्शवाद को चित्रित किया जाता रहा है, वास्तविकता में धरातल पर वैसा सामाजिक स्वरूप होता नहीं है; यानी कि धरातल का यथार्थ साहित्य के कल्पित आदर्शवाद से भिन्न पाया जाता है जोकि सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार का है, किंतु समाज में व्याप्त विकृतियाँ इतनी अधिक हैं कि यहाँ सकारात्मक यथार्थ नगण्य-सी प्रतीत होती है। इस वास्तविक यथार्थ को नवगीतों के महत्वपूर्ण तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। इस दृष्टि से यदि डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों को देखा जाए तो ज्ञात होगा कि इन सजलों में सजलकार ने वास्तविक यथार्थ को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। यायावर जी की एक सजल के कुछ पदिक दृष्टव्य हैं-

इस युग में किरदार की बातें।
मत सोचो बेकार की बातें।।

हत्या, चोरी, लूट, अपहरण।
रोज यही अखबार की बातें।।

चारा, चीनी, कोल घोटाले।

बहुत बड़ी सरकार की बातें।।'-6

यहाँ सजलकार मानवीय संवेदनाओं और भारतीय राजनीति के बिगड़ते स्वरूप और उसके भोंड़े यथार्थ को स्पष्ट स्वर देता हुआ दृष्टिगत हुआ है। निःसंदेह वर्तमान समय में मानव मूल्यों का ह्रास इस कदर हुआ है कि किसी पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि सजलकार कहता है कि इस युग में किरदार यानी कि व्यक्तित्व के सापेक्ष उसके आचरण की अपेक्षा तक बेमानी लगने लगी है। सच तो यह है कि इस प्रकार की बातें करना भी अब मात्र समय की बर्बादी ही है। जहाँ गाँव के प्रधान से लेकर देश के सर्वोच्च पदों तक के सभी आला अधिकारी, कर्मचारी और जन प्रतिनिधि पहले अपना कमीशन तय करते हैं उसके बाद ही फाइल साइन करते हैं। प्रधान और प्रधानाचार्य मिलकर मिड-डे-मील खा जाते हैं, आँगनबाड़ी की पंजीरी भैंसों के लिए बेच दी जाती है, सभासद और पार्षद गली-खडंजे खा जाते हैं, महापौर नाले-नालियाँ खा जाता है, विधायक-सांसद हाई-वे खा जाते हैं। प्राचार्य पाँच रुपये की काँच की परखनली को पाँच सौ रुपये में खरीदकर बच्चों की प्रयोगशाला खा जाते हैं और फिर भी जो कुछ बच भी जाता है, उसे सरकारी कर्मचारी नामक दीमक चुन लेती है। वर्तमान के इसी यथार्थ को सजलकार ने बड़े सहज ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। आज का मीडिया भी बस उतना ही छापता है, जितना कि उसके स्वयं के स्वास्थ्य के अनुकूल हो। इसी परिप्रेक्ष्य में एक पदिक और देखें-

'बचपन ढ़ला बुढ़ापे में।

खोई किधर जवानी बोल।।'-7

एक यथार्थ यह भी है कि आज के समय में लोगों के घरों में या तो बचपन दिखाई देता है या फिर बुढ़ापा; जवानी की हालत यह है कि या तो वह गरीबी और भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ चुकी है या अपनी आजीविका की खोज में किसी महानगर की तंग गलियों में कोचिंग - कोचिंग खेल रही है या दो जून की रोटी कमाने के लिए मत्था फोड़ रही है। भारतीय राजनीति के एक कड़वे यथार्थ को स्वर देता एक पदिक और देखें-

'वर्षों पहले जिनको जिला बदर हो जाना था।

'आज वही बैठे हैं घर में बनकर बड़ी बुआ।।'-8

भारतीय राजनीति का एक दुर्दांत सत्य यह भी है कि यहाँ नेता वही बनता है, जो लुटेरों का सरदार है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जनता में सौ में से पिच्यानवें ऐसे हैं, जिनमें भलाई छोड़ सब गुण हैं और फिर बचे पाँच भले लोग; तो सोचने वाली बात है कि उन पाँच प्रतिशत लोगों में से कोई चुनाव लड़कर जीतेगा भी कैसे? यानी कि बात वहीं आ गई घूम फिरकर, जो जितना बड़ा गुंडा वह उतना बड़ा नेता।

इस प्रकार डॉ. यायावर जी की सजलों में उच्च कोटि के यथार्थ-बोध का दर्शन होता है।

नवगीत के एक महनीय तत्व के रूप में मानव मूल्य, पारिवारिक व मानवीय संवेदनाओं को भी माना गया है। इस दृष्टि से भी डॉ. यायावर जी की सजलें नवगीत के बेहद करीब कही जा सकती हैं। एक पदिक देखें -

'फांसी देकर निरपराध को मुक्त कर दिया अपराधी को।
बोला न्यायधीश कि अब यह न्याय पूर्ण निष्पक्ष हो गया।।'-9

मानवीय संवेदनाओं का ह्रास इस प्रकार हुआ है कि जहाँ एक ओर जनता सर्वाधिक विश्वास न्यायालयों पर करते हुए यह विचार करती है कि न्यायालय में उसे न्याय अवश्य ही मिलेगा, किंतु संवेदनहीन न्यायधीश भी अब बड़ी बेशर्मी से धन के लालच या सत्ताओं के दबाव में निरपराधों को सजा सुनाने में नहीं हिचकते। समय के साथ एकल परिवारों में मरती पारिवारिक संवेदनाओं को उजागर करते हुए दो पदिक देखें -

'बेच दी बाबा की फोटो आज उसने हाट में।
पुत्र इस दीवार पर अब पेंटिंग लटकाएगा।।

हो गया बूढ़ा चलेगी अब कुल्हाड़ी देखिए।
फलसफा दुनियाँ का यह गिरता सजर बतलाएगा।'-10

पारिवारिक विघटन से उत्पन्न एकल परिवारों में अपने पूर्वजों के प्रति जो आधुनिक पीढ़ी की संवेदना घटी है, उसी का परिणाम है कि आज दीवारों पर रंग-बिरंगी चित्रकारियाँ तो आसानी से मिल जाती हैं, किंतु घर के बुजुर्गों के चित्र दिखाई नहीं देते।

आधुनिक परिवारों की स्थिति यह है कि घर के बुजुर्ग इतने अकेले हो गए हैं कि उन्हें प्रत्येक क्षण का जीवन एक कठिन घड़ी-सा प्रतीत होने लगा है।

नवगीत की प्रमुख विशेषताओं में से एक विशेषता नवीन बिंब-विधान भी है। इस दृष्टि से भी डॉ. यायावर जी की सजलें नवगीतनुमा ही हैं। संश्लिष्ट बिंब का एक पदिक देखें -

'अब न घूंघट न पनघट न धीमी हंसी।
खो गया है कहीं लाज का आभरण।।'-11

उपर्युक्त पदिक के प्रथम पल्लव में 'घूंघट' और 'पनघट' दृश्य बिंब हैं, 'धीमी हंसी' श्रव्य बिंब है तथा द्वितीय पल्लव में लज्जा के भाव की उपस्थिति के कारण भाव बिंब है। इस प्रकार संपूर्ण पदिक में दो से अधिक बिंब होने के कारण संश्लिष्ट बिंब है।

इसी प्रकार एक पदिक के द्वितीय पल्लव में श्रव्य बिंब का उदाहरण देखें-

'फिर किसी कुंज में बज उठी बांसुरी।।'-12

यहाँ बाँसुरी के बजने की ध्वनि का आस्वादन कान के माध्यम से होने के कारण श्रव्य बिंब है।

इसी प्रकार स्पर्श्यध्त्वक बिंब का एक उदाहरण देखें-

'दहकी आग चिनारों में।
घाटी है अंगारों में।।'-13

उपर्युक्त पदिक में आग के दहकने की अनुभूति त्वचा के माध्यम से होगा, अतः यहाँ स्पर्श्यध्त्वक बिंब है।

उपर्युक्त उदाहरणों पर दृष्टिपात करने पर स्पष्ट है कि डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों में विविध प्रकार के नवीन बिंब उपस्थित हैं, जो कि उनकी सजलों को नवगीत के सापेक्ष खड़ा करने में पूर्णरूपेण सक्षम हैं।

नवीन प्रतीकों का प्रयोग भी नवगीत का एक महत्वपूर्ण तत्व है। इस दृष्टि से डॉ. यायावर जी की सजलों को देखें, तो इन सजलों में भरपूर मात्रा में नवीन प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए एक सजल के कुछ पदिक दृष्टव्य हैं-

'कंचन कुर्सी वाले सब।
तन मन धन के काले सब।।

भोलापन आँखों में है।
मन में तीखे भाले सब।।'-14

उपर्युक्त पदिकों में 'कंचन कुर्सी वाले' वर्तमान नेताओं का प्रतीक है और 'तीखे भाले' आधुनिक मानव की कुत्सित मानसिकता का प्रतीक। इसी प्रकार नवीन प्रतीकों से परिपूर्ण एक पदिक और दृष्टव्य है -

'सूर्य - चंद्र तक हार मान लेते हैं तम से कभी-कभी।
जीत न पाया अंधकार दीपक की नन्ही जान से।।'-15

यहाँ सूर्य और चंद्रमा को भले मनुष्यों के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है, वहीं दीपक को एक दृढ़ संकल्पित वीर योद्धा यानी कि भारतीय सीमाओं की रक्षा में तैनात एक सैनिक के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया है, जो अपनी अंतिम श्वास तक दुश्मन को अपनी सीमा में प्रवेश नहीं करने देता।

उपर्युक्त पदिकों के माध्यम से स्पष्ट है कि जिस प्रकार नवगीत में नवीन प्रतीकों का स्थान महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार डॉ. यायावर जी की सजलें भी नवीन प्रतीकों के प्रयोग से परिपूर्ण दिखाई देती हैं।

तदुपरांत नवगीत की एक अन्य प्रमुख विशेषता नवीन छंद और नवीन लय विधान की है, तो इस दृष्टि से भी डॉ. यायावर जी की सजलें नवगीत के समक्ष ही हैं क्योंकि इनका शिल्प विधान बहुत सीमा तक नवगीत के विधान के समीपस्थ है। तथापि सजल का अपना अलग-अलग शिल्प विधान है, अतः इन सजलों को नवगीत तो नहीं कहा जा सकता, किंतु यह अवश्य स्पष्ट है कि डॉ. यायावर की सजलों में नवगीत के प्रमुख तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

निष्कर्ष :- नवगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, विकास क्रम, भाव तथा कला पक्ष पर दृष्टिपात करते हुए डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी के अब तक प्रकाशित दोनों सजल-संग्रहों में संकलित सजलों का सांगोपांग अध्ययन करने एवं साहित्य विश्लेषण व गवेषणात्मक अनुशीलन के पश्चात् निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजलों में नवगीत के सभी महत्वपूर्ण तत्व उपस्थित हैं। इन सजलों का भाव पक्ष उतना ही धारदार है जितना कि एक उत्तम कोटि के नवगीत को स्वीकार किया जाता है। ठीक उसी प्रकार, इन सजलों का कला पक्ष भी उतना ही सटीक एवं पुष्ट दिखाई देता है, जितना कि नवगीत का। इस प्रकार स्पष्ट है कि डॉ. यायावर जी की सजलें नवगीत के सभी प्रमुख तत्वों से परिपूर्ण हैं।

संदर्भ :- (HSS Formet)

1. मा. चंद्रदेव सिंह रू पाँच जोड़ बाँसुरी य पृष्ठ संख्या 10-11, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 9 अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता -27 य प्रथम संस्करण : 1969 ई.
2. मा. कृष्ण कुमार 'कनक' : हिंदी गीत परंपरा में नवगीत : 'नवगीत : जब गीत के बदले तेवर', मा. नरेश साण्डिल्य : पृष्ठ संख्या 19, अविकल्प प्राण प्रकाशन, प्रज्ञा हिंदी सेवार्थ संस्थान ट्रस्ट, 'कनक-निकुंज', ठार मुरली नगर, गुंदाऊ, लाइन पार, फिरोजाबाद - 283203, प्रथम संस्करण : 2021 ई.
3. मा. भारतेंदु मिश्र : नवगीत एकादश य पृष्ठ संख्या 23, अयन प्रकाशन, 1/20, महरौली, नई दिल्ली-110030, प्रथम संस्करण : 1994 ई.
4. डॉ. शंभुनाथ सिंह : नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ संख्या 6-7, पराग प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली - 32, प्रथम संस्करण : 1985 ई.
5. मा. कृष्ण कुमार 'कनक' : तीसरी आँख और सजल य पृष्ठ संख्या 94-95, अविकल्प प्राण प्रकाशन, प्रज्ञा हिंदी सेवार्थ संस्थान ट्रस्ट, 'कनक-निकुंज', ठीक मुरली नगर, गुंदाऊ,

लाइन पार, फिरोजाबाद - 283203, प्रथम संस्करण : 2023 ई.

6. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : तृषा का आचमन, पृष्ठ संख्या 35, जवाहर पुस्तकालय, हिंदी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक, मथुरा -281001, प्रथम संस्करण : 2017 ई.
7. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : तृषा का आचमन, पृष्ठ संख्या 21, जवाहर पुस्तकालय, हिंदी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक, मथुरा -281001, प्रथम संस्करण : 2017 ई.
8. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : तृषा का आचमन, पृष्ठ संख्या 26, जवाहर पुस्तकालय, हिंदी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक, मथुरा -281001, प्रथम संस्करण : 2017 ई.
9. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : तृषा का आचमन, पृष्ठ संख्या 28, जवाहर पुस्तकालय, हिंदी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक, मथुरा -281001, प्रथम संस्करण : 2017 ई.
10. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : तृषा का आचमन, पृष्ठ संख्या 43, जवाहर पुस्तकालय, हिंदी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक, मथुरा -281001, प्रथम संस्करण : 2017 ई.
11. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : जलती रेतरूदहकता मरुथल, पृष्ठ संख्या 22, निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 37, 'शिवराम कृपा', विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा-10, प्रथम संस्करण : 2021 ई.
12. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : जलती रेतरूदहकता मरुथल, पृष्ठ संख्या 59, निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 37, 'शिवराम कृपा', विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा-10, प्रथम संस्करण : 2021 ई.
13. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : जलती रेतरूदहकता मरुथल, पृष्ठ संख्या 24, निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 37, 'शिवराम कृपा', विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा-10, प्रथम संस्करण : 2021 ई.
14. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : जलती रेतरूदहकता मरुथल, पृष्ठ संख्या 43, निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 37, 'शिवराम कृपा', विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा-10, प्रथम संस्करण : 2021 ई.
15. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' : जलती रेतरूदहकता मरुथल, पृष्ठ संख्या 55, निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 37, 'शिवराम कृपा', विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा-10, प्रथम संस्करण : 2021 ई.

कृष्ण कुमार 'कनक' - 'कनक-निकुंज', ठार मुरली नगर, गुंदाऊ, लाइन पार, फिरोजाबाद - 283203 (उत्तर प्रदेश)
मो. : 7017646795, 9259648428, ई-मेल : kanakkavya@gmail.com

✧ ✧ ✧

मुंशी प्रेमचंद जी की कुर्सी

डॉ. मुकेश 'असीमित'

प्रेमचंद जी की कुर्सी पर बैठने का सपना तो हर लेखक देखता है, लेकिन उसमें बैठने का साहस कम ही लोगों में होता है। आज के लेखक को तो अपनी कुर्सी की इतनी चिंता रहती है कि वह लिखने से ज्यादा उसे संभालने में लगा रहता है। कोई न कोई उसे खींचने की कोशिश करता रहता है। प्रेमचंद जी की कुर्सी की मजबूती का राज शायद यह था कि वे बिना किसी भय के सच्चाई लिखते थे। आजकल का लेखक सच्चाई लिखने से पहले सौ बार सोचता है कि कहीं उसकी कुर्सी न चली जाए। कुर्सी पर लिखी जाने वाली रचनाएँ ज्यादा बिकती हैं क्योंकि पाठकों को भी अब साहित्य में कुर्सी का समावेश अच्छा लगता है, उसे अपने पास में ही फर्श पर बैठे किसी लेखक की रचनाएँ पढ़ना तौहीन-सा लगता है, उसकी पाठकीय क्षमता पर लानत! इस दौर में प्रेमचंद की कुर्सी एक प्रेरणा है, लेकिन आज के लेखक के लिए एक चुनौती भी।

मुंशी प्रेमचंद जी की कुर्सी में निठल्ला-सा मुखपोथी, मेरा मतलब फेसबुक की दीवारों को आवारा आशिक की तरह छेड़ रहा था कि एक पोस्ट पर नजर पड़ी, पोस्ट मेरे और आप सबके प्रिय हिंदी साहित्य के पितामह मुंशी प्रेमचंद को लेकर थी, तो स्वाभाविक था अपनी आवारगी को लगाम देकर कुछ-कुछ साहित्यिक गंभीरता के लक्षण प्रगट करूँ, मैं तुरंत गोलमाल का रामप्रशाद बन कर उसे पढ़ने लगा। पोस्ट मुंशी प्रेमचंद जी की कुर्सी को लेकर था, मेरा ध्यान कुर्सी से हट ही नहीं रहा था, वैसे भी कुर्सी सभी का मन मोह लेती है, आज कल तो बाजार में ऐसी-ऐसी कुर्सी आती है कि मन करता है चार कुर्सियाँ चैम्बर में लगा लूँ, अपनी दोनों टाँगे (क्या करूँ भगवान ने दो ही दी है) दो अलग-अलग कुर्सियों पर पसार लूँ, ऐसे ही जैसे आज कल के हमारे मूर्धन्य साहित्यकार मनचाही कुर्सियों पर अपने पैर जमाए रखते है, आजकल वो ही सफल साहित्यकार है, जो एक से अधिक कुर्सियों पर बैठा है और दूसरी कुर्सियों पर भी अपने पाँव फैलाए हुए है, पैर भी भगवान् ने दो नहीं इनके तो दस-दस पैर दिए हुए है, लेखक ये, कथाकार ये, आलोचक ये, समीक्षक ये, प्रकाशक ये, विमोचन कर्ता ये, सभी कुर्सियाँ इनके पास! खैर कुर्सी के साथ लिखा लेख भी बता देता हूँ - मुंशी प्रेमचंद जी कानपुर आकर धनपत राय-नवाब राय से मुंशी प्रेमचंद बन गए थे, बिलकुल ठीक

विपरीत आजकल हर कोई लेखक मुंशी प्रेमचंद से धनपत राय नबाब राय बनना चाहता है! हिंदी के कथा सम्राट मारवाड़ी इंटर कॉलेज में इसी कुर्सी पर बैठते थे। आज यह ऐतिहासिक धरोहर बन गई है। जिन्होंने प्रेमचंद का साहित्य पढ़ा है, उन्हें मालूम होगा कि कानपुर की किस्सागोई वाली फितरत और बहुरंगी किरदारों ने कथा सम्राट को मजे का मसाला दिया। इसकी महक उनकी रचनाओं में अक्सर मिलती है। न जाने कितने लेख, विचार, कहानियाँ और उपन्यास उस कुर्सी पर बैठकर ख्याल में आए होंगे और उन्हें पन्नों में उकेरकर इस दुनिया को भेंट किए होंगे। हिंदी युग का स्वर्णिम काल।

आज जब हिंदी कथा जगत, पितामह प्रेमचंद जी को याद कर रहा है, तो इस कुर्सी के दीदार करना भी जरूरी है। प्रेमचंद की कुर्सी जो आज भी सुरक्षित है, कोई कुत्सित विचारों की जंग नहीं लगी, वक्त की दीमक चाट नहीं पाई। कुर्सी के पाए, हत्थे, सिरहाना, सीट सब जस की तस!

देख कर लगता है, आजकल की कुर्सियाँ कितनी कमजोर होती हैं। नट-बोल्ट ढीले होते हैं। ढीले नहीं होते, तो ढीले करने वाले दिन-रात लगे रहते है! सीटें फट जाती है, हालाँकि प्रेमचंद के फटे जूतों से तो उँगलियाँ बाहर नजर आती है, लेकिन कुर्सी की फटी सीट से लेखक की झुकती कमर और बेपेंदे के लोटे का सा नितम्ब किसी को नजर नहीं आता! कुर्सियाँ बनाई ही इस तरह जाती है कि जो कोई उस पर बैठे, उसे ऐसा लगे जैसे ये उसी के लिए बनी हो और उसी के साथ जाएगी! कुर्सी में पायों पर भी पहिये लगाए जाते हैं ताकि कुर्सी को मनपसंद जगह पर ले जाया जा सके, ऐसी जगह जहाँ उसके विचारों पर स्वामीभक्तों की भीड़ साष्टांग लोटने लगे, खुद भी अपने विचारों को देश, काल और परिस्थिति की माँग के अनुसार पलटी मार सके, अब मानो लेफ्ट विंग के आईडिया आ रहे हों, विचारों में कम्युनिस्टवाद की झलक हो, आपके इस कृत्य से सत्ता को अगर अपनी कुर्सी हिलती नजर आए तो फिर आपकी कुर्सी कौन बचाएगा, कुर्सी ऐसी की तुरंत घूमकर आपके विचारों को भी दायी तरफ मोड़ सके, आज कल लेखक को एक ही विधा से जुड़े रहना खतरे से खाली नहीं है, ये बिलकुल रेलवे विंडो की लाइन की तरह है, आपको पता लगेगा कि आपकी वाली लाइन लम्बी होती जा रही है, खिड़की तक पहुँचने में सालों लग जाएँगे और जब तक पहुँचे तब तक शायद साहित्यिक मलाई बंटना खत्म ही हो जाए! आपको हमेशा दूसरों की थाली में घी नजर आने लगता है, दूसरी लाइन छोटी नजर आने लगती है, तो आपको कुर्सी दूसरी लाइन में लगानी पड़ेगी! कुर्सी में हत्थों का क्या काम, पैरों को टिकाने के लिए फूट रेस्ट का क्या काम, प्रेमचंद जी की कुर्सी में ये थे क्योंकि उनके लिखे में हाथ भी होते थे, पैर भी और सर भी, आजकल वही बिकता है जो बेसिर पैर हो, आपके हाथ छुपे रहें, क्योंकि हाथ दिखेंगे तो लोगों को पता चलेगा कि हाथ तो आपके है ही नहीं, ये तो किसी और के हाथ है, जो आप के ऊपर वरदहस्त रूप में विराजित है। प्रेमचंद जी की कुर्सी एक ही जगह फिक्स है, घूम नहीं सकती। आजकल कुर्सियाँ बनाई जाती हैं रिवॉल्विंग ताकि उस पर कभी भी पाला बदला जा सके। सरकार बदले तो भाव बदल जाए। लेखक को कुर्सी घूमती हुई चाहिए जो आज लिखा,

कल उससे पलट सके। थ्री सिक्सटी डिग्री बयान बदल सके। दल बदलते हैं, तो आपके लेखन की भक्ति की दिशा भी बदलनी चाहिए। यह कुर्सी पर बने रहने के लिए जरूरी होता है।

कुर्सी सिर्फ लिखने के लिए नहीं कुछ और भी प्रयोजन है। आयोजन, समितियों, अकादमियों की कुर्सी जीवन धन्य कर देती है। लेखक सिर्फ लेखक ही रहे, तो प्रकाशकों और संपादकों की चापलूसी करता रह जाएगा, प्रकाशकों के घर भरने के अलावा और क्या कर पाएगा। आजकल जितने लेखक है, उतने तो पाठक भी नहीं। अब अपनी खुद की ही रचनाओं को पढ़ने का समय नहीं, औरों की कहाँ से पढ़ेंगे। थोड़े दिन में देख लेना, पाठक भी पेड़ मिलने लगेंगे जैसे एड देखने के पैसे मिलते हैं ना, वैसे ही पढ़ने के भी पैसे मिलेंगे।

प्रेमचंद जी की कुर्सी से लगाव तो सभी को है लेकिन कुर्सी सभी अपने ढंग की डिजाइन कर बनाना चाहते हैं। कुर्ता, धोती, टोपी ये सब तो हु-ब-हू प्रेमचंद जी के जैसी पहन लेंगे, कोई शर्म नहीं। प्रेमचंद जी ने जितने फटे जूते पहने, उससे ज्यादा फटे में नजर आ सकते हैं, लेकिन कुर्सी अपनी डिजाइन की होनी चाहिए।

प्रेमचंद जी जो कुर्सी पर बैठते थे, उसमें गोंद नहीं लगा था, चिपकती नहीं थी। अब कुर्सी पर बैठे और वो चिपके नहीं तो बड़ा खतरा है। कुर्सी खाली होते ही कोई भी बैठने को उतावला रहेगा। कुर्सी चिपकी रहेगी, तो कुर्सी जाने का खतरा नहीं। जहाँ भी जाएँगे, कुर्सी साथ जाएगी। एक खतरा है, कुर्सी की डिजाइन चोरी हो गई, तो कोई नकली कुर्सी भी ला सकता है और उसे असली बताकर बैठ जाएगा कि ये ही असली है।

वैसे सरकार से अनुरोध है कि संग्रहालय में कुर्सी पर सुरक्षा बढ़ा दें। कुछ लोग कुर्सी की नकल के लिए उसे वहाँ से चुरा भी सकते हैं। हर हाल में प्रेमचंद जी बना हुआ देखना है!

अब कुछ और कस्टम डिजाइन जरूरी है, जैसे कुर्सी जो बनेगी उसके पाये लंबे रखेंगे ताकि पैर जमीन तक पहुँचे ही नहीं। साहित्य के रंगते कीड़ों का कोई भरोसा नहीं, कब कदमों में पहुँचकर रंगते हुए ऊपर चढ़ जाएँ और कब कुर्सी हथिया लें, कहा नहीं जा सकता। बड़ा धोखा है। साहित्यकार का जीवन भी बड़ा संघर्षमय है। आधी जिंदगी साहित्य सृजन में लगा दी, आधी से कुछ कम कुर्सी हथियाने में और अब बची हुई कुर्सी बचाने में लगा रहे हैं।

कुर्सी पर बैठे लेखक की हालत वैसी ही हो जाती है जैसे महँगाई के नीचे दबा आम आदमी। लोग समझते हैं कि लेखक की कुर्सी आरामदायक होती है, लेकिन असल में यह काँटों का ताज है। अगर लेखक ने किसी विशेष विचारधारा का समर्थन कर दिया तो विरोधी विचारधारा वाले उसे कुर्सी से गिराने का पूरा प्रयास करेंगे और अगर लेखक ने तटस्थ रहकर लिखा, तो सब तरफ से पत्थर बरसाते हैं।

प्रेमचंद जी की कुर्सी पर बैठने का सपना तो हर लेखक देखता है, लेकिन उसमें बैठने का साहस कम ही लोगों में होता है। आज के लेखक को तो अपनी कुर्सी की इतनी चिंता रहती है कि वह लिखने से ज्यादा उसे संभालने में लगा रहता है। कोई-न-कोई उसे खींचने की कोशिश करता रहता है। प्रेमचंद जी की कुर्सी की मजबूती का राज शायद यह था कि वे बिना किसी भय के सच्चाई लिखते थे। आजकल का लेखक सच्चाई लिखने से पहले सौ बार सोचता है कि कहीं उसकी कुर्सी न चली जाए। कुर्सी पर लिखी जाने वाली रचनाएँ ज्यादा बिकती हैं क्योंकि पाठकों को भी अब साहित्य में कुर्सी का समावेश अच्छा लगता है, उसे अपने पास में ही फर्श पर बैठे किसी लेखक की रचनाएँ पढ़ना तौहीन-सा लगता है, उसकी पाठकीय क्षमता पर लानत! इस दौर में प्रेमचंद की कुर्सी एक प्रेरणा है, लेकिन आज के लेखक के लिए एक चुनौती भी। प्रेमचंद जी ने अपने लेखन से जो स्थान बनाया, वह आज के लेखक को रिवॉल्विंग कुर्सी पर बैठकर बनाना है। यह दौर ऐसा है जहाँ हर रोज कुर्सी की परीक्षा होती है और लेखक को यह साबित करना पड़ता है कि वह कुर्सी के लायक है।

डॉ. मुकेश 'असीमित', गंगापुर सिटी, राजस्थान

मो. : 9785007828

✧ ✧ ✧

हरियाणवी साहित्यकार : बाबू बालमुकुंद गुप्त - परिचयात्मक विश्लेषण

डॉ. (श्रीमती) धनेश्वरी दुबे

गुप्त जी के साहित्य में राष्ट्रप्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने अपने निबंधों के द्वारा तत्कालीन भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया है और इसी संदर्भ में राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का भी वर्णन किया है। उन्होंने केवल देशभक्ति की भावना पर ही बल नहीं दिया बल्कि व्यंग्यात्मक शैली द्वारा ब्रिटिश सरकार की भारत विरोधी नीतियों पर भी प्रहार किया है। वे देशप्रेम से बढ़कर और कुछ भी प्रिय नहीं समझते थे लेकिन उनकी राष्ट्रीय भावना जातीयता पर आधारित थी। उन्होंने तत्कालीन जनता की हीन भावना को यथासंभव दूर करने का प्रयास किया। संसार में भारतवासियों को श्रेष्ठ बताते हुए वे लिखते हैं - ''श्रम में, बुद्धि में, विद्या में, काम में, वत्तृता में सहिष्णुता में, किसी बात में देश के निवासी संसार में किसी जाति के आदमियों से पीछे रहने वाले नहीं हैं बरंच एक-दो गुण भारतवासियों में ऐसे हैं कि संसार भर के किसी जाति के लोग उनका अनुसरण नहीं कर सकते।''

प्रस्तावना -

हरियाणा वर्तमान में सर्वाधिक समृद्ध राज्यों में से एक है। वैदिक भूमि हरियाणा भारतीय सभ्यता का पालना रही है। हरियाणा का नाम लेते ही हमारे मस्तिष्क में एक ऐसे प्रदेश की छवि उभर आती है, जिसकी पुरातन धरोहर अत्यंत समृद्ध है। महर्षि वेदव्यास ने इसी पावन धरा पर महाभारत काव्य की रचना की है। 5000 साल पहले यहीं पर महाभारत के युद्ध में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का दिव्य संदेश देकर कर्त्तव्य बोध कराया था। पुरातन काल में इस भू-भाग को ब्रह्मवर्त, आर्यावर्त और ब्रह्मोप्देष के नाम से जाना जाता था। यह नाम हरियाणा की इस धरा पर भगवान ब्रह्मा के अवतरण, आर्यों के निवास स्थान और वैदिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार पर आधारित है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह क्षेत्र सृजन की भूमि है और इस धरा पर स्वर्ग के समान है। साहित्यिक परंपरा के लिए यह हमेशा धरती पर स्वर्ग की भूमि रही है।

बाबू बालमुकुंद गुप्त : संक्षिप्त जीवन परिचय -

बाबू बालमुकुंद गुप्त आधुनिक काल के भारतेंदु युग के प्रमुख साहित्यकार है। उनका जन्म हरियाणा के झज्जर जिले के गुड़ियाना गाँव में 14 नवम्बर, 1865 ई. को हुआ। वे एक होनहार छात्र थे परंतु पारिवारिक कारणों से वे आठवीं कक्षा तक ही विधिवत् शिक्षा प्राप्त कर सके। अध्ययन में रुचि के कारण उन्होंने 21 वर्ष की आयु में मीडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की

थी। उनकी आरंभिक शिक्षा उर्दू में हुई, बाद में उन्होंने हिंदी सीखी। बालमुकुंद गुप्त अपने काल के लोकप्रिय साहित्यकार थे, अनेक विद्वान उन्हें भारतेंदु युग और द्विवेदी युग की कड़ी मानते हैं। बालमुकुंद गुप्त एक कुशल संपादक थे। उन्होंने उर्दू भाषा में छपने वाले 'अखबार-ए-चुनाव' तथा 'कोहेनूर' का संपादन किया। 1886 ई. के पश्चात् उन्होंने तीन दैनिक पत्रों 'हिन्दोस्तान', 'हिंदी बंगवासी' तथा 'भारत मित्र' का संपादन भी किया। वे 'भारत प्रलाप' 'वृंदावन', 'अवधपंच', 'विक्टोरिया', 'जमाना', 'उर्दू-ए-मोअल्ला' आदि पत्रों से भी जुड़े हुए थे।

बाबू बालमुकुंद गुप्त की साहित्यिक कृतियाँ : परिचय -

गुप्त जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। उन्होंने गद्य और पद्य की विभिन्न विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। परंतु व्यंग्यात्मक निबंध के क्षेत्र में विशेष ख्याति हासिल की है। गुप्त जी की साहित्यिक कृतियाँ इस प्रकार है -

निबंध संग्रह - 'शिव शंभू के चिट्ठे', 'चिट्ठे और खत', 'खेल तमाशा'

काव्य संग्रह - स्फुट - कविताएँ (1905)

अनुवाद - 'रत्नावली की नाटिका' 'हरिदास' 'मण्डल भगिनी' आदि प्रकाशित है।

बालमुकुंद गुप्त : साहित्यिक प्रवृत्तियाँ -

(1) भावगत प्रवृत्तियाँ -

गुप्तजी ने प्रायः राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत साहित्य की रचना की है। इनके साहित्य की प्रमुख भावगत प्रवृत्तियाँ इस प्रकार है -

1. राष्ट्रप्रेम की भावना - गुप्त जी के साहित्य में राष्ट्रप्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने अपने निबंधों के द्वारा तत्कालीन भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया है और इसी संदर्भ में राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का भी वर्णन किया है। उन्होंने केवल देशभक्ति की भावना पर ही बल नहीं दिया बल्कि व्यंग्यात्मक शैली द्वारा ब्रिटिश सरकार की भारत विरोधी नीतियों पर भी प्रहार किया है। वे देशप्रेम से बढ़कर और कुछ भी प्रिय नहीं समझते थे लेकिन उनकी राष्ट्रीय भावना जातीयता पर आधारित थी। उन्होंने तत्कालीन जनता की हीन भावना को यथासंभव दूर करने का प्रयास किया। संसार में भारतवासियों को श्रेष्ठ बताते हुए वे लिखते हैं - ''श्रम में, बुद्धि में, विद्या में, काम में, वक्तृता में सहिष्णुता में, किसी बात में देश के निवासी संसार में किसी जाति के आदमियों से पीछे रहने वाले नहीं हैं बरंच एक-दो गुण भारतवासियों में ऐसे हैं कि संसार भर के किसी जाति के लोग उनका अनुसरण नहीं कर सकते।''

2. व्यंग्यात्मकता - बालकृष्ण गुप्त बड़े सशक्त व्यंग्यकार है। तत्कालीन वाइसराय लार्ड कर्जन को अपने व्यंग्य और हास्य का प्रमुख आलंबन बनाया। एक बार कर्जन ने भारतवासियों को झूठा कहा था, उसी को लक्ष्य कर गुप्त जी ने कितना तीखा प्रहार किया है -

''हमने सच की सुनी कहानी, जिससे मरे झूठ की नानी।
सच है सभ्य देश की चीज, तुमको उसकी कहाँ तमीज?

औरों को झूठा बतलाना, अपने सच की डींग उड़ाना।
ये ही पक्का सच्चापन है, सच कहना तो कच्चापन है।
बोले और करें कुछ और, यही सभ्य सच्चे के तीर।
मन में कुछ मुँह में कुछ और, यही सत्य कर लो गौर।
झूठ को जो सच कर दिखालावे, सो ही सच्चा साधु कहावे।
मुँह जिसका हो सके न बंद, समझो उसे सच्चिदानंद।''

इसी प्रकार 'कर्जनाना' शीर्षक कविता में इन्होंने कर्जन को 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू' की उक्ति चरितार्थ करते हुए हास्य का पात्र बनाया है। एक अन्य कविता 'आज कल' का सुख में स्वार्थी, खुशामदी और विलासियों की खबर ली गई है। 'शिव शंभू के चिट्ठे' नामक निबंध - संग्रह गुप्त जी का सर्वाधिक लोकप्रिय निबंध संग्रह है, जिसमें व्यंग्य की प्रधानता है। 'पीछे मत फेंकिए' निबंध में वे अंग्रेजी सरकार पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं - ''इस धराधाम में अब अंग्रेजी प्रताप के आगे कोई उँगली उठाने वाला नहीं है। इस देश में एक महाप्रतापी राजा का वर्णन इस प्रकार किया जाता था कि इंद्र उसके यहाँ जल भरता था, पवन उसके यहाँ चक्की चलाता था, चाँद-सूरज उसके यहाँ रोशनी करते थे इत्यादि। पर अंग्रेजी प्रताप उससे भी बढ़ गया है। समुद्र अंग्रेजी राज्य का मल्लाह है, पहाड़ों की उपत्यकाएँ (पर्वत के ऊपर की समतल भूमि) बैठने के लिए कुर्सी, मूढ़े, बिजली कलें चलाने वाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़ने वाली दूती इत्यादि।''

इसी प्रकार मांस-मदिरा का प्रयोग करने वाले लोगों पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं -

अगल बगल में बिस्कुट मारो बोतल रखो पास।
आँख मूंदकर ध्यान लगाओ छह ऋतु बारह मास।।

3. ब्रिटिश शासन का विरोध - गुप्त जी ने अपने निबंधों में ब्रिटिश शासन का विरोध किया है। वे अपने जीवन काल में अनेक समाचार पत्रों के संपादक रहे हैं और उन्होंने हमेशा अंग्रेजों की भारत विरोधी नीतियों का विरोध किया। 'आशा का अंत', 'विदाई संभाषण', 'पीछे मत भेजिए' आदि निबंधों में अंग्रेजों का जमकर विरोध किया है। इन निबंधों में उन्होंने वॉइसराय लॉर्ड कर्जन की नीतियों की भर्त्सना की है। 'सच्चाई' नामक कविता का एक उदाहरण देखिए -

है कानून जबान हमारी, जो नहीं समझे वे अनाड़ी,
हम जो कहे वही कानून, तुम तो हो कोरे पतलून।

4. गाँधीवादी विचारधारा का प्रतिपादन - बालमुकुंद गुप्त जी के साहित्य में गाँधीवाद का प्रभाव सर्वत्र देखा जा सकता है। वे गाँधी के अहिंसा, सत्य अपरिग्रह आदि सिद्धांतों में पूर्ण आस्था रखते थे, उन्होंने हमेशा हमें विदेशी माल को ठुकरा कर स्वदेशी माल का उपयोग करने पर बल दिया है। साथ ही वे लघु तथा कुटीर उद्योगों की स्थापना पर जोर देते हैं। उनकी 'आशीर्वाद' कविता को उदाहरण दर्शनीय है -

''अपना बोया आप ही खावें, अपना कपड़ा आप बनायें।
बढ़े सदा अपना व्यापार, चारों दिस हो मौज बहार।
माल विदेशी दूर भगावें, अपना चरखा आप चलावें।

कभी न भारत हो मुँहताज, सदा रहे टेसू का राज।

5. समाज सुधार पर बल - गुप्त जी के साहित्य में समाज सुधार की भावना दिखाई देती है। सही मायने में वे जन जागरण करने वाले निबंध लिखे हैं। उन्होंने अपने निबंधों में देश की गुलामी के साथ-साथ सामाजिक रूढ़ियों और जड़-परंपराओं का डटकर विरोध किया है। वे संपूर्ण भारत देश को आजाद देखना चाहते थे। उनका मानना था कि अंग्रेजी शासक कभी भी भारतीयों का भला नहीं कर सकते हैं। उन्होंने देश की आजादी के साथ-साथ समाज को जागृत करना जरूरी माना है। उन्होंने नारी की स्थिति को सुधारने पर भी बल दिया है।

6. इतिवृत्तात्मकता - गुप्त जी के साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता है - इतिवृत्तात्मकता। उनका संपूर्ण साहित्य श्रृंगार रस से रहित है। इतिवृत्तात्मकता के कारण उनकी कविता में लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, कल्पनाशीलता एवं चित्रात्मकता का अभाव है। वह सपाट बयानी को अधिक महत्व देते हैं। उनकी कविता 'पॉलिटिकल होली' शीर्षक का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

''टोरी जावें लिबरल आवें, होली है, भई होली है।
भारतवासी खैर मनावें, होली है, भई होली है।
लिबरल जीते टोरी हारे, हुए मालीं सचिव हमारे।
भारत में जब बजे नगारे, होली है, भई होली है।''

2. भाषा एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ -

गुप्तजी बहुभाषाविद् थे। स्वाध्याय से इन्होंने उर्दू, हिंदी, बांगला, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर विशेष अधिकार प्राप्त कर लिया था। इनकी भाषा खड़ी बोली हिंदी थी। उनकी भाषा के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है - ''गुप्त जी की भाषा बहुत ही चलती, सजीव और विनोदपूर्ण होती थी। किसी प्रकार का विषय हो, गुप्त जी की लेखनी इस पर विनोद का रंग चढ़ा देती थी। वे पहले उर्दू के एक अच्छे लेखक थे। इससे उनकी हिंदी बहुत चलती और फड़कती हुई थी। वे अपने विचारों को विनोदपूर्ण वर्णनों के भीतर ऐसा लपेट कर रखते थे कि उनका आभास बीच-बीच में मिलता था। उनके विनोदपूर्ण वर्णनात्मक विधान के भीतर विचार और भाव लुके-छिपे से रहते थे। यह उनकी लिखावट की बड़ी विशेषता थी।''

गुप्त जी भाषा के विषय में किसी मतवाद के शिकार नहीं थे। हिंदी के पक्ष में अथवा उर्दू के विरोध में उनकी कोई मनोग्रंथि नहीं थी। वे अदालत तथा सरकारी कार्यालयों में, देवनागरी लिपि के प्रयोग के पक्षधर थे।

गुप्त जी की रचनाओं में संस्कृत शब्दावली या तत्सम शब्दों का अत्यधिक समावेश है। यथा - हृदय, पूजा, देव, दीपमाला, पवित्र, स्वच्छ, ग्रंथ आदि। तद्भव शब्दावली का प्रयोग भी उनकी कृतियों में देखा जा सकता है। यथा - दूसरा, तीसरा, दूध, आँख, किसान, महीना, हाथ, आँसू आदि।

उनके साहित्य विदेशी शब्दों का प्रयोग भी दिखाई देता है। यथा-होटल, खोज-खबर, लोअर, नवाब, वजीर, अखबार, रूल, जवान, शराब, दिल्लगी, तारीख, हकीम, लाजिम आदि। लोक भाषा के शब्दों को भी गुप्त जी की कृतियों में देखा जा सकता है। कुछ लोक भाषा के शब्द इस प्रकार है - पगड़ी, रजवाड़ा, ठिठुरना, मुस्टंड, पिचकारी, पूरी, लंगोटी, चपत, बुलबुल आदि।

कुल मिलाकर उनकी भाषा तत्सम, तद्भव, अंग्रेजी, उर्दू एवं लोक भाषा के शब्दों का मिश्रण है।

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ का प्रयोग भी उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ-डंका बजाना (मुहावरे), पागल होना (मुहावरे), दबदबा होना (मुहावरे), आँख खोलना (मुहावरे) आदि। इसी प्रकार- यह देखो किस्मत का फेर (लोकोक्तियाँ), वही ढाक के तीन पात (लोकोक्तियाँ) का प्रयोग हुआ है।

गुप्ता जी की शैली व्यंग्यात्मक है। यदि इनकी व्यंग्यात्मक शैली से चोट करने वाली शब्द योजना तथा उपहास करने वाले मुहावरे तथा लोकोक्तियों को पृथक करके उनके स्थान पर गंभीर एवं संयत शब्दावली का व्यवहार किया जाए, तो उनकी आलोचनात्मक शैली का रूप प्रस्तुत हो जाता है। इसके अतिरिक्त इनकी रचनाओं में विचारात्मक तथा नवीन विवेचनात्मक शैली का भी सफल प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष -

बाबूजी के नाम से विख्यात बालमुकुंद गुप्त हिंदी पत्रकारिता के मसीहा, गद्य के जनक, यशस्वी साहित्यकार जैसे नामों से भी जाने जाते हैं। साहित्य एवं पत्रकारिता जगत में उन्होंने अपनी अमित छाप छोड़ी है। उनकी कलम की धार तलवार की धार से भी तेज थी। उन्होंने साहित्य और पत्रकारिता में अपनी कलम का जलवा उस दौर में दिखाया था, जब अंग्रेजी शासन का बोलबाला था। गुप्त जी राष्ट्रीयता के अग्रदूत थे। उन्होंने हिंदुस्तान के साथ-साथ हिंदी का भी गौरव बढ़ाया था। 42 वर्ष की अल्पायु में अर्थात सन् 1907 ई. में गुप्त जी का देहावसान हो गया। निश्चित ही उस दिन हिंदी साहित्य ने भारतेंदु युग एवं द्विवेदी युग के चौराहे पर देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में चमकते साहित्यकार को खो दिया था।

संदर्भ ग्रंथ -

1. हरियाणा का लोक संस्कृति : रमेश चंद्र पुहाल
2. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. बालमुकुंद गुप्त जीवन और साहित्य : संपादक डॉ. हरमहेंद्र सिंह वेदी
4. हिंदी साहित्य का इतिहास : संपादक डॉ. नगेंद्र
5. बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली : संपादक डॉ. नत्थन सिंह
6. बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध चिट्ठे और खतः संपादक ओंकार शरद
7. निबंध कला : राजेंद्र सिंह गौड़

डॉ. (श्रीमती) धनेश्वरी दुबे, सहायक प्राध्यापक, स्नातक महाविद्यालय, कोरबा,

पी.एच.डी., हिन्दी विभाग

✧ ✧ ✧

विभूति नारायण राय के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना

ज्योति कुमारी

संविधान निर्माता डॉ. भीमराव आंबेडकर जी ने संविधान में नागरिकों को समान अधिकार दिया है। जिसके कारण व्यक्ति को राजनीति में समान भागीदारी प्राप्त हुई है। आज की राजनीति इतनी चरित्रहीन हो गई है कि सत्ता- प्राप्ति के लिए नेतागण किसी भी हद तक गिर जाते हैं। इसी राजनीतिज्ञों के चरित्र का यथार्थ वर्णन विभूति नारायण ने अपने उपन्यासों में किया है। 'किस्सा लोकतंत्र' नामक उपन्यास में प्रेमपाल यादव उर्फ पी. पी. का चरित्र-चित्रण किया गया है। पी.पी. अपराध की दुनिया से राजनीति में प्रवेश करने का फैसला किया है। वे प्रख्यात शराब कारोबारी है। भू-माफिया के रूप में ख्यात हैं। अनेक हत्याओं और डकैतियों के आरोपी हैं, लेकिन देश सेवा का ढ़ोंग कर राजनीति में अपना पैठ बनाना चाह रहे हैं।

समाज चाहे कोई भी हो छोटा या बड़ा, वह राजनीति से निरपेक्ष नहीं हो सकता। आजकल तो कोई भी कार्य हो, उस कार्य में राजनीति का प्रभाव अवश्य दिखाई पड़ता है। कहते हैं कि समाज राजनीति के द्वारा ही विकसित होता है, लेकिन आजकल के नेता समाज विकास के बजाय व्यक्तिगत विकास को ही अपना लक्ष्य बना लेते हैं। राजनीति को पैतृक संपति माना जाने लगा है। प्रत्येक नेता आमरण अपने को राजनीति के योग्य समझता है। देखा जाए तो राजनीति किसी एक घराने या व्यक्ति की विरासत नहीं है। वह आम लोगों द्वारा जनता के हित में चलाए जाने वाले नीति हैं। लोगों के हाथ में अधिकार रहे, इसलिए संविधान में यह प्रावधान किया गया हैं। 'राज्य की किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, जाति, लिंग, मूल वंश, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।'(1)

राजनीति से ही समाज का विकास संभव होता है। राजनीतिक मूल्यों का प्रभाव समाज में मानवीय आधार पर मूल्यों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तो राजनीतिक मूल्य अन्य मूल्यों की अपेक्षा अधिक प्रभावी होते हैं। इसीलिए इन मूल्यों को सही दिशा की ओर परिवर्तित करना नितांत आवश्यक है, जिससे लोकतंत्र और समाजवाद का सही अर्थों में स्थापना हो सके और वर्गहीन समाज में

सबको विकास के समान अवसर उपलब्ध हो सके। आज के राजनेता की वृत्ति इस संदर्भ से स्पष्ट हो जाती है- 'आज का सार्वजानिक नेता राष्ट्रसेवी के स्थान पर आत्मसेवी बनकर रह गया।'(2)

वर्तमान राजनीति की स्थिति अत्यंत दूषित हो गई है और इस दूषित हालत को सुधारने के लिए या समाज में परिवर्तन लाने के लिए साहित्य तथा साहित्यकारों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन का अर्थ राजनीतिक सत्ता परिवर्तन ही होता है। विभूतिनारायण राय ने अपने उपन्यासों के माध्यम से इसी तरह की जागृति लाने का प्रयत्न किया है।

संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अंबेडकर जी ने संविधान में नागरिकों को समान अधिकार दिया है, जिसके कारण व्यक्ति को राजनीति में समान भागीदारी प्राप्त हुई है। आज की राजनीति इतनी चरित्रहीन हो गई है कि सत्ता- प्राप्ति के लिए नेतागण किसी भी हद तक गिर जाते हैं। इसी राजनीतिज्ञों के चरित्र का यथार्थ वर्णन विभूति नारायण ने अपने उपन्यासों में किया है। 'किस्सा लोकतंत्र' नामक उपन्यास में प्रेमपाल यादव उर्फ पी.पी. का चरित्र-चित्रण किया गया है। पी.पी. अपराध की दुनिया से राजनीति में प्रवेश करने का फैसला किया है। वे प्रख्यात शराब कारोबारी है। भू-माफिया के रूप में ख्यात हैं। अनेक हत्याओं और डकैतियों के आरोपी हैं। लेकिन देश सेवा का ढ़ोंग कर राजनीति में अपना पैठ बनाना चाह रहे हैं। एक पत्रकार उनसे पूछता है कि आप तो अच्छे भले धंधे में थे फिर अचानक चुनाव लड़ने की कैसे सूझी? इसके उत्तर में पी.पी. का कहता है- 'क्यों, बिजनेस वालों को देश सेवा नहीं करनी चाहिए क्या? हमने सोचा अन्य लोग देश-सेवा कर रहे हैं, हम भी कर लें। पेट के लिए दो रोटी तो मिल ही जाती है। कुछ जनता की सेवा भी हो जाए।'(3)

विभूतिनारायण राय ने पी.पी के चरित्र का उल्लेख करते हुए कहा है- 'बैठक में एक आराम कुर्सी पर स्वच्छ शीघ्र धवल कुर्ते-पजामें में वह मुलाकातियों से घिरा बैठा रहता था और उसकी धैर्ययुक्त स्निग्ध मुस्कान देखकर कोई यह अंदाज नहीं लगा सकता था कि उसे ऊपर तीन बैंक डकैतियों, दर्जना हत्याओं, पचासों लूटपाट के मुकादमें चल चुके हैं और अभी आठ-दस साल पहले वह कुत्तों की तरह पुलिस से भागता फिरता था।'(4)

जनता अपने प्रतिनिधि को चुनते हैं, इसलिए कि वे उनकी सहायता करेंगे, संकट के समय रक्षा करेंगे। परंतु वही नेता जब चुनाव जीतने के बाद जनता का शोषण करते हैं तो जनता का दुखी होना स्वाभाविक है। 'तबादला' नामक उपन्यास में श्री कमलाकांत वर्मा का उसके कार्यालय से अन्यत्र तबादला इसलिए कर दिया जाता है क्योंकि वे कायस्थ हैं और ऑफिस के शेष कर्मी ब्राह्मण हैं। अब वे अपने तबादले को रोकने के लिए सिफारिश हेतु मंत्री जी के पास भाग-दौड़ करते हैं, लेकिन मंत्रीजी के पास उनसे मिलने का समय नहीं है। यह बात बाद में सिद्ध होता है कि उनका तबादला मंत्रीजी के ही प्रयास से हो रहा है। वे अपने चमचे को वहाँ लाना

चाहते हैं। इस राजनेताओं के चारित्रिक यथार्थ को उपन्यासकार ने सफलतापूर्वक विवेचित किया है।

आज की राजनीति और राजनेता, मंत्री या बड़े-बड़े व्यापारी धनी आदि के हाथों की कठपुतली बने दिखाई पड़ते हैं। मंत्री व्यापारियों को लाभ पहुँचाने हेतु कई योजनाएँ बनवा रहे हैं। सरकारी कार्यालयों का निजीकरण कर रहे हैं। व्यापारी द्वारा मंत्री तथा उनकी पार्टियों को आर्थिक लाभ मिलता है। अगर हम यूँ कहें कि व्यापारी द्वारा ही पार्टियाँ चलती हैं तो कुछ गलत नहीं होगा। इन दोनों की साँठ-गाँठ का उदाहरण विभूतिनारायण राय के उपन्यासों में प्राप्त हो जाते हैं। किस प्रकार मंत्रीजी के लिए आम आदमी महत्त्वहीन हो जाता है, इसकी सुंदर बानगी 'तबादला' नामक उपन्यास में प्राप्त होता है। श्री कमलाकांत वर्मा अपने तबादले को लेकर परेशान है, वह मंत्रीजी से मिलकर अपने लिए सिफारिश करवाना चाहता है, लेकिन मंत्रीजी के पास उनके लिए समय कहाँ? उपन्यासकार लिखते हैं- 'आज भी मंत्रीजी भीड़ के बीच से धक्कम-धुक्की करते हुए अपनी बैठक की तरफ बढ़े। चालीस-पचास आदमियों की भीड़ में हर कोई अपना चेहरा दिखाने को बेताव था। लोगों के हाथों में दरख्वास्ते लहरा रही थीं। कुछ के हाथों में मालाएँ भी थीं। कुछ लोग पैर छूने के लिए लपक रहे थे। चपरासियों और सुरक्षाकर्मियों ने कुछ लोगों को कालर पकड़कर पीछे खींचा, कुछ को कुहनियों से रगेदा और हाथों का घेरा बनाकर मंत्रीजी को बरामदे की तरफ ले चले। सब कुछ इतना अस्त-व्यस्त था कि मंत्रीजी प्रसन्न हो गए और एक चौड़ी मुस्कान उनके चेहरे पर चिपक गई।'(5)

न्याय को अपने हिसाब से तय करने का सामर्थ्य केवल नेताओं में होता है। 'किस्सा लोकतंत्र' में एम.पी. के सामने एक निरीह दारोगा को दिखाया गया है, जो गलती न करने पर भी एम.पी के सामने अपराधी की भाँति पेश होता है। उसका अपराध केवल इतना है कि उसने एम. पी. साहब के अपराधी को हवालात में बंद कर दिया है। लेखक का कहना है- 'आज एम. पी. आया था। अपने साथ थानेदार को लाया था। माफी मंगवाने के लिए। साले ने परसों चौधरी साहब के आदमी को बंद कर दिया था।'(6)

मंत्रियों के सामने आम आदमी कीड़े-मकोड़े की भाँति महत्त्वहीन हो जाते हैं। मंत्री तो मंत्री उसके पी.ए. तक के सामने जनता की यही स्थिति रहती है। पी.ए. भी जनता पर उसी तरह धौंस जमाता है, मानों आम आदमी अपराधी हो। 'तबादला' नामक उपन्यास में श्री कमलाकांत वर्मा देखते हैं कि मंत्री जी अपने पी.ए. के साथ कानाफूसी कर रहे हैं, तो उसे लगता है कि शायद मंत्री जी उसी के संदर्भ में बात कर रहे हैं। संसद से लेकर डिनर डिप्लोमेसी तक इसकी छटा दिखाई पड़ती है। कानाफूसी हुई और कमलाकांत ने राहत की साँस ली। उन्हें लगा अब मामला तय हो जाएगा और उन्हें कुछ कहने का मौका मिल जाएगा। मामला सचमुच तय होने के कगार पर आ गया था। मंत्रीजी का पी.ए. दोनों पक्षों को अंदर के एक कमरे में ले के चला।'(7)

सन् 1960 ई0 के दशक का उत्तरार्द्ध भारतीय राजनीति के इतिहास में नया मोड़ लेकर आया था। प्रधानमंत्री भारतीय राजनीति के इतिहास में नया मोड़ लेकर आया था। प्रधानमंत्री

लालबहादुर शास्त्री का सोवियत रूप में ताशकंद समझौता पर हस्ताक्षर करने के तुरंत बाद हृदय की गति रूक जाने से निधन हो गया था। इंदिरा गाँधी ने प्रधानमंत्री की गद्दी पर बैठकर पुनः देश के शासन में नेहरू परिवार का वर्चस्व कायम कर लिया था। विरोधी दल हक्का-बक्का थे। देश की विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव जीतने में अपराधकर्मियों के सहयोग का महत्त्व समझ चुकी थी। अब वे सत्ता हथियाने में अप्रयुक्त छात्र-शक्ति का उपयोग करने लगी थी।

राजनेताओं ने जिगर के टुकड़े भारत का भविष्य सशक्त समाज के सशक्त हाथ जैसी संज्ञाओं से छात्रों को राजनीति में आने के लिए लुभाना शुरू कर दिया था। इसका सर्वाधिक घातक प्रभाव देश के शैक्षिक वातावरण पर पड़ा। छात्रों में अनुशासनहीनता उत्पन्न हुई और अनुशासनहीनता अपराध में बदलने लगी। अपराध की दुनिया से सत्ता में अपना भाग्य आजमाने वाले पी.पी. यादव ने अपने दबंगई तथा पैसा के बल पर टिकट प्राप्त कर चुनाव जीतने का काम किया, जिसकी कहानी विभूतिनारायण के उपन्यास 'किस्सा लोकतंत्र' में प्राप्त होता है। हत्या, डकैती और बलात्कार जैसे जघन्य अपराधी पी.पी. के बारे में लेखक ने लिखा है- 'अपने जीवन का पहला अपराध उसे आज तक याद है। उसकी मित्र-मंडली में जयकिशन नाम का एक लड़का सबसे दुस्साहसी था। अक्सर वह रास्ता चलते मार-पीट कर लेता था। यद्यपि उस उम्र में उससे काफी बड़ा था फिर भी साथियों का नेतृत्व करने के चक्कर में पी.पी. उससे स्पर्धा करता था, हालाँकि लाख स्पर्धा के बावजूद कहीं भीतर से वह उससे डरता भी था। जय किशन के पास एक देशी पिस्तौल थी, जिसे वह कट्टा कहता था और जिसे ललचाई आँखों से पी.पी. देखा करता था।'(8)

वर्तमान समय में राजनीतिक पार्टियों का अपना कोई दर्शन नहीं होता। उसका एकमात्र उद्देश्य होता है सत्ता की प्राप्ति के लिए तमाम नैतिकता को ताखा पर रखकर साम-दाम-दंड भेद से सत्ता को हस्तगत करना। यही कारण है कि एक पार्टी दूसरी पार्टियों के खिलाफ विरोध जुमले रचते हैं। किस्सा लोकतंत्र में पी.पी यादव के चाटुकार शांति प्रसाद की प्रेरणा से बागी नेताओं के विरुद्ध उटपटांग नारे लगाए जाते हैं। उपन्यास की पंक्ति देखिये- 'पी.पी. और शांति प्रसाद भी कुछ-कुछ थके से बेमन से उन्हें अंदर जाने को कहते रहे, पर वे उछल-उछल कर बागी को चिढ़ाने के लिए उटपटाग नारे लगाते हैं। बागी भी अपनी बची- खुची शक्ति से चिल्लाकर उन्हें ललकारने लगा। थोड़ी देर में स्थिति यह हुई कि बागी, पी.पी. के समर्थकों और दर्शकों तीनों का मजा आने लगा। जो लोग पी.पी. के आतंक और बागी पर आसन्न संकट को सोचकर खामोश थे, उन्होंने तालियाँ बजा-बजाकर और अपने गलों में से किस्म-किस्म की आवाजें निकालकर बागी का हौसला बढ़ाना शुरू किया।'(9)

विभूतिनारायण राय स्वयं प्रशासनिक पद पर रह चुके हैं। इसलिए उन्हें मंत्री राजनेता आदि से प्रशासनिक अधिकारी किस तरह से अपने हित संबंध रखते हैं और अपना काम निकाल लेते हैं और जो पदाधिकारी इनकी बात मानते नहीं तो वह उनका तबादला करवा देते हैं। राय जी ने अपने उपन्यास 'तबादला' में इसी प्रकार के संदर्भों को उजागर किया है। 'तबादला' के नायक हैं श्री कमलाकांत वर्मा वे अधिशासी अभियंता है, सार्वजनिक निर्माण-विभाग में कार्यरत हैं। वे

अत्यंत श्रमपूर्वक या यूँ कहें कि ऊपरी अधिकारियों को घूस देकर यहाँ अपनी पद स्थापना करवाया है, लेकिन अचानक तबादले की सूचना से वे आहत होते हैं। उपन्यासकार ने लिखा है- 'सर पर कुंभ और तबादला। अगर मुहावरे की भाषा में कहा जाए तो श्री कमलाकांत वर्मा के लिए यह किसी वज्राघात से कम नहीं थी। अक्टूबर खत्म हो रहा था और कुंभ का काम धीरे-धीरे जोर पकड़ने लगा था। ज्यादातर कामों के टेंडर हो चुके थे।'(10)

श्री कमलाकांत वर्मा जी अपना तबादला रुकवाने के लिए मंत्रियों की खुशामद करने रोज-रोज जाता है। लेकिन वहीं ऐसे आम आदमी का कोई महत्व नहीं है। लेखक ने उसका वर्णन इस तरह किया है- 'कमलाकांत ऐसे स्थान की तलाश में लग गए, जहाँ खड़े होने पर मंत्रीजी से उसकी आँखें टकरा सकें। जल्दी ही उन्हें ऐसी जगह मिल गई। वे खुश हो गए, पर उनकी खुशी इस नश्वर संसार की तरह क्षणभंगुर रही। किसी निष्ठुर नायिक की तरह मंत्रीजी की आँखें उनकी आँखों से टकरायी जरूर और उन्होंने हर बार दिलफेंक नायक की तरह अपने पूरे दाँत दिखा दिए पर निर्दयी आँखों में पचियन की कौंध एक बार भी नहीं लपकी। वे दुखी हो गये।'(11)

मंत्रीजी के लिए पी.ए. की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण होती है। यह सर्वविदित्त है। पी.ए. मंत्रीजी के लिए किचन से लेकर बेड रूम तक का इंतजाम करता है। वर्णन देखिये- 'उसने तो इस पी.डब्ल्यू.डी. मंत्री के बेडरूम में घुसपैठ कर रखी है। अरे! आप नहीं जानते उस कौशिक के बच्चे को? वही कौशिकवा जो आपके मंत्री का पी.ए. है। साला मंत्री के किचन से लेकर बेडरूम तक का इंतजाम करता है।'(12)

इस तरह विभूतिनारायण राय के उपन्यासों में राजनीति के बहुआयामी यथार्थ का चित्रण हुआ है। उपन्यासकार समकालीन भारतीय राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार का भी यथार्थपरक उद्घाटन किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

(1) पंथ और परिणति - देवकीनंदन शुक्ल, पृष्ठ-25, (2) किस्सा लोकतंत्र (शहर में कर्फ्यू)- विभूतिनारायण राय, पृ.-163, (3) वहीं, पृष्ठ-221, (4) तबादला (शहर में कर्फ्यू) - विभूतिनारायण राय, पृष्ठ-374, (5) किस्सा लोकतंत्र (शहर में कर्फ्यू) - विभूतिनारायण राय, पृष्ठ-219, (6) तबादला (शहर में कर्फ्यू) - विभूतिनारायण राय, पृष्ठ-358, (7) किस्सा लोकतंत्र (शहर में कर्फ्यू) - विभूतिनारायण राय, पृष्ठ-185, (8) वही- पृष्ठ- 277, (9) वही- पृष्ठ-281, (10) वही- पृष्ठ-375, (11) वही, पृष्ठ-408, (12) वही, पृष्ठ- 409

ज्योति कुमारी, शोधार्थी विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

✧ ✧ ✧

साहित्य अकादेमी द्वारा आयोजित किया गया रामदरश मिश्र जन्मशती संगोष्ठी

यशस्वी साहित्यकार रामदरश मिश्र के स्वर्णिम सौ वर्ष पर आयोजन

वेद मित्र शुक्ला /
प्रियांशु तथा अनन्या

दिल्ली। साहित्य अकादेमी द्वारा प्रतिष्ठित कवि, कथाकार रामदरश मिश्र जन्मशती संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का उद्घाटन प्रख्यात गुजराती लेखक एवं साहित्य अकादेमी के महत्तर सदस्य रघुवीर चौधरी ने किया। रामदरश मिश्र स्वयं विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे। बीज भाषण प्रख्यात हिंदी लेखक प्रकाश मनु ने दिया और अध्यक्षीय वक्तव्य साहित्य अकादेमी की उपाध्यक्ष कुमुद शर्मा द्वारा दिया गया। कार्यक्रम के आरंभ में अकादेमी के सचिव के. श्रीनिवास राव द्वारा स्वागत वक्तव्य दिया गया।

पूरे दिन चले इस कार्यक्रम में रामदरश मिश्र जी के पद्य और गद्य साहित्य पर अलग-अलग दो सत्रों में आमंत्रित विद्वानों द्वारा आलेख पढ़े गए। पहले सत्र में अध्यक्ष के तौर पर सुविख्यात कवि बाल स्वरूप राही और वक्ता के रूप में कवि-आलोचक ओम निश्चल तथा प्रोफेसर व मिश्र जी की सुपुत्री प्रोफेसर स्मिता मिश्र ने अपने विचार व्यक्त किए। दूसरे सत्र की अध्यक्षता अंतरराष्ट्रीय महात्मा गाँधी हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व कुलपति गिरीश्वर मिश्र ने की। इस सत्र में मिश्र जी के कथेतर गद्य साहित्य पर डॉ. वेद मित्र शुक्ल, कथा साहित्य पर कवि-कथाकार सुश्री अलका सिन्हा एवं आलोचना पर वरिष्ठ आलोचक वेदप्रकाश अमिताभ ने अपने-अपने आलेख पाठ किए।

इस अवसर पर साहित्य अकादेमी के सचिव के. श्रीनिवास राव ने जन्मशती संगोष्ठी को दुर्लभ अवसर बताते हुए कहा कि रामदरश मिश्र के स्वभाव की सरलता उनके लेखन में भी है, जो उनके व्यक्तित्व के साथ ही उनके कृतित्व को महत्त्वपूर्ण बनाता है। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित रघुवीर चौधरी जो अहमदाबाद में श्री मिश्र के शिष्य भी रहे, ने अपने 'सर' को याद करते हुए गुजरात संबंधी अनेक संस्मरण श्रोताओं से साझा किए। उन्होंने उनकी रचनाओं में नाटकीय तत्वों और कहानियों के अंत में मानवता जाग्रत होने वाले बिंदुओं पर विशेष चर्चा की। आगे उन्होंने कहा कि उनके उपन्यास पात्रों के विशिष्ट चरित्र-चित्रण के नाते महत्त्वपूर्ण हैं। 'अपने लोग' को उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास बताते हुए, उन्होंने कहा कि उनके छोटे उपन्यास भी अपनी कलात्मकता में विशिष्ट है। रामदरश मिश्र द्वारा गाए जाने वाले कजरी गीतों को याद करते हुए कहा कि वे सस्वर गाते थे।

बीज वक्तव्य देते हुए प्रकाश मनु ने कहा कि श्री मिश्र साहित्य के हिमालय पुरुष है, जिसके नीचे बैठकर नयी पीढ़ी अनेक बातें सीख सकती है। उनके संपूर्ण लेखन में समय का इतिहास मिलता है और उस सबका मिजाज गंगा जमुना है। उनकी कविताओं में नए जमाने का बोध तो है ही उनका गद्य भी बहुत प्रभावशाली है। उनकी हर विधा में आम-आदमी ही केंद्र में है।

रामदरश मिश्र ने इस भव्य आयोजन के लिए साहित्य अकादेमी को धन्यवाद देते हुए कहा कि इस सम्मान से मैं अभिभूत हूँ। उन्होंने अपने लंबे जीवन के रहस्य के बारे में बताते हुए कहा कि इसके लिए मैं तीन कारण बताता हूँ पहला- मैंने कोई महत्वकांक्षा नहीं पाली, दूसरा कोई नशा नहीं किया यहाँ तक कि पान तक भी नहीं और तीसरा मेरा बाजार से कोई संबंध नहीं, मतलब घर का ही खाया-पीया। उन्होंने अपने कई संस्मरण सुनाते हुए कहा कि मैं अमूमन जहाँ जाता हूँ, वहीं का होकर रह जाना चाहता हूँ। इसीलिए मुझे घर-घुसरा भी कहा जाता है। उन्होंने अपने गुजरात के आठ वर्षों को बहुत आत्मीयता से याद करते हुए उमाशंकर जोशी और भोला भाई पटेल को भी याद किया। अपने गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी के भी कई संस्मरण उन्होंने सुनाए। अंत में उन्होंने अपने कई मुक्तक, कविताएँ एवं अपनी सुप्रसिद्ध गजल "बनाया है मैंने यह घर धीरे-धीरे" सुनाई।

अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में साहित्य अकादेमी की उपाध्यक्ष कुमुद शर्मा ने कहा कि गाँव हमेशा मिश्र जी के साथ रहा और उनकी कविताओं में मानवता को प्रतिष्ठित किया गया है। उनकी रचनाओं में ग्रामीण संवेदनाओं के साथ पूरा युग बोध प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत होता है।

प्रथम सत्र जो उनके पद्य साहित्य पर केंद्रित था कि अध्यक्षता बालस्वरूप राही ने की और उनकी पुत्री स्मिता मिश्र एवं ओम निश्चल ने अपने आलेख प्रस्तुत किए। स्मिता मिश्र ने अपने पिता की सदाशयता और जिजीविषा का उल्लेख करते हुए कहा कि उनकी हिम्मत से ही परिवार की हिम्मत भी बनी रही। ओम निश्चल ने कहा कि उनकी कविता की गीतात्मकता उसकी ताकत है। पूरी सदी का काव्य बोध उनके लेखन में झलकता है। उनका लेखन हमेशा समकालीन परिस्थितियों से परिचालित होता रहा। बाल स्वरूप राही ने मॉडल टाउन में रहने के उनके संस्मरणों को साझा करते हुए कहा कि वे बहुत ही सहज और मानवीय थे। उन्होंने उनकी कई रचनाओं को पढ़कर भी सुनाया।

द्वितीय सत्र रामदरश मिश्र के गद्य साहित्य पर केंद्रित था, जिसकी अध्यक्षता प्रख्यात लेखक और शिक्षाविद् गिरीश्वर मिश्र ने की। इस सत्र में अलका सिन्हा ने उनके कथा लेखन में उपेक्षित पात्रों की बेहतरी की कल्पना और स्त्री के संघर्षों का उल्लेख करते हुए कहा कि उनका पूरा लेखन गाँव के यथार्थ का चित्रण बहुत ईमानदारी से किया गया है। डॉ. वेद मित्र शुक्ल ने उनके कथेतर गद्य पर विस्तार से अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि उनके कथेतर गद्य में भी कविता/कहानी के अंश हैं। मिश्र जी के साहित्य में कथेतर गद्य ने बड़ी सहजता से अपना स्थान बनाया है। इसके बावजूद कथेतर की कई विधाओं में उन्होंने प्रचुर मात्रा में लिखा है। 'जीवन-राग' और जीवन मूल्यों की पहचान से गुंजित उनका कथेतर साहित्य आने वाली पीढ़ियों को प्रेरणा देता रहेगा। सुविख्यात आलोचक वेदप्रकाश अमिताभ ने उनकी आलोचना पुस्तकों पर टिप्पणी करते हुए कहा कि मूल्य उनकी आलोचना को समझने का बीज शब्द है। रामदरश मिश्र ने आलोचना को भी सृजनात्मक बना दिया है। दूसरे शब्दों में उनकी आलोचना को 'सृजनात्मक आलोचना' कहा जा सकता है।

अंत में अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में गिरीश्वर मिश्र ने कहा कि उनके लेखन में सहज रूप में मानवीय मूल्यों की स्थापना पाई जाती है। उनकी सभी रचनाओं में जीवन संघर्ष का सच्चा प्रतिनिधित्व है और वह समय के साथ अपने को बदलते भी रहे हैं। कुल मिलाकर रामदरश मिश्र समग्रता के साथ साहित्य की रचना के पक्षधर हैं।

कार्यक्रम का संचालन अकादेमी के उपसचिव देवेंद्र कुमार देवेश ने किया। कार्यक्रम में रामदरश मिश्र के पूरे परिवार के साथ ही उनके अनेक शिष्य, लेखक, कॉलेज के विद्यार्थी और पत्रकार उपस्थित थे।

शती साहित्यकार रामदरश मिश्र के शताब्दी समारोह का आयोजन

हिंदी साहित्य के शताब्दी रचनाकार डॉ. रामदरश मिश्र ने 15 अगस्त, 2024 को सौ वर्ष पूर्ण कर लिया। भारतीय साहित्य की इस विलक्षण घटना के महत्त्वपूर्ण अवसर पर 'रामदरश मिश्र न्यास' के द्वारा मिश्र जी के जन्म शताब्दी समारोह का आयोजन 15 अगस्त, 2024 को गुरु गोविन्द सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय के सभागार-डी में संपन्न हुआ।

आयोजन का आरंभ नीलम चतुर्वेदी द्वारा मिश्र जी के जीवन पर केंद्रित एक लघु फिल्म दिखा कर किया गया। इसके बाद इनके साहित्य को तकनीक से जोड़ने हेतु बनाई गई वेबसाइट का लोकार्पण मिश्र जी द्वारा किया गया। 15 अगस्त, 1924 में उत्तर प्रदेश के डुमरी गाँव में जन्मे मिश्र जी की बौद्धिक उत्तराधिकारी तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के खालसा कॉलेज की प्रोफेसर डॉ. स्मिता मिश्र ने अपने स्वागत वक्तव्य से कार्यक्रम को आगे बढ़ाया। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि 'मिश्र जी वास्तव में शताब्दी के सहचर है। उनकी रचना यात्रा पराधीन भारत से स्वाधीन भारत की है और स्वाधीन भारत से 21वीं सदी की है।' इसके बाद उन्होंने रामदरश मिश्र न्यास, वेबसाइट, न्यास द्वारा गठित 'रामदरश मिश्र शताब्दी सृजन सम्मान' के विषय में विस्तृत जानकारी दी।

इस अवसर पर विभिन्न पुस्तकों का लोकार्पण किया गया, जिनमें सर्व भाषा ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'हम हो गए स्वयं खुशबू घर' रामदरश मिश्र की प्रेम कविताएँ, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'आज धरती पर झुका आकाश' रामदरश मिश्र की गजल समग्र, सर्व भाषा ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित एवं ओम निश्चल द्वारा सम्पादित 'मैं आषाढ़ का पहला बादल' आदि प्रमुख है।

इसके बाद कार्यक्रम में रामदरश मिश्र न्यास द्वारा गठित 'रामदरश मिश्र शताब्दी सृजन सम्मान' के विजेता के रूप में राजकुमार श्रेष्ठ के नाम की घोषणा की गई। इसके बाद कार्यक्रम में उपस्थित विशिष्ठ अतिथि पद्‌मश्री अशोक चक्रधर जी ने अपने संबोधन से राजकुमार जी को अभिनंदन प्रेषित किया। इसके बाद श्री सुरेश ऋतुपर्ण जी द्वारा प्रशस्ति पाठ किया गया। इसी दौरान उन्होंने मिश्र जी के व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए बताया कि 'मिश्र जी ने एक सफल जीवन नहीं एक सार्थक जीवन जिया है और इसी कारण उनका जीवन इतना प्रेरणादायक है।' इसके बाद विजेता राजकुमार श्रेष्ठ को बधाई प्रेषित करने हेतु वरिष्ठ साहित्यकार तथा निर्णायक मंडल की सदस्य ममता कालिया को मंच पर आमंत्रित किया गया। ममता जी ने कहा- 'श्रेष्ठ जी की कविताओं की सबसे विशिष्ट बात यही है कि इनमें विचारों ने कविता के भाव को दबाया नहीं है। ये कविताएँ भावात्मक रूप से पाठकों के मन तक पहुँचने में समर्थ है।' उन्होंने रामदरश मिश्र न्यास को इस शुरुआत के लिए बधाई देते हुए कहा- 'जब तक वरिष्ठ पीढ़ी कनिष्ठ पीढ़ी को थामेगी नहीं तब तक कनिष्ठ पीढ़ी घनिष्ठ नहीं बन पाएगी और इस ओर ये प्रयास सराहनीय है।' इसके बाद न्यास के अध्यक्ष शशांक मिश्र द्वारा विजेता को पुरस्कृत किया गया।

इस अवसर पर कार्यक्रम को सुचारू रूप से संपन्न कराने तथा वेबसाइट और सोशल मीडिया में अहम भूमिका निभाने वाली टीम को भी सम्मानित किया गया, जिसमें सन्नी गोंड, वैशाली, रविशंकर सिंह, प्रियांशु प्रियदर्शी, अनन्या कुमारी तथा योगिता शर्मा शामिल थे। कार्यक्रम का अंत मिश्र जी द्वारा उनके जन्मदिन का केक काट कर किया गया। कार्यक्रम में मुख्य रूप से पद्‌मश्री अशोक चक्रधर, श्री सुरेश ऋतुपर्ण, समारोह समीति के अध्यक्ष डॉ. ओम निश्चल, वरिष्ठ साहित्यकार ममता कालिया, प्रोफेसर स्मिता मिश्र, न्याय के अध्यक्ष श्री शशांक मिश्र, सार्क जर्नलिस्ट फोरम के अंतराष्ट्रीय अध्यक्ष श्री राजू लामा, डॉ. वेद मित्र शुक्ल, अंजलि तिवारी एवं समस्त परिवार जनों के साथ भारी संख्या में श्रोता उपस्थित थे।

वेद मित्र शुक्ला / प्रियांशु तथा अनन्या

✧ ✧ ✧

कौन था वह?

एक राष्ट्रकवि का मारा जाना
क्या है हकीकत क्या है फसना।

कहते हैं कि, उन्नीस सौ तीरसठ में
एक कवि को सिर्फ इसलिए
जहर देकर मार दिया गया था कि,

वह जब भी कहता सच ही कहता
सच के सिवा कुछ नहीं कहता।

वह जब कहता देश की अस्मिता
उसकी सुरक्षा और राष्ट्र के
नव-निर्वाण की बात कहता।

एक देश, एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा
की बात कहता।

जो कभी सत्ता के गलियारे में भटका
न किसी का प्रशस्ति-गान किया,
और ना ही किसी की चाटुकारिता ही की।

बल्कि वह जब तक जिया
एक आजाद पंछी की तरह

पूर्ण अस्मिता सहित स्वाभिमान,
और आन-बान-शान के साथ
राष्ट्र की पहचान बनकर जिया।

वह जब मंचों पर खड़ा होता,
तो उसके सामने अच्छे-अच्छे
चांद सितारे भी ध्वस्त हो जाते।

कइयों को उसने, गीत लिखना सिखाया
बहुतों ने उसकी भाव-भंगिमा अपनाई
कइयों ने तो उसके गीतों को भी चुराया
और आपना बात मंचों पर सुनाया।

कहते हैं कि, मारे जाने से पूर्व
अपनी ओजपूर्ण-वाणी और
राष्ट्रभक्ति रचनाओं के गायन से
वह इतना लोकप्रिय हो चुका था कि,

सिर्फ उनके नाम की भनक से ही
चंद-घंटों में ही सुनने वालों का
जन-सैलाब उमड़ पड़ता था।

रात-रात भर कौन कहे, भोरम-भोर तक
श्रोता उठने का नाम न लेती
सबकी जुबान पर रहता तो
बस एक, उसी का नाम रहता।

कहने वाले यहाँ तक कहते कि
उसके सामने राष्ट्र-नायकों तक की

छवि धूमिल पड़ने लगी थी।

तभी उसकी 'हत्या की खबर'
जंगल में लगी आग की तरह
पूरे देश में सर्वत्र फैल गई।

जिला-प्रशासन की कौन कहे
उसने तो राज्य-सरकार तक
को हिला कर रख दिया था।

ऐसे हालात में -
राजा करे, तो क्या करे?
सोच पाना बड़ा ही कठिन था।

आनन-फानन में,
उनके लिखित या मौखिक आदेश पर
सर्वप्रथम उसके पार्थिव-शरीर
को 'हिरासत' में लिया गया।

परिजनों को बुलाने के नाम पर
दिमागी-कसरत चलाई गई,
पर न तो वे आए और न
उन्हें लाया ही गया।

जबकि राजा चाहता तो
उन्हें लाया जा सकता था।

सबकुछ जान पोस्टमार्टम तो बनता ही था
पर तथाकथितों के कहने पर कि -

'राष्ट्र विश्व का पोस्टमार्टम?
न होने दिया और न कराया ही गया।

जीवितावस्था से मरणोपरांत
या यों कहें कि आजतक
उसे, न तो कोई राष्ट्रीय-सम्मान मिला
और न ही कोई पुरस्कार।

पर, वाह री जनता!
उसने कवि को अपनी सर-आँखों पर
बिठाया और उसे 'राष्ट्रकवि' बनाया।

ऊहापोह की स्थिति से बाहर निकल
तब राजा को ख्याल आया।

कहते हैं कि, करीब बीस-घंटे तक
मृत-शरीर को 'हिरासत' में रखने के बाद
'राष्ट्रध्वज में लिपटा कर' उसकी
शव-यात्रा निकलवाई गई।

जिसमें सैकड़ों बड़े-छोटे साहित्यकारों
सहित हजारों का जन-सैलाब उमड़ आया था।

तब कहीं जाकर बंदूक की सलामी
और पूर्ण राजकीय-सम्मान के साथ
उसकी अंत्येष्टि करवाई गई।

कहते हैं कि -
उसकी पुकार पर तब

हिमालय भी पिघल गया था
और एक हम हैं कि
आज तक नहीं पिघले।

क्या पता है आपको!
कौन था वह?
मुझे तो ज्ञात नहीं!
आज तक, उसके बारे में
सिर्फ सुनता ही आया हूँ
पर, तलाश जारी है!

यदि पता हो आपको?
तो राष्ट्र को बतायें और
राष्ट्र-नायकों को भी।

इतने वर्षों बाद, शायद अब भी
उनकी आँखों से पश्चाताप के
आँसू छलक जाएँ?
जिसका वह हकदार था
उसके लिए कुछ कर जाएँ?

क्यों कि -
मिट्टी के हर पुतले को है, मिट्टी में मिल जाना
जो करना है करले होगा, लौट के फिर न आना!

श्री पारस कुंज, वरिष्ठ पत्रकार कवि लघुकथाकार, सम्पादक : 'शब्दयात्रा', सीता निकेत, जयप्रभा पथ, भागलपुर सिटी - 812002, (बिहार), भारत। मो. : 6201334347, 9572963930

✧ ✧ ✧

चीखें

कलयुग गोविंद ढूंढ रहा
द्रौपदी तेरी लाज बचाने को..
हर मोड़ खड़ा दुशासन है
इज्जत नोच खाने को..।

जाए तो कहाँ जाए अबला
यक्ष प्रश्न उसका सम्मान बना
अदालत की चौखट पर देखो
है इंसाफ असहाय खड़ा य
अदृश्य हुआ शासन - प्रशासन
पल - पल भय व्याप्त रहा
मेरा विह्वल ह्रदय पूछ रहा
कैसे कोई महफूज यहाँ?
यहां भीम कौन जो ले प्रतिज्ञा
दुशासन को हराने को
कलयुग गोविंद ढूंढ रहा
द्रौपदी तेरी लाज बचाने को ...।

जिसकी अस्मत लूट गई
संसद तक उसकी चीखें गई
मगर गूंगी बहरी सरकारें
घड़ी-घड़ी सियासत की य
हे नारी! तुम बेबस नहीं
लाख बाधाएँ हैं सही
दुर्गा हो तुम काली हो तुम
खड़ग संभालने वाली हो तुम
वक्त हुंकार भर रहा
हाथों में चक्र उठाने को
कलयुग गोविंद ढूंढ रहा
द्रौपदी तेरी लाज बचाने को..।

आभास कुमार, ऊर्जा नगर, आर.के. पुरम खगौल रोड, पटना

मो. : 82109 51440

✧ ✧ ✧

इठलाती नदियाँ

मेघाच्छादित
धुँधभरा नीलाभ की
छतरी ओढे,
मचलती, उछलती, बलखाती
इठलाती नदियाँ।

पत्थरों के दलन को चूर करती,
उसके सीने पर पाँव जमाती,
आत्मविश्वास से भरी,
अदम्य साहस से भरी,
शुद्धता, शीतलता, छलकाती,
अपने पथ को स्वयं बनाती,
अनगिनत जीवन संवारती,
इठलाती नदियाँ।

हर लहर एक-दूसरे से
सुर मिलाती,
सुमधुर निनाद करती,
बड़े-छोटे का भेद न करती,
प्यार से एक-दूसरे का साथ निभाती,
प्रतिपल नई धारा का निर्माण करती,
जल तरंगों की धुन पर
तिरकती नदियाँ।

धीरे-धीरे बहती,
भू-तट को चुमती,
सरलता, सहजता, विनम्रता धरे,
सागर से मिलने को बेताब,
लाज हया को तजकर,
सागर से मधुर मिलन के सपने,
मन में भरे,
इठलाती नदियाँ।

पहाड़ों के शिखर को छोड़,
धरा का तन शीतल करती,
अगल-बगल से हाथ मिलाती,
अपने आगोश में समाती।
हौले-हौल से बहती धारा,
भारतीय सभ्यता से परिचय कराती,
निर्मल अमृत धारा बहाती,
इठलाती नदियाँ।

अपनी धारा में खुशियाँ समेटे,
नवजीवन को गर्भ धरे,
सम्मान से प्रफुल्लित हो
फलने-फूलने का आशीष देती,
जहाँ ये धारा मान न पाती,
माँ काली के दर्शन कराती,
प्रलयकारिणी, जीवनदायिनी
इठलाती नदियाँ।

डॉ. करुणा पीटर, अध्यापिका, डॉन बॉस्को एकादमी, पटना।
मो. : 9546138889, मेल– karuna.kamal2015@gmail.com

ग़ज़ल

बूंद-बूंद पी लिया लहू तुमने
चैन से कब्र में तो रहने दो।
देख ली तमाम बादशाह तभी
मुझको मेरे नसीब में रहने दो।
तेज़ाब-बारूद-सने हैं अख़बार
मुझे, बस, बे-खबर रहने दो।
तेरे उजाले अब आग उगरूते हैं
कुछ घड़ी अंधेरे में रहने दो।
चलते-चलते साँस खुद थम जाएगी
कुछ देरे इसे लय में रहने दो।
मत सोच कि तू है और रहेगा तू ही
खुद की इस सोच को, सब्र में रहने दो।
पुरनोर तुफाँ हैं, दीए बुझ जाएँगे सब
कुछ दीए अभी पसे-दीवार रहने दो
मत पोंछ मेरे आँसू कि शायद असर कर जाए
पत्थर को मोम कर दे शायद, इसे बहने दो।

अजीत कुमार वर्मा

✧ ✧ ✧

जिला प्रशासन, बेगूसराय की ओर से आयोजित रामधारी सिंह दिनकर की जयंती के अवसर पर व्याख्यान सत्र में 'राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में राष्ट्रवाद की अवधारणा' विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए प्रो. कलानाथ मिश्र साथ में मंचासीन हैं, वरिष्ठकवि मदन कश्यप, डॉ. राकेश रंजन, डॉ. रामरेखा जी, प्रो. अमरेश शांडिल्य एवं प्रशासन से जुड़े अधिकारीगण।

अनुग्रह नारायण महाविद्यालय पटना एवं दिनकर संस्कृति संगम न्यास के तत्वावधान में आयोजित दिनकर जयंती के अवसर पर मंचासीन, बिहार के उपमुख्यमंत्री श्री विजय कुमार सिन्हा, महाविद्यालय के प्रधानाचार्य प्रो. प्रवीण कुमार, वरिष्ठ आलोचक प्रो. तरुण कुमार, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. कलानाथ मिश्र, डॉ. शंकर प्रसाद, डॉ वरुण कुमार एवं दिनकर संस्कृति संगम न्यास के सचिव श्री अरविंद कुमार सिंह।

RNI No. : BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906
Postal Registration No. : PT-7C

Design & Print @ Gyan Ganga Creations # 09334110685